निर्मला

प्रेमचन्द

जन्मतिथि : 31 जुलाई 1880 (श्रावण बदी 10, सम्वत् 1937, शनिवार)।

जन्मस्थान : बनारस-आजमगढ़ रोड पर बनारस से चार मील दूर लमही नामक गाँव।

प्रारम्भिक पढ़ाई गाँव के एक मक़तब में। फिर बनारस के मिशन स्कूल से मैट्रिक। 1899 में अध्यापन से जीविकोपार्जन की शुरुआत। प्राइवेट स्तर पर बी.ए.। गहन स्वाध्याय। सरकारी नौकरी। स्कूलों के सब-डिप्टी इन्सपेक्टर भी रहे। 1920 में महात्मा गाँधी के आह्वान पर सरकारी नौकरी से इस्तीफा। लेखन के द्वारा पूरी तरह राष्ट्रसेवा में संलग्न। 1934 में कुछ दिनों के लिए बम्बई में फिल्म-कथाकार के नाते काम। *मर्यादा, माधुरी, हंस* और *जागरण* आदि पत्रों का सम्पादन।

हिन्दी-उर्दू–दोनों भाषाओं में लिखा। दोनों के ही साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त। *सेवासदन, निर्मला, रंगभूमि, ग़बन, कायाकल्प, कर्मभूमि, प्रेमाश्रम, गोदान* आदि विश्वविख्यात उपन्यास तथा लगभग 300 कहानियाँ। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता।

8 अक्तूबर 1936 को बनारस में देहावसान।

आवरणचित्र

दीवान माना (जन्म : 17 जून 1958) का छायाचित्र। ग्राफिक आर्ट तथा प्रिंटमेकिंग में गवर्नमेंट कॉलिज ऑफ आर्ट, चंडीगढ़, से पाँच साल का डिप्लोमा करने के बाद दीवान माना स्थायी रूप से चंडीगढ़ में बस गए। अब तक वे देश-विदेश की लगभग एक दर्जन समूह-प्रदर्शनियों में हिस्सेदारी तथा तीन-चार एकल प्रदर्शनियाँ कर चुके हैं।

बाल-गतिविधियों में दीवान माना की ख़ास दिलचस्पी है और फरवरी-मार्च 1993 में उन्होंने ब्रिटेन की श्रॉपशायर काउंटी कौंसिल के आमंत्रण पर श्रॉपशायर के आठ स्कूलों में छायांकन, चित्रकला तथा अभिनय की कार्यशालाएँ आयोजित की हैं। उनकी इस दिलचस्पी ने उनकी कला को गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। कैमरे के साथ अभिनय और चित्रकला को संयोजित करके उन्होंने कलात्मक अभिव्यक्ति का एक सर्वथा निजी रूप विकसित किया है।

पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़, के म्यूज़ियम ऑफ़ फ़ाइन आर्ट और पंजाब राजभवन, चंडीगढ़, आदि संग्रहालयों के अलावा देश-विदेश के निजी संग्रहों में उनका काम है। कई पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके हैं।

यह पेपरबैक संस्करण
मूल पुस्तक की,
बिना किसी काट-छाँट के,
अविकल प्रस्तुति है

भूमिका

प्रेमचंद के उपन्यास 'निर्मला' को हिन्दी का पहला मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहा गया है। यदि 'निर्मला' हिन्दी का पहला मनोवैज्ञानिक उपन्यास है भी, तो सामाजिक यथार्थ दृष्टि के साथ। यह उस अर्थ में मनोवैज्ञानिक उपन्यास नहीं है जिसमें भीतर की वास्तविकता के गूढ़, जटिल रहस्योद्घाटन के लिए बाहर के व्यापक सामाजिक यथार्थ को अलग कर दिया जाता है। 'निर्मला' उपन्यास सबसे पहले प्रकाशित हुआ—धारावाहिक कथा के रूप में, महिलाओं की अपनी पत्रिका 'चाँद' में : नवम्बर 1925 से नवम्बर '26 तक। उपन्यास का पहला हिन्दी संस्करण 1927 में और पहला उर्दू संस्करण 1929 में प्रकाशित हुआ। 1925 में ही 'समालोचक' नामक पत्र में प्रेमचन्द ने 'उपन्यास' शीर्षक निबंध प्रकाशित किया जिसमें कहा गया था कि बिना मानवशास्त्र के अध्ययन के उपन्यास-रचना असंभव है। कहने की जरूरत नहीं कि मानवशास्त्र की सीमा केवल मनोविज्ञान नहीं है। 'चाँद' महिलाओं की पत्रिका थी और आश्चर्य नहीं कि उसमें प्रकाशित उपन्यास 'निर्मला' नारी समस्या-केन्द्रित उपन्यास है जिससे एक नये यथार्थवाद का आभास होता है। इस उपन्यास की मूल वस्तु है—निर्मला नामक स्त्री का गहरा अन्तर्दाह, जिसके पीछे अनमेल विवाह की त्रासदी है। निस्संदेह यह अन्तर्दाह क्रांतिकारी यथार्थवाद नहीं है, पर जड़ व्यवस्था के विरुद्ध एक चीखता हुआ प्रतिरोध तो है ही।

प्रेमचंद के पहले दुखान्त उपन्यास 'निर्मला' को यदि यथार्थवाद की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयोग माना जाता है तो बहुत कुछ इसलिए कि यहाँ 'सेवासदन' या 'प्रेमाश्रम'-जैसा आदर्शमूलक अंत या समाधान नहीं दिखाया गया है। नया प्रयोग वह इस अर्थ में है कि निर्मला के रूप में एक स्त्री की त्रासद

नियति का बयान करने के साथ ही यह एक किशोर चरित्र मंसाराम की ट्रैजेडी का भी मार्मिक आख्यान है। सौतेले पुत्र मंसाराम के साथ नयी माँ निर्मला माँ-जैसा ही व्यवहार करना चाहती है। जब अधेड़ उम्र के पति तोताराम इस सम्बन्ध को शक से देखने लगते हैं, पुत्र से ईर्ष्या करने लग जाते हैं, तो एक बार नयी माँ निर्मला के अपने हृदय में ही अज्ञात विकल आकर्षण जन्म लेने लगता है। वह अपने मन के भावों को नियंत्रित करती हुई सोचती है : 'न जाने क्यों उसे अपने पास देखकर मेरा हृदय फूला न समाता था। इसलिए मैंने पढ़ने का स्वाँग रचा, नहीं तो वह घर में आता ही न था। यह मैं जानती हूँ कि अगर उसके मन में पाप होता तो मैं उसके लिए सबकुछ कर सकती थी।'

भारतेन्दु के समय से प्रेमचंद के अपने समय तक अनमेल विवाह और दहेज-जैसी समस्याओं को आधार बनाकर लिखे गये उपन्यास कम न थे, 'निर्मला' ने एक अद्वितीय मार्मिक कृति के रूप में इसलिए आकृष्ट किया कि इसमें चरित्रों का अंतर्मंथन और द्वन्द्व पहली बार इतने तीखे और प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुआ था। निर्मला और मंसाराम अन्याय को सीधी चुनौती भले न दे पा रहे हों, उनका मौन प्रतिरोध और अन्ततः उनका आत्मदाह मर्यादाओं की जड़ व्यवस्था को विचलित करनेवाला है। प्रेमचंद पहले से अनुभव करते आ रहे थे कि हिन्दू समाज ने स्त्रियों के स्वत्व के हनन, दमन और शोषण के लिए झूठी मर्यादाओं का जो जड़ ढाँचा निर्मित किया है वह बहुत दिनों तक चलनेवाला नहीं है। 'निर्मला' और 'सेवासदन' स्त्री-चेतना को अभिव्यक्ति देनेवाले महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। उन्हीं को नयी व्याख्या देते हुए पिछले दिनों प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने भारतीय उपन्यास की अपनी परिभाषा में संशोधन स्वीकार किया। जहाँ वे भारतीय उपन्यास को किसान-चेतना का प्रतिनिधि उपन्यास कह रहे थे या किसान-चेतना की महागाथा कह रहे थे, वहाँ उन्हें इन्हीं उपन्यासों के साक्ष्य पर यह कहना जरूरी जान पड़ा कि भारतीय उपन्यास किसान-चेतना और स्त्री-चेतना दोनों को सार्थक अभिव्यक्ति देनेवाला साहित्य-रूप है। रुस्वा का उपन्यास 'उमराव जान अदा' भी इस धारणा को पुष्ट करता है, जैनेन्द्र का उपन्यास 'त्यागपत्र' भी। पुरुषसत्ताप्रधान सामाजिक ढाँचे में दूसरे दर्जे का

नागरिक मानी जानेवाली स्त्रियाँ इन कृतियों में एक तरह के विद्रोह का परिचय देती हैं। भले ही वह एक तरह का मूक विद्रोह हो।

प्रेमचंद के पाठक देख सकेंगे कि उनके आरंभिक उपन्यासों के कथाविधान में एक-सी युक्तियाँ इस्तेमाल की जा रही हैं। 'सेवासदन' के आरंभ में विवाह की तैयारी है, 'निर्मला' के आरंभ में भी। 'सेवासदन' में दो बहनें सुमन और शांता प्रकृति में भिन्नता लिये हैं, 'निर्मला' में भी निर्मला और कृष्णा दो बहनें हैं—और शुरू में ही दोनों के स्वभाव पर प्रेमचंद की टिप्पणी है : "अभी कल दोनों साथ-साथ गुड़ियाँ खेलती थीं। निर्मला का पंद्रहवाँ साल था, कृष्णा का दसवाँ; फिर भी उनके स्वभाव में कोई विशेष अंतर न था। दोनों चंचल खिलाड़िन थीं और सैर-तमाशे पर जान देती थीं।··· पर आज एकाएक एक ऐसी बात हो गयी है जिसने बड़ी को बड़ी और छोटी को छोटी बना दिया है। कृष्णा वही है, पर निर्मला बड़ी गंभीर, एकांतप्रिय और लज्जाशील हो गयी है।" 'सेवासदन' में सुमन के पिता कृष्णचंद्र दहेज जुटाने के लिए रिश्वत लेते हैं और जेल चले जाते हैं। 'निर्मला' में निर्मला के पिता उदयभानुलाल की विवाह की आर्थिक दुश्चिन्ता को लेकर ही पत्नी कल्याणी से कहासुनी होती है, वे सबक सिखाने के लिए आत्महत्या का स्वाँग करने निकलते हैं और उनकी हत्या हो जाती है। न सुमन का पूर्वनिश्चित विवाह सम्पन्न हो पाया, न निर्मला का। दहेज-लोभियों ने दोनों बार छल किया। अनमेल विवाह की त्रासदी का ही उदाहरण था—सुमन का गजाधरप्रसाद से विवाह। अनमेल विवाह का अधिक त्रासद उदाहरण है—निर्मला का वकील तोताराम से विवाह, जिनकी पहली पत्नी तीन बेटों को असहाय छोड़कर मरी थी। इनमें बड़ा मंसाराम भी अबोध किशोर था। भाग्यविधाता ने उसे ही कठिन परीक्षा के लिए चुना था। निर्मला ने कृष्णा से किस घड़ी में कहा था—"हम लड़कियाँ हैं। हमारा घर कहीं नहीं होता।"

प्रेमचंद निर्मला के मुग्धा स्वभाववाले कोमल मन को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—"उसके मन में वे उमंगें नहीं हैं जो युवतियों की आँखों में तिरछी चितवन बनकर, ओंठों पर मधुर हास्य बनकर और अंगों में आलस्य बनकर प्रकट होती हैं। नहीं, वहाँ अभिलाषाएँ नहीं हैं, वहाँ केवल शंकाएँ, चिन्ताएँ और भीरु कल्पनाएँ हैं। यौवन का अभी तक पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ है।"

कल्याणी का वेदनापूर्ण अनुरोध लेकर पुरोहित पंडित मोटेराम संभाव्य वर के पिता निर्मम धनपशु भालचंद्र सिन्हा के सामने पहुँचते हैं तो उनका विकृत भयानक रूप कुछ ऐसा दिखाई देता है—"···मालूम होता है कि काला देव है···सिर से पैर तक एक ही रंग था काला। चेहरा इतना स्याह था कि मालूम न होता था कि माथे का अंत कहाँ है और सिर का आरंभ कहाँ। बस कोयले की एक सजीव मूर्ति थी।" वे पुरोहित को यह कहकर लौटा देते हैं कि विवाह-पूर्व परिवार में मृत्यु अमंगल की सूचना है। उन्हीं की पत्नी रंगीलीबाई एक बार तो दहेज के लालच में प्रस्ताव को नकारने का समर्थन करती हैं पर कल्याणी का पत्र पढ़ते ही उनकी कोमलता, उदारता और करुणा मुखर हो उठती है। वे पिता-पुत्र दोनों को धिक्कारती हैं कि दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। प्रेमचंद अपने समाज की यह विकृति दिखा रहे हैं कि "दहेज नहीं, तो सारे गुण दोष हैं। दहेज हो, तो सारे दोष गुण हैं। प्राणी का कोई मूल्य नहीं, केवल दहेज का मूल्य है।" सहानुभूति के बावजूद प्रेमचंद कल्याणी की कमजोरी को छिपा नहीं रहे हैं। वह साधन-सम्पत्तिशून्य नहीं है, पर उसे बहुत कुछ बचाकर रखना है बेटों के लिए। लड़के-लड़की में भेद करनेवाली यह विकृत मानसिकता आधुनिक कहे जानेवाले समाज में आज तक बनी हुई है। प्रेमचंद लिखते हैं—"कल्याणी का दोष कुछ कम न था। उसे अपने लड़के अपनी लड़कियों से कहीं ज्यादा प्यारे थे। लड़के हल के बैल हैं, भूसे-खली पर पहला हक उनका है, उनके खाने से जो बचे गायों का।"

निर्मला अपने पिता की उम्रवाले पति तोताराम से बचती थी। "वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं, सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जाती थी।" तोताराम उसे रिझाने में कोई कसर न छोड़ते। हर दिन तोहफे। मेवे-मुरब्बे। सिनेमा-थियेटर। पर निर्मला को उन्हीं-उन्हीं बातों से घृणा होती। "वही बातें, जिन्हें किसी युवक के मुख से सुनकर उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुँह से निकलकर उसके हृदय पर शर के समान आघात करती थीं। उनमें रस न था, उल्लास न था, उन्माद न था, हृदय न था, केवल बनावट थी, धोखा था और था शुष्क नीरस शब्दाडम्बर।" निर्मला अपना रूप और यौवन उन्हें दिखाना न चाहती थी क्योंकि "वहाँ देखनेवाली आँखें न थीं"। जब वह आईने के सामने

होती, उसका हृदय ''सतृष्ण कामना'' से तड़प उठता था। उसके हृदय में ज्वाला-सी उठती थी। प्रेमचंद के शब्द हैं—''निर्मला की दशा उसी बाँके सवार की-सी थी। वह उस पर उड़ना चाहती थी, उस उल्लासमयी विद्युत गति का आनंद उठाना चाहती थी, टट्टू के हिनहिनाने और कनौतियाँ खड़ी करने से क्या आशा होती!'' तोताराम अपनी उम्र से कम दिखने की जितनी ही कोशिश करते, उतने ही हास्यास्पद हो उठते। वे अपनी कल्पित वीरता की जितनी ही कहानियाँ गढ़ते, उतनी ही उनकी दुर्बलता और कायरता प्रकट होती।

निर्मला की एक बड़ी उलझन और थी! वकील तोताराम की विधवा बहन रुक्मिणीदेवी बच्चों को नयी माँ निर्मला के पास न जाने देतीं। उल्टे उन्हें समझातीं कि नयी माँ को अपने बनाव-शृंगार से फुरसत कहाँ है! निर्मला पर उनका आरोप था कि उसे पता ही कहाँ कि बच्चों को माँ के प्यार की कैसी भूख होती है। निर्मला ने सारे आरोप भूलकर बच्चों की दुनिया में अपने को शामिल किया जबकि पति का निर्देश यही था कि बच्चे रुक्मिणीदेवी से ही सरोकार रखें। अब बच्चों के साथ हँसने-बोलने में निर्मला की मातृकल्पना तृप्ति का अनुभव करती थी। बड़ा बेटा मंसाराम भी पास आने लगा था जो निर्मला का हमसिन था, यद्यपि मानसिक विकास में कम-से-कम पाँच साल छोटा। उसकी कामनाओं का अपना एक हराभरा बाग था। इकहरे बदन का छरहरा, सुंदर, हँसमुख, लज्जाशील मंसाराम अब पहले की तरह नयी माँ के प्रति शंकालु न था। उधर मंसाराम से हँसने-बोलने में निर्मला की विलासिनी कल्पना उत्तेजित होती थी और तृप्त भी और इधर पुत्र के प्रति तोताराम की ईर्ष्या-ग्रंथि उन्हें निरंतर अशांत रखती थी। यह जानकर कि मंसाराम फुरसत के वक्त में निर्मला को अंग्रेजी पढ़ा देता है, तोताराम का शक और गहरा हो जाता। निर्मला की समूची गतिविधि उन्हें रहस्यमय लगती। अनमेल विवाह की विडम्बना पर व्यंग प्रेमचंद दूसरे उपन्यासों में भी करते हैं। 'कायाकल्प' में लौंगी कहती है—''ब्याह जोड़ का ही अच्छा होता है। ऐसा ब्याह किस काम का कि वर बहू का बाप मालूम हो।'' वकील तोताराम कभी युवा प्रेमी-जैसा आचरण करते तो निर्मला को सन्देह होता—इन्हें उन्माद का कोई रोग तो नहीं लग रहा है। निर्मला वय-भेद की वास्तविकता को स्वीकार कर रही थी और

अब उसने कर्त्तव्य का रास्ता चुन लिया था। फिर भी जब पति-पत्नी एक-दूसरे के सामने होते, तो दोनों सूरतों का अंतर डर पैदा करता था—अगर एक 'रत्नजटित भवन' था तो दूसरा 'टूटा-फूटा खँडहर'।

तोताराम योजना बनाकर मंसाराम को निर्मला से दूर रखने के लिए उसे छात्रावास भेजते हैं। इसके लिए उन्हें कई तर्क गढ़ने पड़ते हैं। निर्मला को समझाते हैं कि वह मेहनत से पढ़ नहीं रहा है—छात्रावास में एकाग्र होकर पढ़ पायेगा। मंसाराम से कहते हैं कि पिता का प्यार तो वे दे ही रहे हैं—नयी माँ के मन में ही खोट है, तो वे क्या करें। रुक्मिणीदेवी भी मंसाराम को यही समझाती हैं कि कुछ भी उसके विरुद्ध रचा जा रहा है तो इस नयी माँ के द्वारा ही। निर्मला पति के सन्देह को दूर करने के लिए प्रतिज्ञा करती है कि वह मंसाराम के लिए कोई लगाव नहीं दिखायेगी। हालाँकि वह जानती है, मंसाराम से इस तरह अपने को अलग रख पाना कितना कठिन है। निर्मला गहरे द्वन्द्व में है। वह सबकी निगाह में बुरी बन रही है, पर सच नहीं कह पा रही है। सच कह पाती तो मुंशी तोताराम को मुँह छिपाने-भर के लिए जगह न मिलती। प्रेमचंद लिखते हैं—"चोर के घर चोरी हो जाने से उसकी जो दशा होती है, वही दशा इस समय निर्मला की हो रही थी।" मंसाराम से निर्मला के विरुद्ध इतना कुछ कह दिया जाता कि वह माँ की स्मृति और अपनी असहायता और निरर्थकता को लेकर प्रायः घुटता रहता। नयी माँ के स्वभाव की अस्थिरता में सचाई कितनी है और अभिनय कितना है, यह समझ पाना उसके लिए कठिन था। सचाई यह कि वह मंसाराम के लिए कुछ भी करने को तैयार थी, जबकि अभिनय सिर्फ पति के विकृत सन्देह को यथासंभव दूर रखने के लिए था। मंसाराम कई बार सोचता—क्या यह जो प्रेम दिखाती हैं वह कौशल मात्र है—"हो सकता है ? चिड़िया को जाल में फँसाने के पहले शिकारी दाने बिखेरता है ! आह ! मैं नहीं जानता था कि दाने के नीचे जाल है; यह मातृस्नेह केवल मेरे निर्वासन की भूमिका है।"

माँ होने की मर्यादा का एहसास और अतृप्त युवा स्वभाव की सतृष्ण कामना—निर्मला के इस द्वन्द्व को प्रेमचंद मार्मिक अभिव्यक्ति दे सके हैं। प्रकट है कि एक भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत मातृत्व उस पर थोप

दिया गया है। यह उसका अपना चुनाव नहीं है। अपने भीतर उठे कामनाओं के ज्वार को नियंत्रित करने के लिए वह लगातार प्रयत्नशील है। मंसाराम से अपने सहज लगाव के लिए उसे लगातार झूठ और अभिनय का सहारा लेना पड़ रहा है। रात की निस्तब्धता में रूठे हुए और अपने दुर्भाग्य पर रोते हुए मंसाराम को वह मनाने चली तो उसका हृदय काँप रहा था। मंसाराम उसके दो तरह के व्यवहार की असलियत जान पाने में असमर्थ था। पति के सामने पड़ते ही निर्मला की चेष्टाएँ और प्रतिक्रियाएँ कुछ और कहने लगतीं—स्वर बदल जाता। वह सोचता : 'जिन नेत्रों में एक क्षण पहले विनय के आँसू भरे हुए थे, उनमें अकस्मात ईर्ष्या की ज्वाला कहाँ से आ गयी ! जिन अधरों से एक क्षण पहले सुधावृष्टि हो रही थी, उनमें से विष का प्रवाह क्यों होने लगा !' निर्मला छात्रावास जाते हुए मंसाराम को न रोक सकी, न यही बता सकी कि उसके निर्वासन के मूल में उसके अपने ही पिता की ईर्ष्याग्रंथि है—न प्रेम है, न पढ़ाई की चिन्ता ! उसकी दशा प्रेमचंद के शब्दों में उस पंखहीन पक्षी की तरह हो रही थी जो सर्प को अपनी ओर आते देखकर उड़ना चाहता है पर उड़ नहीं सकता—उछलता है और गिर पड़ता है—पंख फड़फड़ाकर रह जाता है।

जब निर्मला ने अबोध किशोर मंसाराम की मनःस्थिति जान ली कि वह निर्मला को ही निर्वासन का हेतु मान रहा है और जीवन को व्यर्थ मानकर अपने को मिटाने का संकल्प कर बैठा है तो वह 'मंसाराम की रक्षा करने के लिए विकराल हो गयी'। पहली बार वह अपने शंकालु पति तोताराम को कठघरे में खड़ा करके पूछ सकी—"खूब सोचिए, इसलिए आपने वहाँ भेजा था ? आपके मन में कोई और बात न थी ?" मंसाराम को भी आखिर छोटे भाई से पता चल गया कि पिता के मन में उसे लेकर शंका किस तरह की है। वह अपने से पूछ रहा था—क्या आज तक किसी पिता ने पुत्र पर ऐसा निर्दय कलंक लगाया होगा। उसका दिल फटा जा रहा था—आत्मग्लानि से ही नहीं, नयी माँ के प्रति स्नेहशील चिंता के कारण भी—उनका सरल हृदय यह आघात कैसे सह सकेगा। ज्वरग्रस्त मंसाराम ने अपने को मिटाने का ही संकल्प किया। 'अपनी मानरक्षा के लिए न सही, उनकी मानरक्षा के लिए इन प्राणों का बलिदान करना पड़ेगा।··· मुझे अपने प्राणों से उनके प्राणों

की रक्षा करनी पड़ेगी ।' वह अपने मन में कह रहा था—'माँ ! मैं अपने रक्त से इस कालिमा को धो दूँगा ।'

तोताराम को मंसा की हालत बिगड़ने की खबर मिली तो भी उन्हें मंसा को छात्रावास से हटाने की स्थिति में अस्पताल ही याद आया, घर नहीं । उनकी विकृत शंका अभी तक निर्मूल न हो पायी थी । निर्मला आकर सीधे मंसाराम के लिए कुछ कर सके, इसकी छूट उसे न थी । वस्तुतः यह था पुरुष-सत्ता का अपना सामंतवाद, जो दो हृदयों की भावनाओं को एक साथ कुचलने पर आमादा था । मंसा के भीतर जैसे कोई भीषण क्रांति हो रही थी । संदेह के निष्ठुर आघात ने उसकी लज्जा और आत्मसम्मान को मिटा दिया था । वह विक्षिप्त अवस्था का उच्छृंखल विनोद दिखा रहा था जो उसकी आत्मा का करुण विलाप था । उसका अंत निकट था । तोताराम के लिए प्रेमचंद कहते हैं—"वह आग जो उन्होंने अपने ठिठुरे हाथों को सेंकने के लिए जलायी थी, अब उनके घर में लगी जा रही थी ।" रुक्मिणी अपनी प्रकृति के अनुरूप अब भी निर्मला को इस विध्वंस के लिए उत्तरदायी ठहरा रही थी, जबकि तोताराम अपने मन का वास्तविक भेद खुल जाने के डर से विचलित थे । क्या मंसाराम को उनके संदेह का पता चल गया है !—इसकी कल्पना से ही उनका मन दहल उठा था । प्रेमचंद कहते हैं—"उनकी देह की सारी हड्डियाँ मानो हाहाकार पर पानी डालने के लिए व्याकुल हो उठीं ।" मंसाराम की हालत बिगड़ती जा रही थी और अब खून देना उसे बचाने के लिए जरूरी था । निर्मला अपने को रोक न सकी—हालाँकि अब भी विकृत शंकाओं से घिरे तोताराम उसकी उपस्थिति की छाया से मंसाराम को बचा रहे थे । निर्मला को अब जैसे कोई डर न था । उसकी सबसे प्रिय वस्तु उससे छिनने जा रही थी । मंसाराम उन्माद की स्थिति में कह रहा था—"मैं आपका स्नेह कभी नहीं भूलूँगा । ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आपके गर्भ से हो जिससे मैं आपके ऋण से उऋण हो सकूँ ।" मंसाराम के जीवन का यही अंत था ।

'निर्मला' की मूल कथा निर्मला और मंसाराम की त्रासद नियति की कथा है । मंसाराम के अंत में निर्मला का अंत भी शामिल है । यहाँ से प्रेमचंद कथा को कुछ और दिशाओं में ले जाते हैं । निर्मला ने जिस कन्या को जन्म दिया वह मंसाराम का प्रतिरूप जान पड़ती थी । यह सोचकर तोताराम एक बार फिर

दुनिया में लिप्त हो सकते थे, पर परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती जा रही थीं। पुत्र-शोक से उत्पन्न विरक्ति के चलते मकान नीलाम हो चुका था। अपने ही दोनों बेटे उन्हें सारे दुर्भाग्य के लिए जिम्मेदार ठहरा रहे थे और उन्हें अपमानित करने पर तुले बैठे थे। निर्मला की छोटी बहन कृष्णा का विवाह उसी सम्पन्न परिवार में होने जा रहा था जहाँ निर्मला का विवाह नहीं हो पाया था। इस बार दहेज की कोई शर्त न थी। वर खद्दर पहननेवाला, राष्ट्रप्रेम और समाजहित के लिए समर्पित युवक था। निर्मला कृष्णा की उमंग देखती तो उसे अपने विवाह की कठिन घड़ी याद आती जब उसकी अभिलाषाएँ मण्डप के नीचे बने हवनकुंड में भस्म होने जा रही थीं। विवाह के समय भेद यह खुला कि उसकी सहेली सुधा के पति डाक्टर सिन्हा ही वह व्यक्ति हैं जिनसे उसका विवाह निश्चित होकर भी न हो सका था और अब उन्हीं की प्रेरणा से कृष्णा का विवाह इस सुखद रूप में सम्पन्न हो रहा था।

नियति का खेल यहाँ कई रूपों में खेला जा रहा है। तोताराम के दोनों बेटे गलत रास्ते पर हैं। एक निर्मला के गहनों का बक्सा चुराता है और यद्यपि निर्मला ही उसे जेल जाने से बचा लेती है, पर ग्लानि में आत्महत्या कर लेता है। दूसरा निर्मला के प्रति अंत तक दुर्भावनाग्रस्त है और साधु के भटकावे में घर छोड़कर चला जाता है। प्रेमचंद लिखते हैं—''मन ! तेरी गति कितनी विचित्र है ! कितनी रहस्य से भरी हुई ! कितनी दुर्भेद्य ! तू कितनी जल्दी रंग बदलता है।'' तीसरे बेटे के आत्मनिर्वासन पर प्रेमचंद की टिप्पणी है—''दाने पर मँडराता हुआ पक्षी अंत में दाने पर गिर पड़ा। उसके जीवन का अंत पिंजरे में होगा या ब्याध की छुरी के तले—यह कौन जानता है !'' अभी नियति का खेलचक्र पूरा नहीं हुआ है। अंतिम रहस्य यह कि सुधा के पति डॉक्टर सिन्हा भीतर ही भीतर निर्मला के प्रति आकृष्ट थे। अब जबकि निर्मला का संसार बहुत कुछ उजड़ चुका था, वह सुधा के यहाँ आकर ही प्रसन्नता का अनुभव करती। प्रेमचंद कहते हैं—''यौवन काल की स्वाभाविक वृत्तियाँ अपने घर पर रास्ता बंद देखकर यहाँ किलोलें करने आतीं।'' आश्चर्य कि जब एक दिन सुधा की अनुपस्थिति में डॉक्टर सिन्हा उससे सीधे प्रणय-निवेदन कर बैठते हैं, वह क्रोध में उत्तेजित और अशांत घर लौट आती है और सुधा के बहुत पूछने पर यह भेद खोल देती है। सुधा में भी इतना संयम

नहीं है कि वह कुछ और प्रतीक्षा करे। वह डॉक्टर सिन्हा से जो भी कह पायी हो, अंत यही हुआ कि उन्होंने आत्महत्या कर ली। निर्मला ने भी इस आखिरी पछतावे की आग में अपने को मिटा दिया। जब मुंशी तोताराम तीसरे बेटे की खोज के विफल होने पर घर में प्रवेश कर रहे थे, निर्मला का शव बाहर निकाला जा रहा था। जैसे कथा का जाल समेटा जा रहा है। एक दुनिया उजड़ रही है।

अनमेल विवाह की त्रासदी पर आधारित इस मूल कथा में कितनी ही कथाएँ हैं जो हमारे सामाजिक सम्बन्धों की विडम्बना को प्रत्यक्ष करती हैं। पहले नारी-समस्या-प्रधान इस उपन्यास के स्त्री-चरित्रों की विविधता को देखें। कल्याणी और रंगीलीबाई दोनों में इतनी समानता तो है कि पति की अधीनता में भी सच कहने के साहस से वंचित नहीं हैं। कल्याणी पति से कह सकती है कि "घर में तुम्हारा जितना अधिकार है उतना ही मेरा भी।" रंगीलीबाई में तो इतना साहस है, कि डॉक्टर रामविलास शर्मा की दृष्टि में, उसकी चरित्र-सृष्टि करके प्रेमचंद ने बहुत-सी सताई हुई स्त्रियों का मानो बदला ले लिया हो। सुधा और डॉक्टर सिन्हा का दाम्पत्य जीवन अत्यंत सुखद दिखाया गया है—फिर भी डॉक्टर सिन्हा के हृदय में निर्मला के लिए अज्ञात प्रेम-भावना सुलगने लगती है। वे सीधे निर्मला से यही तो पूछते हैं—"कब तक इस आग में जला करूँ।" यह कहते हुए उनकी मनःस्थिति सहज न थी—"उनके मन में घोर द्वन्द्व मचा हुआ था। औचित्य का बंधन नहीं, भीरुता का कच्चा तागा उनकी जबान को रोके हुए था।" निर्मला की पीड़ा या अन्तर्दाह में यौन अतृप्ति छिपी नहीं है। 'प्रतिज्ञा' में प्रेमचंद अपने एक पात्र से कहलाते हैं—"प्रेम के संसार में आदमी की बनायी हुई सामाजिक व्यवस्थाओं का कोई मूल्य नहीं है।" निर्मला अपनी भावनाओं का दमन करती है, पर अपनी भावनाओं की असलियत को अपने से छिपाती नहीं है। वह स्वीकार करती है कि अगर मंसाराम के मन में पाप होता तो वह उसके लिए कुछ भी कर सकती थी। याद रहे कि यह वही निर्मला है जिसने डॉक्टर सिन्हा के प्रणय-निवेदन को एक पल के लिए उचित नहीं माना—शायद इसलिए, कि इसे वह अन्तरंग सहेली सुधा के प्रति विश्वासघात समझती थी—शायद इसलिए, कि मंसाराम की मृत्यु के बाद वह अपने को किसी भावनात्मक प्रसंग में शामिल नहीं करना चाहती थी।

और अगर डॉक्टर सिन्हा का प्रेम करुणा के बहाने पैदा हुआ था तो अब उसे किसी करुणा की जरूरत न थी । प्रेमचंद के अनुसार अगर यौवन की स्वाभाविक वृत्तियाँ सुधा के घर किलोलें करने आती भी थीं तो वे अपनी सीमा जानती थीं । प्रेमचंद की अपनी दुविधा कहाँ है ! अगर वे एक नयी यौन नैतिकता का पक्ष ले रहे हैं तो उसकी भी एक सामाजिक मर्यादा बता रहे हैं ।

उपन्यास के शुरू में ही विवाह की अनिश्चित कल्पनाओं में खोई हुई निर्मला की मानसिक दशा बताने के लिए प्रेमचंद एक तरह की रूपक-कथा गढ़ते हैं—एक स्वप्न-कथा : "बाग में फूल खिले हुए थे । मीठी-मीठी सुगंध आ रही थी । चैत की शीतल मंद समीर चल रही थी । आकाश में तारे छिटके हुए थे । निर्मला इन्हीं शोकमय विचारों में पड़ी-पड़ी सो गयी और आँख लगते ही उसका मन स्वप्न-देश में विचरने लगा । क्या देखती है कि सामने एक नदी लहरें मार रही है और वह नदी के किनारे नाव की बाट देख रही है । सन्ध्या का समय है । अँधेरा किसी भयंकर जंतु की भाँति बढ़ता चला आता है । वह घोर चिंता में पड़ी हुई है कि कैसे यह नदी पार होगी, कैसे पहुँचूँगी । रो रही है कि कहीं रात न हो जाय, नहीं तो मैं अकेली यहाँ कैसे रहूँगी । एकाएक उसे एक सुंदर नौका घाट की ओर आती दिखाई देती है । वह खुशी से उछल पड़ती है और ज्योंही नाव घाट पर आती है, वह उस पर चढ़ने के लिए बढ़ती है; लेकिन ज्योंही नाव के पटरे पर पैर रखना चाहती है, उसका मल्लाह बोल उठता है—तेरे लिए यहाँ जगह नहीं है ।" फिर आती है—वह डोंगी, जिसमें न पाल है, न पतवार, न मस्तूल—पेंदा फटा हुआ, तख्ते टूटे हुए, नाव में पानी भरा हुआ । लगता है अब डूबी, तब डूबी । उपन्यास के अंत तक आते-आते रूपक-कथा के निहितार्थ प्रकट हैं । याद आते हैं, शरत-जैसे कथाकार, जिन्होंने कलात्मक युक्ति के रूप में प्रकृति और मनुष्य के जीवन-व्यवहार के बीच एक तरह का सादृश्य ऐसे ही उद्देश्य के लिए दिखाया है ।

'चाँद' में 'निर्मला' का प्रकाशन 1925 से आरंभ हुआ था । यही वह समय है जब महात्मा गांधी ने 'यंग इंडिया' में प्रकाशित अपनी एक टिप्पणी में यह स्पष्ट माँग की थी कि स्त्री को अपना भाग्य निर्धारित करने का अधिकार दिया जाय । वह पुरुषों की अधीनता से मुक्त हो और राष्ट्र-निर्माण के

आयोजन में हिस्सा ले । करुणा के चरित्र में यह संभावना छिपी है कि वह स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़कर अपनी सार्थकता अनुभव करा सके क्योंकि उसका जीवनसाथी इस महान आन्दोलन से पहले से ही सम्बद्ध है । 'निर्मला' के गद्य में जो निखार है, वह संघर्ष-चेतना का ही परिणाम है । यहाँ शिल्पगत सीमाएँ छिपी नहीं हैं—जैसे संयोग और आकस्मिकता, अस्वाभाविकता और अतिरंजना । पर कृति का केन्द्रीय मर्म अंत तक पाठक को बाँधे रहता है । एक ट्रैजिक अवसाद ही शायद यह केन्द्रीय मर्म है । स्त्री के उत्पीड़न की करुण कथा कहनेवाले प्रेमचंद को मुक्तिबोध ने उत्थानशील भारतीय सामाजिक क्रांति का पहला और अंतिम महान कलाकार कहा है । महत्वपूर्ण यह है कि इस करुण कथा में उन्हें क्रान्तिकारी करुणा का बीज भी दिखाई देता है जो हमारी आत्मकेन्द्रिता के दुर्ग को तोड़कर हमें अच्छा मनुष्य बनाने में सक्षम है । इसी अर्थ में प्रेमचंद हमारी आत्मा के शिल्पी हैं । भाषा की दृष्टि से प्रेमचंद की एक और विशेषता ध्यान देने योग्य है—वाक्य का विलक्षण संगठन । सादगी में ही अधिक अर्थगर्भ और व्यंजक । जैनेन्द्र ने रवीन्द्र, शरत् और प्रेमचंद के रचनात्मक प्रभाव का तुलनात्मक मूल्यांकन करते हुए कभी यह टिप्पणी की थी—''रवीन्द्र आदि की कृति में किसी एक स्थल पर उँगली रखकर कहना कठिन है कि 'कैसा अच्छा है !' शरत् की खूबी समझ में नहीं आती कि किस ख़ास जगह है । एक-एक वाक्य करके देखो तो कोई विशेष विस्मयकारी बात नहीं मालूम होगी । पर प्रेमचंद में से कहीं कोई वाक्य उठा लो, जान पड़ेगा कि मानो स्वयं सम्पूर्ण है, चुस्त, कसा हुआ, अर्थपूर्ण है ।'' 'निर्मला' प्रेमचंद की इस कलात्मक विशिष्टता के लिए अत्यंत उपयुक्त उदाहरण है । और अंत में, महत्वपूर्ण यह है कि 'निर्मला' में प्रेमचंद की मनोवैज्ञानिक समझ के पीछे सामाजिक कल्पना का बल है । निर्मला के द्वन्द्व को, निर्मला और मंसाराम की मिली-जुली ट्रैजेडी को प्रेमचंद जिस सहानुभूति के साथ चित्रित कर सके हैं वह गहरे संवेदनात्मक लगाव के बगैर असंभव है । व्यवस्था के विरुद्ध चीखता हुआ प्रतिरोध निर्मला का ही नहीं, प्रेमचंद का अपना मूल स्वर भी है ।

परमानंद श्रीवास्तव

एक

यों तो बाबू उदयभानु लाल के परिवार में बीसों ही प्राणी थे, कोई ममेरा भाई था, कोई फुफेरा; कोई भांजा था, कोई भतीजा; लेकिन यहां हमें उनसे कोई प्रयोजन नहीं। वह अच्छे वकील थे, लक्ष्मी प्रसन्न थी और कुटुम्ब के दरिद्र प्राणियों को आश्रय देना उनका कर्त्तव्य ही था। हमारा सम्बन्ध तो केवल उनकी कन्याओं से है, जिनमें बड़ी का नाम निर्मला और छोटी का कृष्णा था। अभी कल तक दोनों साथ-साथ गुड़ियां खेलती थीं। निर्मला का पन्द्रहवां साल था, कृष्णा का दसवां, फिर भी उनके स्वभाव में कोई विशेष अन्तर न था। दोनों चंचल, खिलाड़िन और सैर-तमाशे पर जान देती थीं। दोनों गुड़ियों का धूमधाम से ब्याह करती थीं, सदा काम से जी चुराती थीं। मां पुकारती रहती थी, पर दोनों कोठे पर छिपी बैठी रहती थीं कि न जाने किस काम के लिए बुलाती है। दोनों अपने भाइयों से लड़ती थीं, नौकरों को डांटती थीं और बाजे की आवाज सुनते ही द्वार पर खड़ी हो जाती थीं। पर आज एकाएक एक ऐसी बात हो गई जिसने बड़ी को बड़ी और छोटी को छोटी बना दिया है। कृष्णा वही है, पर निर्मला गम्भीर, एकान्तप्रिय और लज्जाशील हो गई।

इधर महीनों से बाबू उदयभानु लाल निर्मला के विवाह की बातचीत कर रहे थे। आज उनकी मेहनत ठिकाने लगी है। बाबू भालचन्द्र सिन्हा के ज्येष्ठ पुत्र भुवनमोहन सिन्हा से बात पक्की हो गई है। वर के पिता ने कह दिया

है कि आपकी खुशी हो दहेज दें या न दें, मुझे इसकी परवाह नहीं । हां, बारात में जो लोग जाएं, उनका आदर-सत्कार अच्छी तरह होना चाहिए, जिससे मेरी और आपकी जग-हंसाई न हो । बाबू उदयभानु लाल थे तो वकील, पर संचय करना न जानते थे । दहेज उनके सामने कठिन समस्या थी । इसलिए जब वर के पिता ने स्वयं कह दिया कि मुझे दहेज की परवाह नहीं, तो मानो उन्हें आंखें मिल गयीं । डरते थे, न जाने किस-किसके सामने हाथ फैलाना पड़े । दो-तीन महाजनों को ठीक कर रखा था । उनका अनुमान था कि हाथ रोकने पर भी बीस हजार से कम खर्च न होंगे । यह आश्वासन पाकर खुशी के मारे फूले न समाए ।

इसी सूचना ने अज्ञान बालिका को मुंह ढांपकर एक कोने में बिठा रखा है । उसके हृदय में एक विचित्र शंका समा गई है, रोम-रोम में एक अज्ञात भय का संचार हो गया है—न जाने क्या होगा ? उसके मन में वे उमंगें नहीं हैं, जो युवतियों की आंखों में तिरछी चितवन बनकर, होंठों पर मधुर हास्य बनकर और अंगों में आलस्य बनकर प्रकट होती हैं । नहीं, वहां अभिलाषाएं नहीं हैं । वहां केवल शंकाएं, चिन्ताएं और भीरु कल्पनाएं हैं । यौवन का अभी तक पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ है ।

कृष्णा कुछ-कुछ जानती है, कुछ-कुछ नहीं जानती । बहन को अच्छे-अच्छे गहने मिलेंगे, द्वार पर बाजे बजेंगे, मेहमान आएंगे, नाच होगा—यह जानकर प्रसन्न है । और यह भी जानती है कि बहन सबके गले मिलकर रोएगी, यहां से रो-धोकर विदा हो जाएगी । मैं अकेली रह जाऊंगी, यह जानकर दुःखी है । पर यह नहीं जानती कि यह सब किसलिए हो रहा है, माताजी और पिताजी क्यों बहन को घर से निकालने को इतने उत्सुक हो रहे हैं । बहन ने तो किसी को कुछ नहीं कहा, किसी से लड़ाई नहीं की, क्या इसी तरह एक दिन मुझे भी ये लोग निकाल देंगे ? मैं भी इसी तरह कोने में बैठकर रोऊंगी और किसी को मुझ पर दया न आएगी ? इसलिए वह भयभीत भी है ।

सन्ध्या का समय था । निर्मला छत पर जाकर अकेली बैठी आकाश की ओर तृषित नेत्रों से ताक रही थी । ऐसा मन होता था कि पंख होते, तो वह उड़ जाती और इन सारे झंझटों से छूट जाती । इस समय बहुधा दोनों बहनें

कहीं सैर करने जाया करती थीं। बग्घी खाली न होती, तो बगीचे में टहला करतीं। इसलिए कृष्णा उसे खोजती फिरती। जब कहीं न पाया, तो छत पर आयी और उसे देखते ही हंसकर बोली—तुम यहां आकर छिपी बैठी हो और मैं तुम्हें ढूंढ़ती फिरती हूं। चलो, बग्घी तैयार कर आयी हूं।

निर्मला ने उदासीन भाव से कहा—तू जा, मैं न जाऊंगी।

कृष्णा—नहीं, मेरी अच्छी दीदी, आज जरूर चलो। देखो, कैसी ठंडी-ठंडी हवा चल रही है।

निर्मला—मेरा मन नहीं चाहता, तू चली जा।

कृष्णा की आंखें डबडबा आयीं। कांपती हुई आवाज से बोली—आज तुम क्यों नहीं चलतीं? मुझसे क्यों नहीं बोलतीं? क्यों इधर-उधर छिपी-छिपी फिरती हो? मेरा जी अकेले बैठे-बैठे घबराता है। तुम न चलोगी, तो मैं भी न जाऊंगी। यहीं तुम्हारे पास बैठी रहूंगी।

निर्मला—और जब मैं चली जाऊंगी, तब क्या करेगी? तब किसके साथ खेलेगी, किसके साथ घूमने जाएगी, बता?

कृष्णा—मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी, अकेले मुझसे यहां न रहा जाएगा।

निर्मला मुस्कराकर बोली—तुझे अम्मा न जाने देंगी।

कृष्णा—तो मैं भी तुम्हें न जाने दूंगी। अम्मा से कह क्यों नहीं देती कि न जाऊंगी?

निर्मला—कह तो रही हूं, कोई सुनता है?

कृष्णा—तो क्या यह घर तुम्हारा नहीं है?

निर्मला—नहीं, मेरा होता, तो कोई जबरदस्ती निकाल देता?

कृष्णा—इसी तरह मैं भी किसी दिन निकाल दी जाऊंगी?

निर्मला—और नहीं क्या तू बैठी रहेगी? हम लड़कियां हैं, हमारा घर कहीं नहीं होता।

कृष्णा—चन्दर भी निकाल दिया जाएगा?

निर्मला—चन्दर तो लड़का है, उसे कौन निकालेगा?

कृष्णा—तो लड़कियां बहुत खराब होती होंगी?

निर्मला—खराब न होतीं, तो घर से भगायी क्यों जातीं?

कृष्णा—चन्दर इतना बदमाश है, उसे कोई नहीं भगाता। हम-तुम तो

बदमाशी भी नहीं करतीं ।

एकाएक चन्दर धम-धम करता छत पर आ पहुंचा और निर्मला को देखकर बोला—अच्छा, आप यहां बैठी हैं । ओहो ! अब तो बाजे बजेंगे, दीदी दुल्हन बनेगी, पालकी पर चढ़ेगी, ओहो ! ओहो !!

चन्दर का पूरा नाम चन्द्रभानु सिन्हा था । निर्मला से तीन साल छोटा और कृष्णा से दो साल बड़ा था ।

निर्मला—चन्दर, मुझे चिढ़ाओगे तो अभी जाकर अम्मा से कह दूंगी ।

चन्दर—तो चिढ़ती क्यों हो ? तुम भी बाजे सुनना ! ओहो ! अब आप दुल्हन बनोगी ! किशनी, तू बाजे सुनेगी न ? वैसे बाजे तूने कभी न सुने होंगे ?

कृष्णा—क्या बैण्ड से भी अच्छे होंगे ?

चन्दर—हां-हां, बैण्ड से भी अच्छे, हजार गुने अच्छे, लाख गुने अच्छे ! तुम जानो क्या ? एक बैण्ड सुन लिया, तो समझने लगीं कि उससे अच्छे बाजे नहीं होते । बाजे बजानेवाले लाल-लाल वर्दियां और काली-काली टोपियां पहने होंगे । ऐसे खूबसूरत मालूम होंगे कि तुमसे क्या कहूं । आतिशबाजियां भी होंगी; हवाइयां आसमान में उड़ जाएंगी और वह तारों में लगेंगी तो लाल, पीले, हरे व नीले तारे टूट-टूटकर गिरेंगे । बड़ा मजा आएगा ।

कृष्णा—और क्या-क्या होगा चन्दर, बता मेरे भैया ?

चन्दर—मेरे साथ घूमने चल, तो रास्ते में सारी बात बता दूं । ऐसे-ऐसे तमाशे होंगे कि देखकर तेरी आंखें खुल जाएंगी । हवा में उड़ती हुई परियां होंगी; सचमुच की परियां ।

कृष्णा—अच्छा चलो, लेकिन न बताओगे तो मारूंगी ।

चन्द्रभानु और कृष्णा चले, पर निर्मला अकेले बैठी रह गई । कृष्णा के चले जाने से इस समय उसे बड़ा क्षोभ हुआ । कृष्णा जिसे वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, आज इतनी निठुर हो गई । अकेली छोड़कर चली गई । बात कोई न थी, लेकिन दुःखी हृदय दुखती हुई आंख है जिसमें हवा से भी पीड़ा होती है । निर्मला बड़ी देर तक रोती रही । भाई-बहन, माता-पिता सभी इस भांति भूल जाएंगे, सबकी आंखें फिर जाएंगी । शायद इन्हें देखने को भी तरस जाऊं ।

बाग में फूल खिले हुए थे। मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही थी। चैत की शीतल, मन्द समीर चल रही थी। आकाश में तारे छिटके हुए थे। निर्मला इन्हीं शोकमय विचारों में पड़ी-पड़ी सो गई और आंख लगते ही उसका मन स्वप्न देश में विचरने लगा। क्या देखती है कि सामने एक नदी लहरें मार रही है और वह नदी के किनारे नाव की बाट देख रही है। सन्ध्या का समय है। अंधेरा किसी भयंकर जन्तु की भांति बढ़ता चला आता है। वह घोर चिंता में पड़ी हुई है कि कैसे यह नदी पार होगी, कैसे घर पहुंचूंगी? रो रही है कि रात न हो जाए, नहीं तो मैं अकेले यहां कैसे रहूंगी। एकाएक उसे एक सुन्दर नौका घाट की ओर आती दिखाई देती है। वह खुशी से उछल पड़ती है और ज्योंही नाव घाट पर आती है, वह उस पर चढ़ने के लिए बढ़ती है, पर ज्योंही नाव के पटरे पर पैर रखना चाहती है, उसका मल्लाह बोल उठता है—तेरे लिए यहां जगह नहीं है! वह मल्लाह की खुशामद करती है, उसके पैरों पड़ती है, रोती है; लेकिन वह कहे जाता है—तेरे लिए यहां जगह नहीं है! एक क्षण में नाव खुल जाती है। वह चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगती है। नदी के निर्जन तट पर रात-भर कैसे रहेगी, यह सोच, वह नदी में कूदकर उस नाव को पकड़ना चाहती है कि इतने में कहीं से आवाज आती है—"ठहरो, ठहरो, नदी गहरी है, डूब जाओगी। वह नाव तुम्हारे लिए नहीं है। मैं आता हूं। मेरी नाव पर बैठ जाओ, मैं उस पार पहुंचा दूंगा।" वह भयभीत होकर इधर-उधर देखती है कि यह आवाज कहां से आई। थोड़ी देर के बाद एक छोटी-सी डोंगी आती दिखाई देती है। उसमें न पाल है, न पतवार, न मस्तूल। पेंदा फटा हुआ, तख्ते टूटे हुए, नाव में पानी भरा हुआ है और एक आदमी उसमें से पानी उलीच रहा है। यह तो टूटी है, यह कैसे पार लगेगी? मल्लाह कहता है—तुम्हारे लिए यही भेजी गई है, आकर बैठ जाओ। वह एक क्षण सोचती है—इसमें बैठूं? अन्त में वह यह निश्चय करती है, बैठ जाऊं। यहां अकेली पड़ी रहने से नाव में बैठ जाना फिर भी अच्छा है। किसी भयंकर जन्तु के पेट में जाने से तो यह अच्छा है कि नदी में डूब जाऊं। कौन जाने, नाव पार पहुंच ही जाए, यही सोचकर वह प्राणों को मुट्ठी में लिये हुए नाव पर बैठ जाती है। कुछ देर तक नाव डगमगाती हुई चलती है, लेकिन प्रतिक्षण उसमें पानी भरता जाता है। वह भी मल्लाह के साथ दोनों हाथों से पानी उलीचने लगती

है। यहां तक कि उसके हाथ थक जाते हैं, पर पानी बढ़ता ही जाता है। आखिर नाव चक्कर खाने लगती है। मालूम होता है, अब डूबी, अब डूबी। तब वह किसी अदृश्य सहारे के लिए दोनों हाथ फैलाती है, नाव नीचे से खिसक जाती है और उसके पैर उखड़ जाते हैं। वह जोर से चिल्लायी और चिल्लाते ही उसकी आंखें खुल गयीं। देखा तो माता सामने खड़ी उसका कंधा पकड़कर हिला रही थी।

दो

बाबू उदयभानु लाल का मकान बाजार में बना हुआ है। बरामदे में सुनार के हथौड़े और कमरे में दरजी की सुइयां चल रही हैं। सामने नीम के नीचे, बढ़ई चारपाई बना रहा है। खपरैल में हलवाई के लिए भट्ठी खोदी गई है। मेहमानों के लिए अलग-अलग मकान ठीक किया गया है। यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि हर मेहमान के लिए एक-एक चारपाई, कुर्सी और एक-एक मेज हो। हर तीन मेहमानों के लिए एक-एक कहार रखने की तजबीज हो रही है। अभी बारात आने में एक महीने की देर है, लेकिन तैयारियां अभी से हो रही हैं। बारातियों का ऐसा सत्कार किया जाए कि किसी को जबान हिलाने का मौका न मिले। वे लोग भी याद करें कि किसी के यहां बारात में गये थे। एक पूरा मकान बरतनों से भरा हुआ है। चाय के सेट हैं, नाश्ते की तश्तरियां, थाल, लोटे, गिलास।

जो लोग नित्य खाट पर पड़े हुक्का पीते रहते थे, बड़ी तत्परता से काम में लगे हुए हैं। अपनी उपयोगिता सिद्ध करने का ऐसा अच्छा अवसर उन्हें फिर बहुत दिनों बाद मिलेगा। जहां एक आदमी को जाना होता है, पांच दौड़ते हैं। काम कम होता है, हुल्लड़ अधिक। जरा-जरा-सी बात पर घंटों तर्क-वितर्क होता है और अन्त में वकील साहब को आकर निर्णय करना पड़ता है। एक कहता है यह भी खराब है, दूसरा कहता है इससे अच्छा

बाजार में मिल जाए तो टांग की राह निकल जाऊं। तीसरा कहता है, इसमें तो हीक आती है, चौथा कहता है, तुम्हारी नाक ही सड़ गई है, तुम क्या जानो घी किसे कहते हैं। जब से यहां आये हो, घी मिलने लगा है, नहीं तो घी के दर्शन भी न होते थे। इस पर तकरार बढ़ जाती है और वकील साहब को झगड़ा चुकाना होता है।

रात के नौ बजे थे। उदयभानु लाल अन्दर बैठे हुए खर्च का तखमीना लगा रहे थे। वह प्रायः रोज ही तखमीना लगाते थे, पर रोज ही उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन करना पड़ता था। सामने कल्याणी भौंहें सिकोड़े हुए खड़ी थी। बाबू साहब ने बड़ी देर के बाद सिर उठाया और बोले—दस हजार से कम नहीं होता, बल्कि शायद और बढ़ जाए।

कल्याणी—दस दिन में पांच हजार से दस हजार हुए। एक महीने में तो शायद एक लाख की नौबत आ जाए।

उदयभानु—क्या करूं, जगहंसाई भी तो अच्छी नहीं लगती। शिकायत हुई तो लोग कहेंगे, नाम बड़े और दर्शन थोड़े। फिर जब वह मुझसे दहेज में एक पाई नहीं लेते, तो मेरा भी यह कर्त्तव्य है कि मेहमानों के आदर-सत्कार में कोई बात न उठा रखूं।

कल्याणी—जब से ब्रह्मा ने सृष्टि रची, तब से आज तक कभी बारातियों को कोई प्रसन्न रख सका? उन्हें दोष निकालने और निन्दा करने का कोई-न-कोई अवसर मिल ही जाता है। जिसे अपने घर सूखी रोटियां भी मयस्सर नहीं, वह भी बारात में जाकर तानाशाह बन बैठता है। तेल खुशबूदार नहीं, साबुन टके सेर का जाने कहां से बटोर लाये, कहार बात नहीं सुनते, लालटेन धुआं देती है। कुर्सियों में खटमल हैं, चारपाइयां ढीली हैं। जनवासे की जगह हवादार नहीं। ऐसी-ऐसी हजारों शिकायतें होती हैं। उन्हें आप कहां तक रोकिएगा? अगर यह मौका न मिला तो और कोई ऐब निकाल लिये जाएंगे। भाई, यह तेल तो रंडियों के लगाने लायक है, हमें तो सादा तेल चाहिए, जनाब यह साबुन नहीं भेजा है, अपनी अमीरी की शान दिखायी है, मानो हमने साबुन देखा ही नहीं। ये कहार नहीं, यमदूत हैं, जब देखिए सिर पर सवार। लालटेन ऐसी भेजी है कि चमकने लगती है; अगर दस-पांच दिन इस रोशनी में बैठना पड़े, तो आंखें फूट जाएं। जनवासा क्या है, अभागे का

भाग्य है, जिस पर चारों तरफ से झोंके आते रहते हैं। मैं तो फिर यही कहूंगी कि बारातियों के नखरे का विचार ही छोड़ दो।

उदयभानु—तो आखिर तुम मुझे क्या करने को कहती हो ?

कल्याणी—कह तो रही हूं, पक्का इरादा कर लो कि मैं पांच हजार से अधिक खर्च न करूंगा। घर में तो टका है नहीं, कर्जा का ही भरोसा ठहरा। इतना कर्ज क्यों लें कि जिंदगी में अदा न हो। आखिर मेरे और बच्चे भी तो हैं, उनके लिए भी तो कुछ चाहिए।

उदयभानु—तो तुम बैठी यही मनाया करती हो।

कल्याणी—इसमें बिगड़ने की कोई बात नहीं। मरना एक दिन सभी को है। कोई यहां अमर होकर थोड़े ही आया है। आंखें बन्द कर लेने से तो होनेवाली बात न टलेगी। रोज आंखों देखती हूं, बाप का देहांत हो जाता है, उसके बच्चे गली-गली ठोकरें खाते फिरते हैं। आदमी ऐसा काम क्यों करे ?

उदयभानु न जलकर कहा—तो अब समझ लूं कि मरने के दिन निकट आ गए, यही तुम्हारी भविष्यवाणी है ! सुहाग से स्त्रियों का जी नहीं ऊबते सुना था; आज यह नई बात मालूम हुई। रंडापे में कोई सुख होगा ही !

कल्याणी—तुमसे दुनिया की भी कोई बात कही जाती है, तो जहर उगलने लगते हो। इसीलिए न कि जानते हो, कि इसे कहीं ठिकाना नहीं है—मेरी ही रोटियों पर पड़ी हुई है या और कुछ ? जहां कोई बात कही, बस सिर हो गए, मानो मैं घर की लौंडी हूं, मेरा केवल रोटी और कपड़े का नाता है। जितना ही मैं दबती हूं, तुम और भी दबाते हो। मुफ्तखोर माल उड़ाएं, कोई मुंह न खोले; शराब-कबाब में रुपये लुटें, कोई जबान न हिलाये। ये सारे कांटे मेरे बच्चों ही के सिर तो बोए जा रहे हैं।

उदयभानु—तो मैं तुम्हारा गुलाम हूँ ?

कल्याणी—तो क्या मैं तुम्हारी हूँ ?

उदयभानु—ऐसे मर्द और होंगे, जो औरतों के इशारे पर नाचते हैं।

कल्याणी—तो ऐसी स्त्रियां और होंगी, जो मर्दों की जूतियां सहा करती हैं।

उदयभानु—मैं कमाकर लाता हूं; जैसे चाहूं खर्च कर सकता हूं। किसी

को बोलने का अधिकार नहीं है ।

कल्याणी—तो आप अपना घर संभालिए, ऐसे घर को मेरा दूर ही से सलाम है, जहां मेरी कुछ पूछ नहीं । घर में तुम्हारा जितना अधिकार है, उतना ही मेरा भी । इससे जौ-भर कम नहीं ! तुम अपने मन के राजा हो, तो मैं अपने मन की रानी हूं । तुम्हारा घर तुम्हें मुबारक रहे, मेरे लिए पेट की रोटियों की कमी नहीं है । तुम्हारे बच्चे हैं, मारो या जिलाओ । न आंखों से देखूंगी, न पीड़ा होगी । आंखें फूटीं, पीर गयी ।

उदयभानु—क्या तुम समझती हो कि तुम न संभालोगी, तो मेरा घर ही न संभलेगा ? मैं अकेले ऐसे-ऐसे दस घर संभाल सकता हूं ।

कल्याणी—कौन ! अगर आज के महीनवें दिन मिट्टी में न मिल जाए, तो कहना कोई कहती थी !

यह कहते-कहते कल्याणी का चेहरा तमतमा उठा । वह झमककर उठी और कमरे के द्वार की ओर चली । वकील साहब मुकदमों में तो खूब मीन-मेख निकालते थे, लेकिन स्त्रियों के स्वभाव का उन्हें कुछ यों ही-सा ज्ञान था । यही एक ऐसी विद्या है, जिसमें आदमी बूढ़ा होने पर भी कोरा रह जाता है । अगर वे अब भी नरम पड़ जाते और कल्याणी का हाथ पकड़कर बिठा लेते, तो शायद वह रुक जाती; लेकिन आपसे यह तो न हो सका, उलटे चलते-चलते एक और चरका दिया । बोले, मैके का घमंड होगा ?

कल्याणी ने द्वार पर रुककर पति की ओर लाल-लाल नेत्रों से देखा और बिफरकर बोली—मैकेवाले मेरी तकदीर के साथी नहीं हैं, और न मैं इतनी नीच हूं कि उनकी रोटियों पर जा पड़ूं ।

उदयभानु—तब कहां जा रही हो ?

कल्याणी—तुम यह पूछनेवाले कौन होते हो ? ईश्वर की सृष्टि में असंख्य प्राणियों के लिए जगह है, क्या मेरे लिए नहीं है ?

यह कहकर कल्याणी कमरे के बाहर निकल गई । आंगन में जाकर उसने एक बार आकाश की ओर देखा, मानो तारागण को साक्षी दे रही है कि मैं इस घर से कितनी निर्दयता से निकाली जा रही हूं । रात के ग्यारह बज गए थे । घर में सन्नाटा छा गया था, दोनों बेटों की चारपाई उसी के

कमरे में रहती थी। वह अपने कमरे में आयी, देखा चन्द्रभानु सोया है। सबसे छोटा सूर्यभानु चारपाई पर से उठ बैठा है। माता को देखते ही बोला—तुम तहां दई तीं, अम्मा ? कल्याणी दूर ही खड़े-खड़े बोली—कहीं तो नहीं बेटा, तुम्हारे बाबूजी के पास गई थी।

सूर्यभानु—तुम तली दई, मुधे अतेले दर लदता था। तुम त्यों तली दई तीं, बताओ ?

यह कहकर बच्चे ने गोद में चढ़ने के लिए दोनों हाथ फैला दिए। कल्याणी अब अपने को न रोक सकी। मातृस्नेह के सुधाप्रवाह में उसका सन्तप्त हृदय परिप्लावित हो गया। हृदय के कोमल पौधे, जो क्रोध के ताप से मुरझा गए थे, फिर हरे हो गए। आंखें सजल हो गयीं। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया और छाती से लगाकर बोली—तुमने पुकार क्यों न लिया, बेटा ?

सुर्यभानु—पुतालता तो ता, तुम थुनती न थीं। बताओ, अब तो तबी न दाओदी ?

कल्याणी—नहीं भैया, अब नहीं जाऊंगी।

यह कहकर कल्याणी सूर्यभानु को लेकर चारपाई पर लेटी। मां के हृदय से लिपटते ही बालक निःशंक होकर सो गया। कल्याणी के मन में संकल्प-विकल्प होने लगे। पति की बातें याद आतीं तो मन होता, घर को तिलांजलि देकर चली जाऊं। लेकिन बच्चों का मुंह देखती, तो वात्सल्य से चित्त गद्गद हो जाता। बच्चों को किस पर छोड़कर चली जाऊं ? मेरे इन लालों को कौन पालेगा, ये किसके होकर रहेंगे ? कौन प्रातःकाल इन्हें दूध और हलवा खिलाएगा, कौन इनकी नींद सोएगा, इनकी नींद जागेगा ? तुम्हारे लिए सबकुछ सह लूंगी। निरादर-अपमान, जली-कटी, खोटी-खरी, घुड़की-झिड़की सब तुम्हारे लिए सहूंगी।

कल्याणी तो बच्चे को लेकर लेटी; पर बाबू साहब को नींद न आई। चोट करनेवाली बातें बड़ी मुश्किल से भूलती थीं। उफ ! यह मिजाज ? मानो मैं ही इनकी स्त्री हूं ? बात मुंह से निकलनी मुश्किल है। अब मैं इनका गुलाम होकर रहूं ? घर में अकेली वह रहें और बाकी जितने अपने-बेगाने हैं, सब निकाल दिये जायें। जला करती हैं। मानती हैं कि यह

किसी तरह मरे तो मैं अकेली आराम करूँ। दिल की बात मुंह से निकल ही आती है, चाहे कोई कितना ही छिपाये। कई दिन से देख रहा हूं, ऐसी ही जली-कटी सुनाया करती हैं। मैके का घमण्ड होगा; लेकिन वहां कोई बात भी न पूछेगा। अभी सब आवभगत करते हैं। जब जाकर सिर पर पड़ जायेंगी, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जाएगा। रोती हुई आयेंगी। वाह रे घमण्ड, सोचती हैं—मैं ही यह गृहस्थी चलाती हूं। अभी चार दिन को कहीं चला जाऊं तो मालूम हो जाएगा, सारी शेखी किरकिरी हो जाएगी। एक बार इनका घमण्ड तोड़ ही दूं, जरा वैधव्य का मजा चखा दूं, न जाने इनकी हिम्मत कैसे पड़ती है कि मुझे यों कोसने लगती हैं। मालूम होता है, प्रेम इन्हें छू नहीं गया, या समझती हैं, यह घर से इतना चिपटा हुआ है, कि इसे चाहे जितना कोसूं, टलने का नाम न लेगा। यही बात है, पर यहां संसार से चिपटनेवाला जीव नहीं हूं। जहन्नुम में जाए यह घर, जहां ऐसे प्राणियों से पाला पड़े! घर है या नरक! आदमी बाहर से थका-मांदा आता है, तो उसे घर में आराम मिलता है। यहां आराम के बदले कोसने सुनने पड़ते हैं। मेरी मृत्यु के लिए व्रत रखे जाते हैं। यह है पचीस वर्ष के दाम्पत्य जीवन का अन्त। बस, चल ही दूं। जब देख लूंगा, इनका सारा घमंड धूल में मिल गया और मिजाज ठंडा हो गया, तो लौट आऊंगा। चार-पांच दिन काफी होंगे। लो, तुम भी याद करोगी कि किसी से पाला पड़ा था।

यही सोचते हुए बाबू साहब उठे, रेशमी चादर गले में डाली, कुछ रुपये लिये, अपना कार्ड निकालकर एक दूसरे कुरते की जेब में रखा, छड़ी उठायी और चुपके से बाहर निकले। सब नौकर नींद में मस्त थे। कुत्ता आहट पाकर चौंक पड़ा और उनके साथ हो लिया।

पर कौन जानता था कि यह सारी लीला विधि के हाथों रची जा रही है। जीवन रंगशाला का वह निर्दय सूत्रधार किसी अगम्य गुप्त स्थान पर बैठा हुआ अपनी जटिल क्रूर क्रीड़ा दिखा रहा है। यह कौन जानता था कि नकल असल होने जा रही है, अभिनय सत्य का रूप ग्रहण करनेवाला है।

निशा ने इंदु को परास्त करके अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। उसकी पैशाचिक सेना ने प्रकृति पर आतंक जमा रखा था, सद्वृत्तियां मुंह छिपाए पड़ी थीं और कुवृत्तियां विजय-गर्व से इठलाती फिरती थीं। वन में

वन्य-जन्तु शिकार की खोज में विचार कर रहे थे और नगरों में नर-पिशाच गलियों में मंडराते फिरते थे।

बाबू उदयभानु लाल लपके हुए गंगा की ओर चले जा रहे थे। उन्होंने अपना कुरता घाट के किनारे रखकर पांच दिन के लिए मिर्जापुर चले जाने का निश्चय किया था। उनके कपड़े देखकर लोगों को डूब जाने का विश्वास हो जाएगा। कार्ड कुरते की जेब में था। पता लगाने में कोई दिक्कत न हो सकती थी। दम-के-दम सारे शहर में खबर मशहूर हो जाएगी। आठ बजते-बजते तो मेरे द्वार पर सारा शहर जमा हो जाएगा, तब देखूं, देवीजी क्या करती हैं।

यह सोचते हुए बाबू साहब गलियों में चले जा रहे थे। सहसा उन्हें पीछे किसी दूसरे आदमी के आने की आहट मिली; समझे कोई होगा, आगे बढ़े, लेकिन जिस गली में वह मुड़ते, उसी तरफ वह आदमी भी मुड़ता था। तब बाबू साहब को आशंका हुई कि यह आदमी मेरा पीछा कर रहा है। ऐसा आभास हुआ कि इसकी नीयत साफ नहीं है। उन्होंने तुरन्त जेबी लालटेन निकाली और उसके प्रकाश में उस आदमी को देखा। एक बलिष्ठ मनुष्य कंधे पर लाठी रखे चला आता था। बाबू साहब उसे देखते ही चौंक पड़े। यह शहर का छंटा हुआ बदमाश था। तीन साल पहले उस पर डाके का अभियोग चला था। उदयभानु ने उस मुकदमे में सरकार की ओर से पैरवी की थी और इस बदमाश को तीन साल की सजा दिलाई थी। तभी से वह इनके खून का प्यासा हो रहा था। कल ही वह छूटकर आया था। आज दैवात बाबू साहब अकेले रात को दिखाई दिए तो सोचा इनसे दाव चुकाने का अच्छा मौका है। ऐसा मौका शायद ही फिर मिले। तुरन्त पीछे हो लिया और वार करने की घात में था कि बाबू साहब ने जेबी लालटेन जलायी। बदमाश जरा ठिठककर बोला—क्यों बाबूजी, पहचानते हो न ? मैं हूं मतई।

बाबू साहब ने डपटकर कहा—तुम मेरे पीछे-पीछे क्यों आ रहे हो ?

मतई—क्यों, किसी को रास्ते चलने की मनाही है ? यह गली तुम्हारे बाप की है ?

बाबू साहब जवानी में कुश्ती लड़े थे, अब भी हृष्ट-पुष्ट आदमी थे।

दिल के भी कच्चे न थे । छड़ी संभालकर बोले—अभी शायद मन जेल से नहीं भरा । अब की सात साल को जाओगे ।

मतई—मैं सात साल को जाऊंगा या चौदह साल को, पर तुम्हें जिंदा न छोड़ूंगा । हां, अगर तुम मेरे पैरों पर गिरकर कसम खाओ कि अब किसी को सजा न कराऊंगा, तो छोड़ दूं । बोलो, मंजूर है ?

उदयभानु—तेरी शामत तो नहीं आयी ?

मतई—शामत मेरी नहीं आयी, तुम्हारी आयी है । बोलो, खाते हो कसम—एक !

उदयभानु—तुम हटते हो कि मैं पुलिसमैन को बुलाऊं ?

मतई—दो ?

उदयभानु—(गरजकर) हट जा बदमाश, सामने से ।

मतई—तीन···

मुंह से 'तीन' शब्द निकलते ही बाबू साहब के सिंर पर लाठी का ऐसा तुला हुआ हाथ पड़ा कि वह अचेत होकर जमीन पर आ पड़े । मुंह से केवल इतना ही निकला—हाय ! मार डाला ! मतई ने समीप आकर देखा, तो सिर फट गया था और खून की धार निकल रही थी । नाड़ी का कहीं पता न था । समझ गया कि काम तमाम हो गया । उसने कलाई से सोने की घड़ी खोल ली, कुरते से सोने का बटन निकाल लिया, उंगली से अंगूठी उतारी और अपनी राह चला गया, मानो कुछ हुआ ही नहीं । हां, इतनी दया की कि लाश रास्ते से घसीटकर किनारे डाल दी ।

हाय ! बेचारे क्या सोचकर चले थे, क्या हो गया । जीवन, तुमसे ज्यादा असार भी दुनिया में कोई वस्तु है ? क्या यह उस दीपक की भांति ही क्षण-भंगुर नहीं है, जो हवा के एक झोंके से बुझ जाता है ? पानी के एक बुलबुले को देखते हों, लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर नहीं लगती है; जीवन में उतना सार भी नहीं ! सांस का भरोसा ही क्या और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं ? नहीं जानते नीचे जानेवाली सांस ऊपर आएगी या नहीं, पर सोचते इतनी दूर की हैं मानो हम अमर हैं !

तीन

विधवा का विलाप और अनाथों का रोना सुनाकर हम पाठकों का दिल न दुखाएंगे। जिसके ऊपर पड़ती है, वह रोता है, विलाप करता है, पछाड़ खाता है। यह कोई नई बात नहीं। हां, आप चाहें तो कल्याणी की उस घोर मानसिक यातना का अनुमान कर सकते हैं, जो उसे इस विचार से हो रही थी कि मैं ही अपने प्राणाधार की घातिका हूं। वे वाक्य, जो क्रोध के आवेश में उसके असंयत मुख से निकले थे, अब उसके हृदय को बाणों की भांति छेद रहे थे। अगर पति ने उसकी गोद में कराह-कराहकर प्राण त्याग किए होते, तो उसे संतोष होता कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया। शोकाकुल हृदयों के लिए इससे ज्यादा सांत्वना और किसी बात से नहीं होती। उसे इसी विचार से कितना संतोष होता कि स्वामी मुझसे प्रसन्न हो गये, अंतिम समय तो उनके हृदय में पूरा प्रेम बना रहा। कल्याणी को यह संतोष न था। वह सोचती थी—हा! मेरी पचीस वर्ष की तपस्या निष्फल हो गयी। मैं अन्त समय अपने प्राण-पति के प्रेम से वंचित हो गई। अगर मैंने उन्हें ऐसे कठोर शब्द न कहे होते, तो वह कदापि रात को घर से न जाते। न जानें उनके मन में क्या-क्या विचार आए हों? उनके मनोभावों की कल्पना करके और अपने अपराधों को बढ़ा-बढ़ाकर वह आठों पहर कुढ़ती रहती थी। जिन बच्चों पर प्राण देती थी, अब उनकी सूरत से चिढ़ती। इन्हीं के कारण मुझे अपने स्वामी से रार मोल लेनी पड़ी, ये मेरे शत्रु हैं। जहां आठों पहर कचहरी-सी लगी रहती थी, वहां अब खाक उड़ती है। वह मेला ही उठ गया। जब खिलानेवाला ही न रहा, तो खानेवाले कैसे पड़े रहते? धीरे-धीरे एक महीने के अन्दर सभी भांजे-भतीजे विदा हो गए। जिनका दावा था कि हम पानी की जगह खून बहानेवालों में हैं, वे ऐसा सरपट भागे कि पीछे फिरकर भी न देखा। दुनिया ही दूसरी हो गई। जिन बच्चों को देखकर प्यार करने को जी चाहता था, उनके चेहरे पर अब मक्खियां भिनभिनाती थीं। न जाने वह कान्ति कहां चली गई!

शोक का आवेग कम हुआ, तो निर्मला के विवाह की समस्या उपस्थित हुई। कुछ लोगों की सलाह हुई कि विवाह इस साल रोक दिया जाए। कल्याणी ने कहा—इतनी तैयारियों के बाद विवाह को रोक देने से सब किया-धरा मिट्टी में मिल जाएगा और दूसरे साल फिर यही तैयारियां करनी पड़ेंगी, जिसकी कोई आशा नहीं। विवाह कर ही देना अच्छा है। कुछ लेना-देना तो है ही नहीं। बारातियों के सेवा-सत्कार का काफी सामान हो चुका है, विलम्ब करने में हानि-ही-हानि है। अतएव महाशय भालचन्द्र को शोक सूचना के साथ यह संदेश भी भेज दिया गया। कल्याणी ने अपने पत्र में लिखा—इस अनाथिनी पर दया कीजिए और डूबती हुई नाव पार लगाइए। स्वामीजी के मन में बड़ी-बड़ी कामनाएं थीं, किन्तु ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था। अब मेरी लाज आपके हाथ में है। कन्या आपकी हो चुकी। मैं आप लोगों की सेवा-सत्कार करने को अपना सौभाग्य समझती हूं, लेकिन यदि इसमें कुछ कमी हो, कुछ त्रुटि पड़े, तो मेरी दशा का विचार कर क्षमा कीजिएगा। मुझे विश्वास है कि आप स्वयं इस अनाथिनी की निंदा न होने देंगे, आदि।

कल्याणी ने यह पत्र डाक से न भेजा, बल्कि पुरोहित से कहा—आपको कष्ट तो होगा, पर आप स्वयं जाकर यह पत्र दीजिए और मेरी ओर से बहुत विनय के साथ कहिएगा कि जितने कम आदमी आएं उतना ही अच्छा। यहां कोई प्रबन्ध करनेवाला नहीं है। पुरोहित मोटेराम यह संदेश लेकर तीसरे दिन लखनऊ जा पहुंचे।

सन्ध्या का समय था। बाबू भालचन्द्र दीवानखाने के सामने आरामकुर्सी पर नंग-धड़ंग लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। बहुत ही स्याह ऊंचे कद के आदमी थे, ऐसा मालूम होता था कि काला देव है, या कोई हब्शी अफ्रीका से पकड़कर आया है। सिर से पैर तक एक ही रंग था—काला चेहरा इतना स्याह था। मालूम न होता था कि माथे का अंत कहां है और सिर का आरम्भ कहां। बस, कोयले की एक सजीव मूर्ति थी। आपको गर्मी बहुत सताती थी। दो आदमी खड़े पंखा झल रहे थे। उस पर भी पसीने का तार बंधा हुआ था। आप आबकारी में एक ऊंचे ओहदे पर थे। 600 रु. वेतन मिलता था। ठेकेदारों से खूब रिश्वत लेते। ठेकेदार शराब के नाम पानी बेचें, चौबीसों घंटे दुकान खुली रखें, आपको खुश रखना काफी था। सारा कानून आपकी खुशी थी।

इतनी भयंकर मूर्ति थी कि चांदनी रात में उन्हें देखकर लोग सहसा चौंक पड़ते थे—बालक और स्त्रियां नहीं, पुरुष तक सहम जाते थे। चांदनी रात इसलिए कहा गया है कि अंधेरी रात में तो उन्हें कोई देख ही नहीं सकता था—श्यामलता अंधकार में विलीन हो जाती थी। केवल आंखों का रंग लाल था। जैसे पक्का मुसलमान पांच बार नमाज पढ़ता है वैसे ही आप भी पांच बार शराब पीते थे। मुफ्त की शराब तो काजी को हलाल है, फिर आप तो शराब के अफसर ही थे, जितनी चाहें पिएं, कोई हाथ पकड़नेवाला न था। जब प्यास लगती, शराब पी लेते। जैसे रंगों में परस्पर सहानुभूति है, उसी तरह कुछ रंगों में परस्पर विरोध है। लालिमा के संयोग से कालिमा और भी भयंकर हो जाती है।

बाबू साहब ने पंडितजी को देखते ही कुर्सी से उठकर कहा—अख्खाह ! आप हैं ? आइए, आइए। धन्य भाग्य ! अरे कोई है ? कहां चले गये सब-के-सब, झगड़ू, गुरदीन, छकौड़ी, भवानी, रामगुलाम कोई है ? क्या सब-के-सब मर गए ? चलो रामगुलाम, भवानी, छकौड़ी, गुरदीन, झगडू। कोई नहीं बोलता, सब मर गए हैं। दर्जन-भर आदमी हैं, पर मौके पर एक की सूरत नहीं नजर आती, न जाने सब कहां गायब हो जाते हैं। आपके वास्ते कुर्सी लाओ।

बाबू साहब ने इन पांचों का नाम कई बार दुहराया; लेकिन यह न हुआ कि पंखा झलनेवाले दोनों आदमियों में से किसी को कुर्सी लाने को भेज देते। तीन-चार मिनट के बाद एक काना आदमी खांसता हुआ आकर बोला—सरकार ई-तना की नौकरी हमारे कीन न होई। कहां तक उधारबाढ़ी लै-लै खायी ! मांगत-मांगत थेथर होय गयेन।

भालचन्द्र—बको मत, जाकर कुर्सी लाओ। जब कोई काम करने को कहा गया, तो रोने लगता है। कहिए पंडितजी, वहां सब कुशल है ?

मोटेराम—क्या कुशल कहूं बाबूजी; अब कुशल कहां ? सारा घर मिट्टी में मिल गया।

इतने में कहार ने एक टूटा चीड़ का संदूक लाकर रख दिया और बोला—कुर्सी-मेज हमारे उठाए नाहीं उठत हैं।

पंडितजी शर्माते हुए डरते-डरते उस पर बैठे कि कहीं टूट न जाए, और

कल्याणी का पत्र बाबू साहब के हाथ में रख दिया ।

भालचन्द्र—अब और कैसे मिट्टी में मिलेगा ? इससे बड़ी और कौन विपत्ति पड़ेगी ? बाबू उदयभानु लाल से मेरी पुरानी दोस्ती थी । आदमी नहीं, हीरा था । क्या दिल था, क्या हिम्मत थी, (आंखें पोंछकर) मेरा तो जैसे दाहिना हाथ ही कट गया । विश्वास मानिए, जब से यह खबर सुनी है, आंखों में अंधेरा-सा छा गया है । खाने बैठता हूं तो कौर मुंह में नहीं जाता । उनकी सूरत आंखों के सामने खड़ी रहती है । मुंह जूठा करके उठ जाता हूं । किसी काम में दिल नहीं लगता । भाई के मरने का रंज भी इससे कम ही होता । आदमी नहीं हीरा था ।

मोटेरामजी—सरकार, नगर में अब ऐसा कोई रईस नहीं रहा ।

भालचन्द्र—मैं खूब जानता हूं पंडितजी, आप मुझसे क्या कहते हैं ! ऐसा आदमी लाख-दो लाख में एक होता है । जितना मैं उनको जानता था, उतना दूसरा नहीं जान सकता । दो ही तीन बार की मुलाकात में उनका भक्त हो गया और मरते दम तक रहूंगा । आप समधिन साहब से कह दीजिएगा, मुझे दिली रंज है ।

मोटेरामजी—आपसे ऐसी ही आशा थी । आप जैसे सज्जनों के दर्शन दुर्लभ हैं, नहीं तो आज कौन बिना दहेज के विवाह करता है ।

भालचन्द्र—महाराज, दहेज की बातचीत ऐसे सत्यवादी पुरुषों से नहीं की जाती । उनसे तो सम्बन्ध हो जाना ही लाख रुपये के बराबर है । मैं इसको अपना अहोभाग्य समझता हूं । हा ! कितनी उदार आत्मा थी । रुपये को तो उन्होंने कुछ समझा ही नहीं, तिनके के बराबर परवाह नहीं की । बुरा रिवाज है, बेहद बुरा ! बस चले तो दहेज लेनेवालों और दहेज देनेवालों दोनों को ही गोली मार दूं, चाहे फांसी क्यों न हो जाए । पूछो आप लड़के का विवाह करते हैं या उसे बेचते हैं ? अगर आपको लड़के की शादी में दिल खोलकर खर्च करने का अरमान है तो शौक से खर्च कीजिए, लेकिन जो कुछ कीजिए, अपने बल पर । यह क्या कि कन्या के पिता का गला रेतिए । नीचता है, घोर नीचता है । मेरा बस चले तो इन पाजियों को गोली मार दूं ।

मोटेरामजी—धन्य हो, सरकार ! भगवान ने आपको बड़ी बुद्धि दी है । यह धर्म का प्रताप है ! मालकिन की इच्छा है कि विवाह का मुहूर्त

वही रहे, और तो उन्होंने सारी बातें पत्र में लिख दी हैं। बस अब आप ही उबारें तो हम उबर सकते हैं। इस तरह तो बारात में जितने सज्जन आएंगे, उनका सेवा-सत्कार हम करेंगे ही; लेकिन परिस्थिति अब बहुत बदल गई है सरकार, कोई करने-धरनेवाला नहीं है। बस ऐसी बात कीजिए कि वकील साहब के नाम पर बट्टा न लगे।

भालचन्द्र एक मिनट तक आंखें बन्द किए बैठे रहे, फिर एक लम्बी सांस खींचकर बोले—ईश्वर को मंजूर ही न था कि यह लक्ष्मी मेरे घर आती, नहीं तो क्या यह वज्र गिरता ? सारे मनसूबे खाक में मिल गये। फूला न समाता था कि वह शुभ अवसर निकट आ रहा है, पर क्या जानता था कि ईश्वर के दरबार में कुछ षड्यंत्र रचा जा रहा है। मरनेवालों की याद ही रुलाने के लिए काफी है। उसे देखकर जख्म भी हरा हो जाएगा। उस दशा में न जाने क्या कर बैठूं। इसे गुण समझिए या दोष, कि जिससे एक बार मेरी घनिष्ठता हो गयी, फिर याद चित्त से नहीं उतरती। अभी तो खैर इतना ही है कि उनकी सूरत आंखों के सामने नाचती रहती है; लेकिन वह कन्या घर में आ गई, तब मेरा जिन्दा रहना कठिन हो जाएगा। सच मानिए, रोते-रोते मेरी आंखें फूट जाएंगी। जानता हूं रोना-धोना व्यर्थ है। जो मर गया वह लौटकर नहीं आ सकता ! सब्र करने कें सिवाय और कोई उपाय नहीं है। लेकिन दिल से मजबूर हूं। उस अनाथ बालिका को देखकर मेरा कलेजा फट जाएगा।

मोटेरामजी—ऐसा न कहिए, सरकार ! वकील साहब नहीं हैं तो क्या, आप तो हैं। अब आप ही उसके पिता तुल्य हैं। वह अब वकील साहब की कन्या नहीं, आपकी कन्या है। आपके हृदय के भाव तो कोई जानता नहीं। लोग समझेंगे, वकील साहब का देहान्त हो जाने के कारण आप वचन से फिर गए। इसमें आपकी बदनामी होगी, चित्त को समझाइए और हंसी-खुशी कन्या का पाणिग्रहण करा लीजिए। हाथी मरे तो नौ लाख का। लाख विपत्ति पड़ी है, लेकिन मालकिन आप लोगों का सेवा-सत्कार करने में कोई बात न उठा रखेंगी।

बाबू साहब समझ गए कि पंडित मोटेराम कोरे पोथी के ही पंडित नहीं वरन् व्यवहार नीति में भी चतुर हैं। बोले—पंडितजी, हलफ से कहता हूं, मुझे उस लड़की से जितना प्रेम है, उतना अपनी लड़की से भी नहीं है, लेकिन

जब ईश्वर को मंजूर नहीं है तो मेरा क्या बस है ? यह मृत्यु एक प्रकार की अमंगल सूचना है, जो विधाता की ओर से मिली है । यह किसी आनेवाली मुसीबत की आकाशवाणी है । विधाता स्पष्ट रीति से कह रहा है कि यह विवाह मंगलमय नहीं होगा । ऐसी दशा में आप ही सोचिए, जिस काम का आरम्भ ही अमंगल से हो, क्या उसका अन्त मंगलमय हो सकता है ? नहीं, जान-बूझकर मक्खी नहीं निगली जाती । समधिन साहब को समझाकर कह दीजिएगा, मैं उनकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हूं, लेकिन इसका परिणाम अच्छा न होगा । स्वार्थ के वश में होकर मैं अपने परम मित्र की संतान के साथ यह अन्याय नहीं कर सकता ।

इस तर्क ने पंडितजी को निरुत्तर कर दिया । वादी ने वह तीर छोड़ा था, जिसका उनके पास कोई काट नहीं था । शत्रु ने उन्हीं के हथियार से उन पर वार किया और वह उसका प्रतिकार न कर सकते थे । वह अभी कोई जवाब सोच ही रहे थे कि बाबू साहब ने फिर नौकरों को पुकारना शुरू किया—अरे ! तुम सब गायब हो गए ! झगडू, छकौड़ी, भवानी, गुरदीन, रामगुलाम ! एक भी नहीं बोलता । सबके सब मर गये । पंडितजी के वास्ते पानी-वानी की फिक्र है ? न जाने इन सबों को कोई कहां तक समझाए । अक्ल छू तक नहीं गई । देख रहे हैं कि महाशय दूर से थके-मांदे चले आ रहे हैं, पर किसी को जरा भी परवाह नहीं । लाओ पानी-वानी रखो । पंडितजी, आपके लिए शरबत बनवाऊं या फलाहारी मीठा ।

मोटेरामजी मिठाइयों के विषय में किसी तरह का बंधन न स्वीकार करते थे । उनका सिद्धांत था कि घृत से सभी वस्तुएं पवित्र हो जाती हैं । रसगुल्ले और बेसन के लड्डू उन्हें बहुत प्रिय थे, पर शर्बत से उन्हें रुचि न थी । पानी से पेट भरना उनके नियम के विरुद्ध था, सकुचाते हुए बोले—शर्बत पीने की मुझे आदत नहीं, मिठाई खा लूंगा ।

भालचन्द्र—फलाहारी न ?

मोटेराम—इसका मुझे कोई विचार नहीं ।

भालचन्द्र—है तो यही बात । छूत-छात सब ढकोसला है । मैं स्वयं नहीं मानता । अरे, अभी तक कोई नहीं आया ? छकौड़ी, भवानी, गुरदीन, रामगुलाम कोई तो बोलो ।

अबकी भी वही बूढ़ा कहार खांसता हुआ आकर खड़ा हो गया और बोला—सरकार, मोर तलब दै दीन जाय। ऐसी नौकरी मोसे न होई। कहां लौं दौरी? दौरत-दौरत गोड़ पिराय लागत है।

भालचन्द्र—काम कुछ करो या न करो, पर तलब पहले चाहिए। दिन-भर पड़े-पड़े खांसा करो, तलब तो तुम्हारी चढ़ रही है। जाकर बाजार से एक आने की ताजी मिठाई ला। दौड़ता हुआ जा।

कहार को यह हुक्म देकर बाबू साहब घर में गये और स्त्री से बोले—वहां से एक पंडितजी आये हैं। यह खत लाये हैं, जरा पढ़ो तो।

पत्नी का नाम रंगीलीबाई था। गोरे रंग की प्रसन्न-मुख महिला थीं। रूप और यौवन उनसे विदा हो रहे थे, पर किसी से मित्र की भांति मचल-मचलकर तीस साल तक जिसके गले से लगे रहे, उसे छोड़ते न बनता था।

रंगीलीबाई बैठी पान लगा रही थीं। बोलीं—कह दिया न कि हमें वहां करना मंजूर नहीं।

भालचन्द्र—हां, कह तो दिया, पर मारे संकोच के मुंह से शब्द न निकलता था। झूठ-मूठ का हीला करना पड़ा।

रंगीली—साफ बात कहने में संकोच क्या? हमारी इच्छा है; नहीं करते। किसी का कुछ लिया तो नहीं है? जब दूसरी जगह दस हजार नगद मिल रहे हैं तो वहां क्यों करूं? उनकी लड़की कोई सोने की थोड़ी ही है। वकील साहब जीते होते, तो शरमाते-शरमाते पन्द्रह-बीस हजार दे मरते। अब वहां क्या रखा है?

भालचन्द्र—एक दफा जवाब देकर मुकर जाना अच्छी बात नहीं। कोई मुख से कुछ न कहे, पर बदनामी हुए बिना नहीं रहती। मगर तुम्हारी जिद से मजबूर हूं।

रंगीलीबाई ने पान खाकर खत खोला और पढ़ने लगीं। हिन्दी का अभ्यास बाबू साहब को तो बिलकुल न था और यद्यपि रंगीलीबाई भी शायद ही कभी किताब पढ़ती हों पर खत-वत पढ़ लेती थीं। पहली ही पंक्ति पढ़कर उनकी आंखें सजल हो गयीं और पत्र समाप्त किया तो उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे। एक-एक शब्द करुणा के रस में डूबा हुआ था। एक-एक अक्षर

से दीनता टपक रही थी। रंगीलीबाई की कठोरता पत्थर की नहीं लाख की थी, जो एक ही आंच से पिघल जाती है। कल्याणी के करुणोत्पादक शब्दों ने उनके स्वार्थ-मण्डित हृदय को पिघला दिया। रुंधे हुए कण्ठ से बोलीं—अभी ब्राह्मण बैठा है न ?

भालचन्द्र पत्नी के आंसुओं को देख-देख सूखे जाते थे। अपने ऊपर झल्ला रहे थे कि नाहक मैंने यह खत इसे दिखाया। इसकी जरूरत ही क्या थी ? इतनी बड़ी भूल उनसे कभी नहीं हुई थी। संदिग्ध भाव से बोले—शायद बैठा हो, मैंने तो जाने को कह दिया था।

रंगीली ने खिड़की से झांककर देखा। पंडित मोटेरामजी बगुले की तरह ध्यान लगाए बाजार के रास्ते की ओर ताक रहे थे। लालसा से व्यग्र होकर कभी यह पहलू बदलते कभी वह पहलू। 'एक आने की मिठाई' ने तो आशा की कमर पहले ही तोड़ दी थी, उसमें भी यह विलम्ब ? दारुण दशा थी। उन्हें बैठे देखकर रंगीली बोली—है, अभी है। जाकर कह दो, हम विवाह करेंगे। बेचारी बड़ी मुसीबत में है।

भालचन्द्र—तुम भी कभी-कभी बच्चों की-सी बातें करने लगती हो। अभी उससे कह आया हूं कि मुझे विवाह करना मंजूर नहीं। एक लम्बी-चौड़ी भूमिका बांधनी पड़ी। अब जाकर यह संदेश कहूंगा तो वह अपने दिल में क्या कहेगा जरा सोचो तो ? यह शादी-विवाह का मामला है। लड़कों का खेल नहीं कि अभी एक बात की, अभी पलट गए। भले आदमी की बात न हुई, दिल्लगी हुई !

रंगीली—अच्छा, तुम अपने मुंह से न कहो। उस ब्राह्मण को मेरे पास भेज दो। मैं इस तरह समझा दूंगी कि तुम्हारी बात भी रह जाय और मेरी भी। इसमें तो कोई आपत्ति नहीं है ?

भालचन्द्र—तुम अपने सिवाय सारी दुनिया को नादान समझती हो। तुम कहो या मैं कहूं, बात एक ही है। जो बात तय हो गई वह तय हो गई। अब मैं उसे फिर नहीं उठाना चाहता। तुम्हीं तो बार-बार कहती थीं कि मैं वहां न करूंगी। तुम्हारे ही कारण मुझे अपनी बात खोनी पड़ी। अब तुम फिर रंग बदलती हो। यह तो मेरी छाती पर मूंग दलना है। आखिर तुम्हें कुछ तो मेरे मान-अपमान का विचार करना चाहिए।

रंगीली—तो मुझे क्या मालूम था कि विधवा की दशा इतनी हीन हो गई है ? तुम्हीं ने तो कहा था कि उसने पति की सारी सम्पत्ति छिपा रखी है और अपनी गरीबी का ढोंग रचकर काम निकालना चाहती है। एक ही छटी हुई औरत है। तुमने जो कहा, वह मैंने मान लिया। भलाई करके बुराई करने में तो लज्जा और संकोच है। बुराई करके भलाई करने में कोई संकोच नहीं। अगर तुम 'हां' कर आये होते और मैं 'नहीं' करने को कहती तो तुम्हारा संकोच उचित होता। 'नहीं' करने के बाद 'हां' करने में तो अपना बड़प्पन है।

भालचन्द्र—तुम्हें बड़प्पन मालूम होता है, मुझे तो लुच्चापन ही मालूम होता है। फिर तुमने यह कैसे मान लिया कि मैंने वकलाइन के विषय में जो बात कही थी, वह झूठी थी ? यह पत्र देखकर ? तुम जैसी खुद सरल हो वैसे ही दूसरों को भी सरल समझती हो।

रंगीली—इस पत्र में बनावट नहीं मालूम होती। बनावट की बात दिल में चुभती नहीं। उसमें बनावट की गंध अवश्य रहती है।

भालचन्द्र—बनावट की बात ऐसी चुभती है कि सच्ची बात उसके सामने बिलकुल फीकी मालूम होती है। यह किस्से-कहानियां लिखनेवाले, जिनकी किताबें पढ़-पढ़कर तुम घंटों रोती रहीं, क्या सच्ची बातें लिखते हैं ? सरासर झूठ का तूमार बांधते हैं ! यह भी एक कला है।

रंगीली—क्यों जी, तुम मुझसे भी उड़ते हो, दाई से पेट छिपाते हो ? मैं तुम्हारी बात मान जाती हूं तो तुम समझते हो, इसे चकमा दिया; मगर मैं तुम्हारी एक-एक नस पहचानती हूं। तुम अपना ऐब मेरे सिर मढ़कर खुद बेदाग बचना चाहते हो, बोलो, कुछ झूठ कहती हूं ? जब वकील साहब जीते थे तो तुमने सोचा था कि ठहराव की जरूरत ही क्या है, वह खुद ही जितना उचित समझेंगे देंगे, बल्कि बिना ठहराव के और भी ज्यादा मिलने की आशा होगी। अब वकील साहब का देहान्त हो गया तो तरह-तरह के हीले-हवाले करने लगे। यह भलमनसी नहीं, छोटापन है। इसका इलजाम भी तुम्हारे सिर है। मैं शादी-विवाह के नजदीक न जाऊंगी। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो। ढोंगी आदमियों से मुझे चिढ़ है। जो बात करो, सफाई से करो, बुरा हो या अच्छा। 'हाथी के दांत दिखाने के और, खिलाने के और' वाली नीति पर

चलना तुम्हें शोभा नहीं देता। बोलो, अब भी वहां शादी करते हो या नहीं ?

भालचन्द्र—जब मैं बेईमान, दगाबाज और झूठा ठहरा, तो मुझसे पूछना ही क्या ! मगर खूब पहचानती हो आदमियों को। क्या कहना है, तुम्हारी इस सूझबूझ की। वलैया ले लें।

रंगीली—हो बड़े हयादार, अब भी नहीं शर्माते। ईमान से कहो, मैंने बात ताड़ ली कि नहीं !

भालचन्द्र—अजी जाओ, वह दूसरी औरतें होती हैं, जो मर्दों को पहचानती हैं। अब तक मैं यही समझता था कि औरतों की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म होती है; पर आज यह विश्वास उठ गया और महात्माओं ने औरतों के विषयों में जो तत्व की बातें कही हैं, उनको मानना पड़ा।

रंगीली—जरा आईने में अपनी सूरत तो देख आओ, तुम्हें मेरी कसम है ! जरा देख लो, कितना झेंपे हुए हो।

भालचन्द्र—सच कहना, कितना झेंपा हुआ हूं ?

रंगीली—उतना ही, जितना कोई भलामानस चोर चोरी खुल जाने पर झेंपता है।

भालचन्द्र—खैर, मैं झेंपा ही सही; पर शादी वहां न होगी।

रंगीली—मेरी बला से, जहां चाहो करो। क्यों, भुवन से एक बार क्यों नहीं पूछ लेते ?

भालचन्द्र—अच्छी बात है, उसी पर फैसला रहा।

रंगीली—जरा इशारा न करना।

भालचन्द्र—अजी, मैं उसकी तरफ ताकूंगा भी नहीं।

संयोग से इसी वक्त भुवनमोहन भी आ पहुंचा। ऐसे सुन्दर, सुडौल, बलिष्ठ युवक कॉलेजों में बहुत कम देखने में आते हैं। बिलकुल मां को पड़ा था। वही गोरा-चिट्टा रंग, वही पतले-पतले गुलाब की पत्ती के-से होंठ; वही चौड़ा माथा, बड़ी-बड़ी आंखें, डील-डौल बाप का-सा था। ऊंचा कोट, ब्रीचेंज टाई, बूट, हैट उस पर खूब खिल रहे थे। हाथ में एक स्टिक थी। चाल में जवानी का गरूर था, आंखों में आत्मगौरव। रंगीली ने कहा—आज बड़ी देर लगाई तुमने। यह देखो, तुम्हारी ससुराल से यह खत आया है। तुम्हारी सास ने लिखा है। साफ-साफ बतला तो, अभी सवेरा है। तुम्हें वहां शादी

करना मंजूर है या नहीं।

भुवन—शादी करनी तो चाहिए अम्मा, पर मैं करूंगा नहीं।

रंगीली—क्यों ?

भुवन—कहीं ऐसी जगह शादी करवाइये कि खूब रुपये मिलें। और न सही, एक लाख का डौल हो, वहां अब क्या रखा है ! वकील साहब रहे ही नहीं, बुढ़िया के पास अब क्या होगा ?

रंगीली—तुम्हें ऐसी बातें मुंह से निकालते शर्म नहीं आती ?

भुवन—इसमें शर्म की कौन-सी बात है ? रुपये किसे काटते हैं ? लाख रुपये तो लाख जन्म में भी न जमा कर पाऊंगा। इस साल पास भी हो गया, तो कम-से-कम पांच साल तक रुपये की सूरत नजर न आएगी। फिर सौ-दो सौ रुपये महीने कमाने लगूंगा। पांच-छः सौ तक पहुंचते-पहुंचते उम्र के तीन भाग बीत जायेंगे। रुपये जमा करने की नौबत न आएगी। दुनिया का कुछ मजा न उठा सकूंगा। किसी धनी लड़की से शादी हो जाती, तो चैन से कटती। मैं ज्यादा नहीं चाहता, बस एक लाख नगद हो या फिर कोई ऐसी जायदादवाली बेवा मिले, जिसके एक ही लड़की हो।

रंगीली—चाहे औरत कैसी ही मिले !

भुवन—धन सारे ऐबों को छिपा देगा। मुझे वह गालियां भी सुनाए, तो भी चूं न करूं। दुधारू गाय की लात किसे बुरी मालूम होती है ?

बाबू साहब ने प्रशंसासूचक भाव से कहा—हमें उन लोगों के साथ सहानुभूति है और दुःख है कि ईश्वर ने उन्हें विपत्ति में डाला; लेकिन बुद्धि से काम लेकर ही कोई निश्चय करना चाहिए। हम कितने फटे-हाल हो जायें, फिर भी अच्छी-खासी बारात हो जाएगी। वहां भोजन का ठिकाना नहीं। सिवा इसके कि लोग हंसें, और कोई नतीजा न निकलेगा।

रंगीली—तुम बाप-पूत एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो। दोनों उस गरीब लड़की के ऊपर छुरी फेंकना चाहते हो।

भुवन—जो गरीब हो, उसे गरीबों ही के यहां सम्बन्ध करना चाहिए। अपनी हैसियत से बढ़कर···

रंगीली—चुप भी रह, आया है वहां से हैसियत लेकर। तुम कहां के ऐसे धन्नासेठ हो ? कोई आदमी द्वार पर आ जाए, तो एक लोटे पानी को

तरस जाए । बड़ी हैसियतवाले बने हो !

यह कहकर रंगीली वहां से उठकर रसोई का प्रबन्ध करने चली गई ।

भुवनमोहन मुसकराता हुआ अपने कमरे में चला गया और बाबू साहब मूंछों पर ताव देते हुए बाहर आए कि मोटेराम को अन्तिम निश्चय सुना दें, पर उनका कहीं पता न था ।

मोटेरामजी कुछ देर तक तो कहार की बाट देखते रहे, जब उसके आने में बहुत देर हुई, तो उनसे बैठा न गया । सोचा, यहां बैठे-बैठे काम न चलेगा, कुछ उद्योग करना चाहिए । भाग्य के भरोसे यहां अड़ी किए बैठे रहे तो भूखों मर जाएंगे । यहां तुम्हारी दाल नहीं गलने को ! चुपके से लकड़ी उठायी और जिधर कहार गया था, उसी तरफ चले । बाजार थोड़ी दूर पर था, एक क्षण में जा पहुंचे । देखा तो बुड्ढा एक हलवाई की दुकान पर बैठा चिलम पी रहा था । उसे देखते ही आपने बेतकल्लुफी से कहा—अभी कुछ तैयार नहीं है क्या महरा ? सरकार वहां बैठे बिगड़ रहे हैं कि जाकर सो गया या कहीं ताड़ी पीने लगा । मैंने कहा—"सरकार यह बात नहीं, बुड्ढा आदमी है, आते-ही-आते तो आएगा ।" बड़े विचित्र जीव हैं । न जाने, इनके यहां कैसे नौकर टिकते हैं ।

कहार—मुझे छोड़कर आज तक दूसरा कोई टिका नहीं, और न टिकेगा । साल-भर से तलब नहीं मिली । किसी को तलब नहीं देते । जहां किसी ने तलब मांगी और वे लगे उसे डांटने । बेचारा नौकरी छोड़कर भाग जाता है । वे दोनों आदमी जो पंखा झल रहे थे, सरकारी नौकर हैं । सरकार से दो अर्दली मिले हैं न ! इसी से पड़े हुए हैं । मैं भी सोचता हूं, जैसा तेरा ताना-बाना, वैसी मेरी भरनी । दस कट गये हैं, साल-दो साल और इसी तरह कट जायेंगे ।

मोटेराम—तो तुम्हीं अकेले हो ? नाम तो कई कहारों के लेते हैं ।

कहार- यह सब इन दो-तीन महीनों के अन्दर आये और छोड़-छाड़कर चले गए । यह अपना रोब जमाने को अभी तक उनका नाम जपा करते हैं । कहीं नौकरी दिलवाइएगा, चलूं ?

मोटेराम—अजी, बहुत नौकरी हैं । कहार तो आजकल ढूंढ़े नहीं मिलते । तुम तो बहुत पुराने आदमी हो । तुम्हारे लिए नौकरी की क्या कमी है । यहां

कोई ताजी चीज है ? मुझसे कहने लगे, खिचड़ी बनवाइएगा या बाटी लगाइएगा ? मैंने कह दिया, सरकार बुड्ढा आदमी है, रात को उसे मेरा भोजन बनाने में कष्ट होगा। मैं कुछ बाजार से ही खा लूंगा। इसकी आप चिन्ता न करें। बोले, अच्छी बात है, कहार आपको दुकान पर मिलेगा—बोलो साहजी, कुछ तर माल तैयार है। लड्डू तो ताजे मालूम होते हैं। तौल दो एक सेर-भर, आऊं वहीं ऊपर न ?

यह कहकर मोटेरामजी हलवाई की दुकान पर जा बैठे और तर माल चखने लगे, खूब छककर खाया। ढाई-तीन सेर चट कर गए। खाते थे और हलवाई की तारीफ करते थे। साहजी, तुम्हारी दुकान का जैसा नाम सुना था वैसा ही माल पाया। बनारसवाले रसगुल्ले नहीं बना पाते, कलाकन्द अच्छी बनाते हैं। पर तुम्हारी उनसे बुरी नहीं। माल डालने से अच्छी चीज नहीं बन जाती, विद्या चाहिए।

हलवाई—कुछ और लीजिए, महाराज ! थोड़ी-सी रबड़ी मेरी तरफ से लीजिए।

मोटेराम—इच्छा तो नहीं है, लेकिन दे दो पाव-भर।

हलवाई—पाव-भर क्या कीजिएगा ? चीज अच्छी है, आधा सेर तो लीजिए।

खूब इच्छापूर्ण भोजन करके पंडितजी ने थोड़ी देर तक बाहर की सैर की और नौ बजते-बजते मकान पर आये। यहां सन्नाटा-सा छाया हुआ था। एक लालटेन जल रही थी। आपने चबूतरे पर बिस्तर जमाया और सो गए।

सबेरे अपने नियमानुसार कोई आठ बजे उठे, तो देखा कि बाबू साहब टहल रहे हैं। इन्हें जगा देखकर पालागन कर बोले—महाराज, आप रात कहां चले गए ? मैं बड़ी रात तक आपकी राह देखता रहा। भोजन का सब सामान बड़ी देर तक रखा रहा। जब आप न आये तो रखवा दिया गया। आपने कुछ भोजन किया था या नहीं ?

मोटेराम—हलवाई की दुकान से कुछ खा आया था।

भालचन्द्र—अजी, पूरी-मिठाई में वह आनन्द कहां जो बाटी और दाल में है। दस-बारह आने खर्च हो गये होंगे, फिर भी पेट न भरा होगा। आप मेरे मेहमान हैं; जितने पैसे हों, ले लीजिएगा।

मोटेराम—आप ही के हलवाई की दुकान पर खा आया था, वह जो नुक्कड़ पर बैठता है।

भालचन्द्र—कितने पैसे देने पड़े ?

मोटेराम—आपके हिसाब में लिखा दिए हैं।

भालचन्द्र—जितनी मिठाइयां ली हों मुझे बता दीजिए, नहीं तो पीछे से बेईमानी करने लगेगा। एक ही ठग है।

मोटेराम—कोई ढाई सेर मिठाई थी और आधा सेर रबड़ी।

बाबू साहब ने विस्फारित नेत्रों से पंडितजी को देखा, मानो कोई अचम्भे की बात सुनी हो। तीन सेर तो कभी यहां महीने-भर का टोटल भी न होता था और यह महाशय एक बार में कोई चार रुपये का माल उड़ा गए। अगर एक-आध दिन रह गए, तो बधिया बैठ जाएगी। पेट है या शैतान की कब्र ? तीन सेर ! कुछ ठिकाना है। उद्विग्न दशा में दौड़े हुए अन्दर गए और रंगीली से बोले—कुछ सुनती हो, यह महाशय कल तीन सेर मिठाई उड़ा गए। तीन सेर पक्की तौल।

रंगीलीबाई ने विस्मित होकर कहा—अजी नहीं, तीन सेर भला क्या खा जाएगा ! आदमी है या बैल ?

भालचन्द्र—तीन सेर तो अपने मुंह से कह रहा है। चार से कम न खायी होगी, पक्की तौल !

रंगीली—पेट में सनीचर है क्या ?

भालचन्द्र—आज और रह गया, तो छह सेर पर हाथ फेरेगा !

रंगीली—तो आज रहे ही क्यों, खत का जो जवाब देना हो, देकर विदा करो। अगर रहे, तो साफ कह देना कि हमारे यहां मिठाई मुफ्त नहीं आती। खिचड़ी बनाना हो बनावे, नहीं तो अपनी राह ले। जिन्हें ऐसे पेटुओं को खिलाने से मुक्ति मिलती हो, वे खिलावें, हमें ऐसी मुक्ति न चाहिए।

मगर पंडितजी विदा होने को तैयार बैठे थे, इसलिए बाबू साहब को कौशल से काम लेने की जरूरत न पड़ी। पूछा—क्या तैयारी कर दी महाराज ?

मोटेराम—हां सरकार, अब चलूंगा। नौ बजे की गाड़ी मिलेगी न ?

भालचन्द्र—भला आज तो रहिए ?

यह कहते-कहते बाबू साहब को भय हुआ कि कहीं यह महाराज सचमुच न रह जाएं, इसलिए वाक्य को यों पूरा किया—हां, वहां भी लोग आपका इन्तजार कर रहे होंगे।

मोटेराम—एक-दो दिन की तो कोई बात न थी। विचार भी यही था कि त्रिवेणी का स्नान करूंगा, पर बुरा न मानिए तो कहूं—आप लोगों में ब्राह्मणों के प्रति लेशमात्र भी श्रद्धा नहीं है। हमारे यजमान हैं, जो हमारा मुंह जोहते रहते हैं कि पंडितजी कोई आज्ञा दें, तो उसका पालन करें। हम उनके द्वार पर पहुंच जाते हैं, तो अपना धन्य भाग्य समझते हैं और सारा घर—छोटे से बड़े तक—हमारी सेवा-सत्कार में मग्न हो जाता है। जहां अपना आदर नहीं वहां एक क्षण ठहरना असह्य है। जहां ब्राह्मण का आदर नहीं, वहां कल्याण नहीं हो सकता।

भालचन्द्र—महाराज, हमसे तो ऐसा अपराध नहीं हुआ।

मोटेराम—अपराध नहीं हुआ ! और अपराध कहते किसे हैं ? अभी आप ही ने घर में जाकर कहा है कि यह महाशय तीन सेर मिठाई चट कर गए। पक्की तौल ! आपने अभी खानेवाले देखे कहां ? एक बार खिलाइए तो आंखें खुल जाएं। ऐसे-ऐसे महान् पुरुष पड़े हुए हैं, जो पंसेरी-भर मिठाई खा जाएं और डकार तक न लें। मिठाई खाने के लिए हमारी चिरौरी की जाती है। हम भिक्षुक ब्राह्मण नहीं हैं, जो आपके द्वार पर खड़े रहें। आपका नाम सुनकर आये थे, यह न जानते थे कि यहां मेरे भोजन के भी लाले पड़ेंगे। भगवान् आपका भला करे।

बाबू साहब ऐसा झेंपे कि मुंह से बात न निकली। जिन्दगी-भर में उन पर कभी ऐसी फटकार न पड़ी थी। बहुत बातें बनायीं—आपकी चर्चा न थी, एक दूसरे महाशय की बात थी, लेकिन पंडितजी का क्रोध शान्त न हुआ। वह सबकुछ सह सकते थे, पर अपने पेट की निन्दा न सह सकते थे। औरत को रूप की निन्दा जितनी अप्रिय लगती है, उससे कहीं अधिक अप्रिय पुरुष को अपने पेट की निन्दा लगती है। बाबू साहब मनाते तो थे, पर यह धड़का भी समाया हुआ था कि यह टिक न जाएं। उनकी कृपणता का पर्दा खुल गया था, अब इसमें सन्देह न था। उस पर्दे को ढांकना जरूरी था। अपनी कृपणता को छिपाने के लिए उन्होंने कोई बात उठा न रखी, पर होनेवाली बात होकर

रही । पछता रहे थे कि कहां से घर में इसकी बात करने गया और कहा भी तो उच्च स्वर में । यह दुष्ट भी कान लगाए सुनता रहा; किन्तु अब पछताने से क्या हो सकता था ! जाने किस मनहूस की सूरत देखी थी कि यह विपत्ति गले पड़ी । अगर इस वक्त यहां से रुष्ट होकर चला गया, तो वहां जाकर बदनाम करेगा और मेरा सारा कौशल खुल जाएगा । अब तो इसका मुंह बन्द कर देना ही पड़ेगा ।

यह सोच-विचार करते हुए घर में जाकर रंगीलीबाई से बोले—इस दुष्ट ने हमारी-तुम्हारी बातें सुन लीं । रूठकर चला जा रहा है ।

रंगीली—जब तुम जानते थे कि द्वार पर खड़ा है, तो धीरे से क्यों न बोले ?

भालचन्द्र—विपत्ति आती है, तो अकेले नहीं आती । यह क्या जानता था कि वह द्वार पर कान लगाए खड़ा है ।

रंगीली—न जाने किसका मुंह देखा था !

भालचन्द्र—वही दुष्ट सामने लेटा हुआ था । जानता तो उधर ताकता ही नहीं । अभी तो इसे कुछ दे-दिलाकर राजी करना पड़ेगा ।

रंगीली—ऊंह, जाने भी दो । जब तुम्हें वहां विवाह ही नहीं करना है, तो क्या परवाह है ? जो चाहे कहे ।

भालचन्द्र—यों जान न बचेगी । लाओ, दस रुपये बिदाई के बहाने दे दूं । ईश्वर फिर इस मनहूस की सूरत न दिखाए । रंगीली ने बहुत पछताते-पछताते दस रुपये निकाले और बाबू साहब ने उन्हें ले जाकर पंडितजी के चरणों पर रख दिए । पंडितजी ने दिल में कहा—धत्तेरे मक्खीचूस की—ऐसा रगड़ा कि याद ही करोगे ! तुम समझते हो कि दस रुपये देकर उसे उल्लू बना लूंगा । इस फेर में न रहना । यहां तुम्हारी नस-नस पहचानते हैं । रुपये जेब में रख लिये और आशीर्वाद देकर अपनी राह ली ।

बाबू साहब बड़ी देर तक खड़े सोच रहे थे—मालूम नहीं, अब भी मुझे कृपण ही समझ रहा है या पर्दा ढक गया । कहीं ये रुपये भी तो पानी में नहीं गिर पड़े ।

चार

कल्याणी के सामने अब एक विषम समस्या आ खड़ी हुई। पति के देहान्त के बाद उसे अपनी दुरवस्था का यह पहला और बहुत ही कडुवा अनुभव हुआ। दरिद्र विधवा के लिए इससे बड़ी और क्या विपत्ति हो सकती है कि जवान बेटी सिर पर सवार हो? लड़के नंगे पांव पढ़ने जा सकते हैं, चौका-बर्तन भी अपने हाथ से किया जा सकता है, रूखा-सूखा खाकर निर्वाह किया जा सकता है, झोंपड़े में दिन काटे जा सकते हैं; लेकिन युवती कन्या घर में नहीं बैठायी जा सकती। कल्याणी को भालचन्द्र पर ऐसा क्रोध आता था कि स्वयं जाकर उसके मुंह में कालिख लगाऊं, सिर के बाल नोंच लूं, कहूं कि तू अपनी बात से फिर गया, तो अपने बाप का बेटा नहीं। पंडित मोटेराम ने उनकी कपट-लीला का नग्न वृत्तान्त सुना दिया था।

वह इसी क्रोध में बैठी थी कि कृष्णा खेलती हुई आयी और बोली—कै दिन में बारात आएगी, अम्मा? पंडितजी तो आ गए?

कल्याणी—बारात का सपना देख रही है क्या?

कृष्णा—वही चन्दर तो कह रहा है कि दो-तीन दिन में बारात आएगी। क्या न आएगी, अम्मा?

कल्याणी—एक बार तो कह दिया, सिर क्यों खाती है?

कृष्णा—सबके घर तो बारात आ रही है, हमारे घर क्यों नहीं आती?

कल्याणी—तेरे घर जो बारात लानेवाला था, उसमें घर में आग लग गई?

कृष्णा—सच अम्मा, तब तो सारा घर जल गया होगा। कहां रहते होंगे? बहन कहां जाकर रहेगी?

कल्याणी—अरे पगली, तू तो बात ही नहीं समझती। आग लगी, वह अब हमारे यहां ब्याह न करेगा।

कृष्णा—यह क्यों, अम्मा? पहले तो ठीक हो गया था?

कल्याणी—बहुत-से रुपये मांगता है? मेरे पास उसे देने को रुपये नहीं हैं।

कृष्णा—क्या बड़े लालची हैं, अम्मा ?

कल्याणी—लालची नहीं तो और क्या है ! पूरा कसाई, निर्दयी, दगाबाज !

कृष्णा—तब तो अम्मा बहुत अच्छा हुआ कि उसके घर बहन का ब्याह नहीं हुआ । बहन उसके साथ कैसे रहती ? यह तो खुश होने की बात है अम्मा, तुम रंज क्यों करती हो ?

कल्याणी ने पुत्री को स्नेहमयी दृष्टि से देखा । उसका कथन कितना सत्य है ! भोले शब्दों में समस्या का कितना मार्मिक निरूपण है ! सचमुच यह तो प्रसन्न होने की बात है कि ऐसे कुपात्रों से सम्बन्ध नहीं हुआ, रंज की कोई बात नहीं । ऐसे कुमानुसों के बीच में बेचारी निर्मला की न जाने क्या गति होती । अपने नसीबों को रोती । जरा-सा घी दाल में अधिक पड़ जाता, तो सारे घर में शोर मच जाता । जरा खाना ज्यादा पक जाता तो सास दुनिया सिर पर उठा लेती । लड़का भी ऐसा लोभी है । बड़ी अच्छी बात हुई, नहीं तो बेचारी को उम्र-भर रोना पड़ता । कल्याणी यहां से उठी, तो उसका हृदय हलका हो गया ।

लेकिन विवाह तो करना ही था और हो सके तो इसी साल, नहीं तो दूसरे साल फिर नए सिरे से तैयारियां करनी पड़ेंगी । अब अच्छे घर की जरूरत नहीं थी । अच्छे वर की जरूरत न थी । अभागिन को अच्छा घर-वर कहां मिलता ? अब किसी भांति सिर का बोझ उतारना था, किसी भांति लड़की को पार करना था—उसे कुएं में झोंकना था । वह रूपवती है, गुणशील है, चतुर है, कुलीन है, तो हुआ करे, दहेज हो तो सारे दोष गुण हैं । प्राणों का कोई मूल्य नहीं, केवल दहेज का मूल्य है । कितनी विषम भाग्यलीला है !

कल्याणी का दोष कुछ कम न था । अबला विधवा होना उसे दोषों से मुक्त नहीं कर सकता । उसे अपने लड़के लड़कियों से कहीं ज्यादा प्यारे थे । लड़के हल के बैल हैं; भूसे-खली पर पहला हक उनका है । उनके खाने से जो बचे, वह गायों का । मकान था, कुछ नकद था, कई हजार के गहने थे, उन्हें पढ़ाना-लिखाना था । एक कन्या और भी चार-पांच साल में विवाह करने योग्य हो जाएगी । इसलिए वह कोई बड़ी रकम दहेज में

न दे सकती थी। आखिर लड़कों को भी तो कुछ चाहिए? वे क्या समझेंगे कि हमारा भी कोई बाप था।

पंडित मोटेराम को लखनऊ से लौटे पन्द्रह दिन बीत चुके थे। लौटने के बाद दूसरे दिन वर की खोज में निकले थे। उन्होंने प्रण किया था कि मैं लखनऊवालों को दिखा दूंगा कि संसार में तुम्हीं अकेले नहीं हो, तुम्हारे ऐसे और भी कितने पड़े हुए हैं। कल्याणी रोज दिन गिना करती थी। आज उसने उन्हें पत्र लिखने का निश्चय किया और कलम-दावात लेकर बैठी ही थी कि पंडित मोटेराम ने पदार्पण किया।

कल्याणी—आइए पंडितजी, मैं तो आपको खत लिखने जा रही थी। कब लौटे?

मोटेराम—लौटा तो प्रातःकाल ही था; पर उसी समय एक सेठ के यहां से निमन्त्रण आ गया। कई दिन से तर माल न मिले थे। मैंने कहा, लगे हाथ यह भी काम निपटाता चलूं। अभी उधर से लौटा आ रहा हूं, कोई पांच सौ ब्राह्मणों की पंगत थी।

कल्याणी—कुछ कार्य सिद्ध हुआ या रास्ता ही नापना पड़ा?

मोटेराम—कार्य क्यों न सिद्ध होता? भला यह भी कोई बात है! पांच जगह बातचीत कर आया हूं। पांचों की नकल लाया हूं। उनमें से आप जिसे चाहें पसंद करें। यह देखिए, यह देखिए लड़के का बाप डाक के सीगे में 100 रु. महीने का नौकर है। लड़का अभी कॉलेज में पढ़ रहा है। मगर नौकरी का भरोसा है, घर में कोई जायदाद नहीं है। लड़का होनहार मालूम होता है। खानदान भी अच्छा है। 2000 रु. में तय हो जाएगी। मांगते तो वह तीन हजार हैं।

कल्याणी—लड़के के कोई भाई हैं?

मोटेराम—नहीं; मगर तीन बहनें हैं और तीनों क्वांरी। माता जीवित हैं। अच्छा अब दूसरी नकल देखिए। यह लड़का रेल के सीगे में 50 रु. महीना पाता है। मां-बाप नहीं हैं। बहुत ही रूपवान, सुशील और शरीर से हृष्ट-पुष्ट कसरती जवान है। मगर खानदान अच्छा नहीं। कोई कहता था, मां नाइन थी; कोई कहता था, ठकुराइन थी। बाप किसी रियासत में मुख्तार थे। घर पर थोड़ी-सी जमींदारी है, मगर उस पर कई हजार का कर्ज है।

वहां कुछ लेना-देना न पड़ेगा । उम्र कोई 20 साल होगी ।

कल्याणी—खानदान में दाग न होता, तो मंजूर कर लेती । देखकर तो मक्खी नहीं निगली जाती ।

मोटेराम—तीसरी नकल देखिए । एक जमींदार का लड़का है, कोई एक हजार सालाना नफा है । कुछ खेती-बाड़ी भी होती है, लड़का पढ़ा-लिखा तो थोड़ा है, पर कचहरी-अदालत के काम में चतुर है । दुहाजू है, पहली स्त्री को मरे दो साल हुए, कोई सन्तान नहीं । लेकिन रहन-सहन मोटा है, पीसना-कूटना घर में ही होता है ।

कल्याणी—कुछ दहेज मांगते हैं ?

मोटेराम—इसकी कुछ न पूछिए । चार हजार सुनाते हैं । अच्छा, यह चौथी नकल देखिए । लड़का वकील है, उम्र कोई पैंतीस साल होगी । तीन-चार सौ की आमदनी है । पहली स्त्री मर चुकी है । उसके तीन लड़के भी हैं । अपना घर बनवाया है । कुछ जायदाद भी खरीदी है । यहां भी लेन-देन का झगड़ा नहीं है ।

कल्याणी—खानदान कैसा है ?

मोटेराम—बहुत ही उत्तम, पुराने रईस हैं । अच्छा, यह पांचवीं नकल देखिए । बाप का छापाखाना है, लड़का पढ़ा तो बी. ए. तक है, पर उसी छापेखाने में काम करता है, उम्र अठारह साल की होगी । घर में प्रेस के सिवाय कोई जायदाद नहीं है, मगर किसी का कर्ज सिर पर नहीं । खानदान न बहुत अच्छा है, न बहुत बुरा । लड़का बहुत सुन्दर और सच्चरित्र है । मगर एक हजार से कम में मामला तय न होगा । मांगते तो वह तीन हजार हैं । अब बताइए, आप कौन-सा वर पसन्द करती हैं ?

कल्याणी—आपको सबों में कौन पसन्द है ?

मोटेराम—मुझे तो दो वर पसन्द हैं । एक वह जो रेलवई में है; और दूसरा वह जो छापेखाने में काम करता है ।

कल्याणी—मगर पहले में तो खानदान में दोष बताते हैं ?

मोटेराम—हां, यह दोष है । तो छापेखानेवाले को ही रहने दीजिए ।

कल्याणी—वहां एक हजार देने को कहां से आएगा ? एक हजार तो आपका अनुमान है, शायद वह मुंह फैलाएं । आप तो घर की दशा देख ही

रहे हैं। भोजन मिलता जाए, यही गनीमत है। रुपये कहां से आएंगे ? जमींदार साहब चार हजार सुनाते हैं, डाक बाबू भी दो हजार का सवाल करते हैं। इनको जाने दीजिए। बस, वकील साहब ही बच रहे, पैंतीस साल की उम्र भी कोई ऐसी ज्यादा नहीं। इन्हीं को क्यों न रखिए ?

मोटेराम—आप खूब सोच-विचार लें। मैं यों आपकी मर्जी का ताबेदार हूं। जहां कहिएगा, वहां टीका कर आऊंगा। मगर एक हजार का मुंह न देखिए, छापेखानेवाला लड़का रत्न है। उसके साथ कन्या का जीवन सफल हो जाएगा। जैसी वह रूप और गुण की पूरी है, वैसा ही लड़का भी सुन्दर और सुशील है।

कल्याणी—पसन्द तो मुझे भी यही है, महाराज। पर रुपये किसके घर से आएं ? कौन देखनेवाला है ? खानेवाले तो खा-पीकर चम्पत हुए। अब किसी की भी सूरत दिखाई नहीं देती; बल्कि और मुझसे बुरा मानते हैं, कि हमें निकाल दिया। जो बात अपने बस के बाहर है, उसके लिए हाथ ही क्यों फैलाऊं ? सन्तान किसको प्यारी नहीं होती ? कौन उसे सुखी नहीं देखना चाहता ? पर जब अपना काबू भी हो ! ईश्वर का नाम लेकर वकील साहब को टीका कर आइए। आयु कुछ अधिक है; लेकिन मरना-जीना विधि के हाथ है। पैंतीस साल का आदमी बुड्ढा नहीं कहलाता। अगर लड़की के भाग्य में सुख भोगना बदा है, तो जहां जाएगी सुखी रहेगी; दुख भोगना है, तो जहां जाएगी, दुःख झेलेगी। हमारी निर्मला को बच्चों से प्रेम है। उनके बच्चों को अपना समझेगी। आप शुभ मुहूर्त देखकर टीका कर आयें।

पांच

निर्मला का विवाह हो गया। ससुराल आ गई। वकील साहब का नाम था मुंशी तोताराम। सांवले रंगे के मोटे-ताजे आदमी थे। उम्र तो अभी चालीस से अधिक न थी, पर वकालत के कठिन परिश्रम ने सिर के बाल पका दिये

थे। व्यायाम करने का अवकाश न मिलता था। यहां तक कि कभी कहीं घूमने न जाते, इसलिए तोंद निकल आयी थी। देह स्थूल होते हुए भी आए दिन कोई-न-कोई शिकायत रहती थी। मन्दाग्नि और बवासीर से तो उनका चिरस्थायी सम्बन्ध था। अतएव बहुत फूंक-फूंककर कदम रखते थे। उनके तीन लड़के थे। बड़ा मंसाराम सोलह वर्ष का था, मंझला जियाराम ग्यारह और सियाराम सात वर्ष का था। तीनों अंग्रेजी पढ़ते थे। घर में वकील साहब की विधवा बहन के सिवा और कोई औरत न थी। वही घर की मालकिन थी। उसका नाम रुक्मिणी और अवस्था पचास के ऊपर थी। ससुराल में कोई न था। स्थायी रीति से यहां रहती थी।

तोताराम दम्पति-विज्ञान में कुशल थे। निर्मला को प्रसन्न रखने के लिए उनमें जो स्वाभाविक कमी थी, उसे वह उपहारों से पूरी करना चाहते थे। यद्यपि वह बहुत ही मितव्ययी पुरुष थे, तथापि निर्मला के लिए कोई-न-कोई तोहफा रोज लाया करते। मौके पर धन की परवाह न करते। लड़कों के लिए थोड़ा दूध आता, पर निर्मला के लिए मेवे, मुरब्बे, मिठाइयां—किसी चीज की कमी न थी। अपनी जिंदगी में कभी सैर-तमाशे देखने न गए थे। अब अपने बहुमूल्य समय का थोड़ा-सा हिस्सा उसके साथ बैठकर ग्रामोफोन बजाने में व्यतीत किया करते थे।

लेकिन निर्मला को न जाने क्यों तोताराम के पास बैठने और हंसने-बोलने में संकोच होता था। इसका कदाचित यह कारण था कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुकाकर, देह चुराकर निकलती थी। अब उसी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं, सम्मान की वस्तु समझती थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उसकी प्रफुल्लता पलायन कर जाती थी।

वकील साहब को उनके दम्पति-विज्ञान ने सिखाया था कि युवती के सामने खूब प्रेम की बातें करना चाहिए—दिल निकालकर रख देना चाहिए, यही वशीकरण का मुख्य मन्त्र है। इसलिए वकील साहब अपने प्रेम-प्रदर्शन में कोई कसर न रखते थे, लेकिन निर्मला को इन बातों से घृणा होती थी। वही बातें, जिन्हें किसी युवक के मुख से सुनकर उसका हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जाता, वकील साहब के मुंह से निकलकर उसके हृदय पर शर समान

आघात करती थीं। उनमें न रस था, न उल्लास था, न उन्माद था, केवल बनावट थी, धोखा था और था शुष्क एवं नीरस शब्दाडम्बर। उसे इत्र और तेल बुरा न लगता, सैर-तमाशे बुरे न लगते, बनाव-सिंगार भी बुरा न लगता था; बुरा लगता था तो केवल तोताराम के पास बैठना। वह अपना रूप और यौवन उन्हें न दिखाना चाहती थी; क्योंकि वहां देखनेवाली आंखें न थीं। वह उन्हें इन रसों का आस्वादन करने के योग्य ही न समझती थी। कली प्रभात-समीर के स्पर्श से खिलती है। दोनों में समान प्रेरणा है। निर्मला के लिए वह प्रभात-समीर कहां था ?

पहला महीना गुजरते ही तोताराम ने निर्मला को अपना खजांची बना लिया। कचहरी से आकर दिन-भर की कमाई उसी को देते। उनका खयाल था, निर्मला इन रुपयों को देखकर फूली न समाएगी। निर्मला बड़े शौक से इस पद का काम अंजाम देती। एक-एक पैसे का हिसाब लिखती। अगर कभी रुपये कम मिलते तो पूछती, आज कम क्यों हैं ? गृहस्थी के सम्बन्ध में उनसे खूब बातें करती। इन्हीं बातों के लायक वह उनको समझती थी। ज्योंही कोई विनोद की बात उनके मुंह से निकल जाती, उसका मुख मलिन हो जाता था।

निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर आईने के सामने खड़ी होती और उसमें अपने सौन्दर्य की सुषमापूर्ण आभा देखती, तो उसका हृदय एक सतृष्ण कामना से तड़प उठता था। उस वक्त उसके हृदय में एक ज्वाला-सी उठती। मन में आता, इस घर में आग लगा दूं। अपनी माता पर क्रोध आता, पर सबसे अधिक क्रोध बेचारे निरपराध तोताराम पर आता। वह सदैव इस बात से जला करती। बांका सवार बड़े लद्दू-टट्टू पर सवार होना कब पसन्द करेगा, चाहे उसे पैदल ही क्यों न चलना पड़े। निर्मला की दशा उसी बांके सवार की-सी थी। वह उन पर सवार होकर उड़ना चाहती थी, उस उल्लासमयी विद्युत गति का आनन्द उठाना चाहती थी; टट्टू के हिनहिनाने और कनौतियां खड़ी करने से क्या आशा होती ? सम्भव था कि बच्चों के साथ हंसने-खेलने से वह अपनी दशा को थोड़ी देर के लिए भूल जाती, कुछ मन हरा हो जाता; लेकिन रुक्मिणी देवी लड़कों को उसके पास फटकने भी न देतीं; मानो वह कोई पिशाचिनी है, जो उन्हें निगल जायेगी।

रुक्मिणी देवी का स्वभाव सारे संसार से निराला था। यह पता लगाना कठिन था कि वह किस बात से खुश होती थीं और किस बात से जल जाती थीं। अगर निर्मला अपने कमरे में बैठती, तो कहतीं कि न जाने कहां की मनहूसिन है; अगर वह कोठे पर चढ़ जाती या महरियों से बातें करती, तो छाती पीटने लगतीं—न लाज है, न शर्म; निगोड़ी ने हया भून खायी, अब क्या कुछ दिनों में बाजार में नाचेगी।

जब से वकील साहब ने निर्मला के हाथ में रुपये-पैसे देने शुरू किए, रुक्मिणी उसकी आलोचना करने पर आरूढ़ हो गई थीं। उन्हें मालूम होता था कि अब प्रलय होने में बहुत थोड़ी कसर रह गई है। लड़कों को बार-बार पैसे की जरूरत पड़ती। जब तक खुद स्वामिनी थीं, उन्हें बहला दिया करती थीं। अब सीधे निर्मला के पास भेज देतीं। निर्मला को लड़कों का चटोरपन अच्छा न लगता था। कभी-कभी पैसे देने से इनकार कर देती। रुक्मिणी को अपने वाग्वाण सर करने का अवसर मिल जाता—अब तो मालकिन हुई हैं, लड़के काहे को जिएंगे। बिना मां के बच्चों को कौन पूछे? रुपयों की मिठाइयां खाते थे, अब धेले-धेले को तरसते हैं। निर्मला अगर चिढ़कर किसी दिन बिना कुछ पूछे-ताछे पैसे दे देती, तो देवीजी उसकी दूसरी आलोचना करतीं—इन्हें क्या, लड़के मरें या जिएं, इनकी बला से! मां के बिना कौन समझाए कि बेटा, बहुत मिठाई मत खाओ। आयी-गयी तो मेरे किए जाएगी, उन्हें क्या?

यहीं तक होता, तो निर्मला शायद जब्त कर जाती, पर देवी तो खुफिया पुलिस के सिपाही की भांति निर्मला का पीछा करती रहती थीं। अगर वह कोठे पर खड़ी है, तो अवश्य किसी पर निगाह डाल रही होगी। महरी से बातें करती है, तो अवश्य उनकी निंदा करती होगी। बाजार से कुछ मंगवाती है, तो अवश्य कोई विलास-वस्तु होगी। वह बराबर उसके पत्र पढ़ने की चेष्टा किया करतीं। छिप-छिपकर उसकी बात सुना करतीं। निर्मला उनकी दोधारी तलवार से कांपती रहती थी। यहां तक कि उसने एक दिन पति से कहा—आप जरा जीजी को समझा दीजिए, क्यों मेरे पीछे पड़ी रहती हैं।

तोताराम ने तेज होकर कहा—तुम्हें कुछ कहा है क्या?

''रोज ही कहती हैं। बात मुंह से निकालना मुश्किल है। अगर उन्हें

इस बात की जलन हो कि यह मालकिन क्यों बनी हुई है, तो आप उन्हीं को रुपये-पैसे दीजिए, मुझे न चाहिए, वही मालकिन बनी रहें। मैं तो केवल इतना ही चाहती हूं कि मुझे ताने-मेहने न दिया करें।"

यह कहते-कहते निर्मला की आंखों में आंसू बहने लगे। तोताराम को अपना प्रेम दिखाने का यह बहुत अच्छा मौका मिला। बोले—मैं आज ही उनकी खबर लूंगा। साफ कह दूंगा, अगर मुंह बंद करके रहना है तो रहो, नहीं तो अपनी राह लो, इस घर की स्वामिनी वह नहीं हैं, तुम हो। वह केवल तुम्हारी सहायता के लिए हैं। अगर सहायता करने के बदले तुम्हें दिक करती हैं, तो उनकी यहां रहने की जरूरत नहीं। मैंने सोचा था कि विधवा हैं, अनाथ हैं, पाव-भर आटा खाएंगी, पड़ी रहेंगी। जब और नौकर-चाकर खा रहे हैं तो वह अपनी बहन ही हैं; लड़कों की देखभाल के लिए औरत की जरूरत भी थी, रख लिया; लेकिन इसके यह माने नहीं कि वह तुम्हारे ऊपर शासन करें।

निर्मला ने फिर कहा—लड़कों को सिखा देती हैं कि जाकर मां से पैसे मांगो, कभी कुछ, कभी कुछ। लड़के आकर मेरी जान खाते हैं। घड़ी-भर लेटना मुश्किल हो जाता है। डांटती हूं, तो वह आंखें लाल-पीली करके दौड़ती हैं। मुझे समझती हैं कि लड़कों को देखकर जलती है। ईश्वर जानते होंगे कि मैं बच्चों को कितना प्यार करती हूं। आखिर मेरे ही बच्चे तो हैं, मुझे उनसे क्यों जलन होने लगी?

तोताराम क्रोध से कांप उठे। बोले—तुम्हें जो लड़का दिक करे, उसे पीट दिया करो। मैं भी देखता हूं कि लौंडे शरीर हो गये हैं। मंसाराम को मैं बोर्डिंग हाउस में भेज दूंगा। बाकी दोनों को तो आज ही ठीक किए देता हूं।

उस वक्त तोताराम कचहरी जा रहे थे। डांट-डपट करने का मौका न था, लेकिन कचहरी से लौटते ही उन्होंने घर में आकर रुक्मिणी से कहा—क्यों बहन, तुम्हें इस घर में रहना है या नहीं? अगर रहना है तो शांत होकर रहो, यह क्या कि दूसरों का रहना मुश्किल कर दो।

रुक्मिणी समझ गयीं कि बहू ने अपना वार किया। पर वह दबनेवाली औरत न थीं। एक तो उम्र में बड़ी, तिस पर इसी घर की सेवा में जिन्दगी

काट दी थी। किसकी मजाल थी कि उन्हें बेदखल कर दे। उन्हें भाई की क्षुद्रता से आश्चर्य हुआ। बोलीं—तो क्या लौंडी बनाकर रखोगे ? लौंडी बनकर रहना है, तो इस घर की लौंडी न बनूंगी। अगर तुम्हारी यही इच्छा हो कि घर में कोई आग लगा दे और मैं खड़ी देखा करूं; किसी को बेराह चलते देखूं तो चुप साध लूं; जो जिसके मन में आये, करे, मैं मिट्टी की देवी बनी रहूं; तो यह मुझसे न होगा। यह हुआ क्या, जो तुम इतने आपे से बाहर हो रहे हो ? निकल गई सारी बुद्धिमानी, कल की लौंडिया चोटी पकड़कर नचाने लगी ? कुछ पूछना न ताछना; बस उसने तीर खींचा और तुम काठ के सिपाई की तरह तलवार निकालकर खड़े हो गए।

तोताराम—सुनता तो हूं कि तुम हमेशा खुचुर निकालती रहती हो, बात-बात पर ताने देती हो। अगर कुछ सीख ही देनी हो, तो उसे प्यार से, मीठे शब्दों में देनी चाहिए। तानों में सीख देने के बदले उलटा और जी जलने लगता है।

रुक्मिणी—तो तुम्हारी यही मर्जी है कि किसी बात में न बोलूं, यही सही। लेकिन फिर यह न कहना कि तुम तो घर में बैठी थीं, क्यों नहीं सलाह दी। जब मेरी बातें जहर लगती हैं, तो मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, जो बोलूं ? मसल है—'नाटों खेती बहुरियों घर।' मैं भी देखूं, बहुरिया कैसे घर चलाती है।

इतने में सियाराम और जियाराम स्कूल से आ गए। आते-ही-आते दोनों बुआजी के पास जाकर खाने को मांगने लगे। रुक्मिणी ने कहा—जाकर अपनी नई अम्मा से क्यों नहीं मांगते ? मुझे बोलने का हुक्म नहीं है।

तोताराम—अगर तुम लोगों ने उस घर में कदम रखे, तो टांग तोड़ दूंगा। बदमाशी पर कमर बांधी है !

जियाराम जरा शोख था। बोला—उनको तो आप कुछ नहीं कहते, हमीं को धमकाते हैं। कभी पैसे नहीं देतीं।

सियाराम ने इस कथन का अनुमोदन किया—कहती हैं, मुझे दिक करोगे तो कान काट लूंगी। कहती हैं कि नहीं, जिया ?

निर्मला अपने कमरे से बोली—मैंने कब कहा था कि कान काट लूंगी ? अभी से झूठ बोलने लगे ?

इतना सुनना था कि तोताराम ने सिया के दोनों कान पकड़कर उठा लिया। लड़का जोर से चीख मारकर रोने लगा।

रुक्मिणी ने दौड़कर बच्चे को मुंशीजी के हाथ से छुड़ा लिया और बोलीं—बस रहने भी दो; क्या बच्चे को मार डालोगे ? हाय-हाय ! कान लाल हो गया। सच कहा है, नई बीवी पाकर आदमी अन्धा हो जाता है। अभी से यह हाल है, तो इस घर के भगवान ही मालिक हैं।

निर्मला अपनी विजय पर मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थी, लेकिन जब मुंशीजी ने बच्चे का कान पकड़कर उठा लिया, तो उससे न रहा गया। छुड़ाने को दौड़ी। पर रुक्मिणी पहले ही पहुंच गई थीं। बोलीं—पहले आग लगा दी, अब बुझाने दौड़ी हो। जब अपने लड़के होंगे, आंखें खुलेंगी। परायी पीर क्या जानो ?

निर्मला—खड़े तो हैं, पूछ लो न, मैंने क्या आग लगा दी ? मैंने इतना ही कहा था कि लड़के मुझे पैसों के लिए बार-बार दिक करते हैं। इसके सिवाय जो मेरे मुंह से कुछ और निकला हो, मेरी आंखें फूट जाएं।

तोताराम—मैं खुद इन लौंडों की शरारत देखा करता हूं, अंधा थोड़े ही हूं। तीनों जिद्दी और शरीर हो गए हैं। बड़े मियां को तो आज ही होस्टल में भेजता हूं।

रुक्मिणी—अब तक तुम्हें इनकी कोई शरारत न सूझी थी, आज आंखें क्यों इतना तेज हो गयीं ?

तोताराम—तुम्हीं ने इतना शोख कर रखा है।

रुक्मिणी—तो मैं ही विष की गांठ हूं। मेरे ही कारण तुम्हारा घर चौपट हो रहा है। लो मैं जाती हूं, मारो चाहे काटो, मैं न बोलूंगी।

यह कहकर वह वहां से चली गयीं। निर्मला बच्चे को रोता देखकर विकल हो उठी। उसने उसे छाती से लगा लिया और गोद में लिए हुए अपने कमरे में लाकर उसे चुमकारने लगी। लेकिन बालक और भी सिसक-सिसककर रोने लगा। उसका अबोध हृदय इस प्यार में वह मातृस्नेह न पाता था, जिससे दैव ने उसे वंचित कर दिया था। यह वात्सल्य न था, केवल दया थी। यह वह वस्तु थी, जिस पर उसका कोई अधिकार न था; जो केवल भिक्षा के रूप में उसे दी जा रही थी। पिता ने पहले भी दो-एक बार

मारा था, जब उसकी मां जीवित थी; लेकिन तब उसकी मां उसे छाती से लगाकर रोती न थी। वह अप्रसन्न होकर उससे बोलना छोड़ देती, यहां तक कि वह स्वयं थोड़ी ही देर के बाद सबकुछ भूलकर फिर माता के पास दौड़ जाता था। शरारत के लिए सजा पाना तो उसकी समझ में आता था। लेकिन मार खाने पर चुमकारा जाना उसकी समझ में न आता था।

मातृप्रेम में कठोरता होती थी, लेकिन मृदुलता से मिली हुई। इस प्रेम में करुणा थी, पर वह कठोरता न थी, जो आत्मीयता का गुप्त सन्देश है। स्वस्थ अंग की परवाह कौन करता है ? लेकिन वह अंग जब किसी वेदना से टपकने लगता है, तो उसे ठेस और धक्के से बचाने का यत्न किया जाता है। बालक का करुण रोदन निर्मला को उसके अनाथ होने की सूचना दे रहा था। वह बड़ी देर तक निर्मला की गोद में बैठा रोता रहा और रोते-रोते सो गया। निर्मला ने उसे चारपाई पर सुलाना चाहा, तो बालक ने सुषुप्तावस्था में अपनी दोनों कोमल बांहें उसकी गर्दन में डाल दीं और ऐसा चिपट गया, मानो नीचे कोई गढ़ा हो। शंका और भय से उसका मुख विकृत हो गया। निर्मला ने फिर बालक को गोद में उठा लिया, चारपाई पर न सुला सकी। इस समय बालक को गोद में लिये हुए उसे वह तुष्टि हो रही थी, जो अब तक कभी न हुई थी। आज पहली बार उसे आत्मवेदना हुई, जिसके बिना आंख नहीं खुलती, अपना कर्त्तव्य-मार्ग नहीं सूझता। वह मार्ग अब दिखाई देने लगा।

छह

उस दिन अपने प्रगाढ़ प्रणय का सबल प्रमाण देने के बाद मुंशी तोताराम को आशा हुई थी कि निर्मला के मर्मस्थल पर मेरा सिक्का जम जाएगा, लेकिन उनकी यह आशा लेशमात्र भी पूरी न हुई, बल्कि पहले तो वह कभी-कभी उससे हंसकर बोला भी करती थी, अब बच्चों ही के लालन-पालन में व्यस्त

रहने लगी। जब घर आते, बच्चों को उसके पास बैठे पाते। कभी देखते कि उन्हें खिला रही है, कभी कपड़े पहना रही है। कभी कोई खेल खेला रही है और कभी कोई कहानी कह रही है। निर्मला का तृषित हृदय प्रणय की ओर से निराश होकर इस अवलम्ब ही को गनीमत समझने लगा। तोताराम के साथ हंसने-बोलने में उसे जो संकोच, अरुचि तथा जो अनिच्छा होती थी, यहां तक कि वह उठकर भाग जाना चाहती; उसके बदले बालकों के सच्चे, सरल स्नेह से चित्त प्रसन्न हो जाता था। पहले मंसाराम उसके पास आते हुए झिझकता था, लेकिन अब वह भी कभी-कभी आ बैठता। वह निर्मला का हमसिन था, लेकिन मानसिक विकास से पांच साल छोटा। हाकी और फुटबाल ही उसका संसार, उसकी कल्पनाओं का मुक्त क्षेत्र तथा उसकी कामनाओं का हरा-भरा बाग था। इकहरे बदन का छरहरा, सुन्दर, हंसमुख, लज्जाशील बालक था, जिसका घर से केवल भोजन का नाता था, बाकी सारे दिन न जाने कहां घूमा करता। निर्मला उसके मुंह से खेल की बातें सुनकर थोड़ी देर के लिए अपनी चिन्ताओं को भूल जाती और चाहती कि एक बार फिर वही दिन आ जाते, जब गुड़ियां खेलती और उनके ब्याह रचाया करती थी, और जिसे अभी छोड़े बहुत ही थोड़े दिन गुजरे थे।

मुंशी तोताराम अन्य एकान्तसेवी मनुष्यों की भांति विषयी जीव थे। कुछ दिनों तो वह निर्मला को सैर-तमाशे दिखाते रहे। लेकिन जब देखा कि इसका कुछ फल नहीं होता, तो फिर एकान्त-सेवन करने लगे। दिन-भर के कठिन मानसिक परिश्रम के बाद उनका चित्त आमोद-प्रमोद के लिए लालायित हो जाता, लेकिन जब अपनी विनोद-वाटिका में प्रवेश करते और फूलों को मुरझाया, पौधों को सूखा, क्यारियों में धूल उड़ती हुई देखते, तो उनका जी चाहता, क्यों न इस वाटिका को उजाड़ दूं? निर्मला उनसे विरक्त रहती है, इसका रहस्य उनकी समझ में न आता था। दम्पति-शास्त्र के सारे मंत्रों की परीक्षा कर चुके थे; पर मनोरथ पूरा न हुआ। अब क्या करना चाहिए, यह उनकी समझ में न आता था।

एक दिन वह इसी चिंता में बैठे हुए थे कि उनके सहपाठी मित्र नयनसुखराम आकर बैठ गए और सलाम-वलाम के बाद मुसकराकर बोले—आजकल तो खूब गहरी छनती होगी। नई बीवी का आलिंगन

करके जवानी का मजा आ जाता होगा। बड़े भाग्यवान हो ! भाई, रूठी हुई जवानी को मनाने का इससे अच्छा कोई उपाय नहीं कि नया विवाह हो जाय। यहां तो जिन्दगी बवाल हो रही है। पत्नीजी इस बुरी तरह चिमटी हैं कि किसी तरह पिंड ही नहीं छोड़तीं। मैं तो दूसरी शादी की फिक्र में हूं। कहीं डौल हो तो ठीक-ठाक करा दो। दस्तूरी में एक दिन तुम्हें उसके हाथ के बने हुए पान खिला देंगे।

तोताराम ने गंभीर भाव से कहा—कहीं ऐसी हिमाकत न कर बैठना, नहीं तो पछताओगे। लौंडियां कुछ लौंडों से ही खुश रहती हैं। हम-तुम अब उस काम के नहीं रहे। सच कहता हूं, मैं शादी करके पछता रहा हूं। बुरी बला गले पड़ी। सोचा था, दो-चार साल और जिंदगी का मजा उठा लूं, पर उलटी आंतें गले पड़ीं।

नयनसुखराम—तुम क्या बातें करते हो। लौंडियों को पंजों में लाना क्या मुश्किल बात है ! जरा सैर-तमाशे दिखा दो, उनके रंग-रूप की तारीफ कर दो, बस, रंग जम गया।

तोताराम—यह सब कर-धरके हार गया।

नयनसुखराम—अच्छा ! कुछ इत्र-तेल, फूल-पत्ते, चाट-वाट का भी मजा चखाया ?

तोताराम—अजी, यह सब कर चुका। दम्पति-शास्त्र के सारे मंत्रों का इम्तिहान ले चुका, सब कोरी गप्पें हैं।

नयनसुखराम—अच्छा, तो अब मेरी एक सलाह मानो। जरा अपनी सूरत बनवा लो। आजकल यहां एक बिजली के डॉक्टर आये हुए हैं, जो बुढ़ापे के सारे निशान मिटा देते हैं। क्या मजाल कि चेहरे पर एक झुर्री या सिर का कोई बाल पका रह जाय। न जाने ऐसा क्या जादू कर देते हैं कि आदमी का चोला ही बदल जाता है।

तोताराम—फीस क्या लेते हैं ?

नयनसुखराम—फीस तो सुना है, ज्यादा लेते हैं, शायद पांच सौ रुपये।

तोताराम—अजी, कोई पाखंडी होगा, बेवकूफों को लूट रहा होगा। कोई रोगन लाकर दो-चार दिन के लिए जरा चेहरा चिकना कर देता होगा। इश्तहारी डॉक्टरों पर अपना विश्वास नहीं। दस-पांच की बात होती तो

कहता। जरा दिल्लगी ही सही। पांच सौ रुपये बड़ी रकम है।

नयनसुखराम—तुम्हारे लिए 500 रु. कौन बड़ी बात है। एक महीने की आमदनी है। मेरे पास तो भाई 500 रु. होते, तो सबसे पहला काम यही करता। जवानी की एक घण्टे की कीमत 500 रु. से कहीं ज्यादा है।

तोताराम—अजी, कोई सस्ता नुस्खा बताओ, कोई फकीरी जड़ी-बूटी जो कि बिना हर्र-फिटकरी के रंग चोखा हो जाय। बिजली और रेडियम बड़े आदमियों के लिए रहने दो। उन्हीं को मुबारक हो।

नयनसुखराम—तो फिर रंगीलेपन का स्वांग रचो। यह ढीलाढाला कोट फेंको; तंजेब की चुस्त अचकन हो, चुन्नटदार पाजामा, गले में सोने की जंजीर पड़ी हुई, सिर पर जयपुरी साफा बंधा हुआ, आंखों में सुर्मा और बालों में हिना का तेल पड़ा हुआ। तोंद का पिचकना भी जरूरी है। दोहरा कमरबन्द बांधो। जरा तकलीफ होगी, पर अचकन सज उठेगी। खिजाब मैं लगा दूंगा। सौ-पचास गजलें याद कर लो। मौके-मौके से शेर पढ़ो। बातों में रस भरा हो। ऐसा मालूम हो कि तुम्हें दीन और दुनिया की कोई फिक्र नहीं है, बस जो कुछ है, प्रियतमा ही है। जवांमर्दी और साहस का काम करने का मौका ढूंढते रहो। रात को झूठ-मूठ शोर करो—चोर-चोर और तलवार लेकर अकेले पिल पड़ो। हां, जरा मौका देख लेना, ऐसा न हो कि सचमुच कोई चोर आ जाय और तुम उसके पीछे दौड़ो, नहीं तो सारी कलई खुल जायगी और मुफ्त में उल्लू बनोगे। उस वक्त तो जवांमर्दी इसी में है कि दम साधे पड़े रहो, जिससे वह समझे कि तुम्हें खबर ही नहीं हुई। लेकिन ज्यों ही चोर भाग खड़ा हो, तुम भी उछलकर बाहर निकलो और तलवार लेकर 'कहां ? कहां ?' करके दौड़ो। ज्यादा नहीं, एक महीने मेरी बातों का इम्तिहान करके देखो। अगर तुम्हारा दम न भरने लगें तो जो जुर्माना कहो, वह दूं।

तोताराम ने उस वक्त तो यह बात हंसी में उड़ा दी, जैसा कि एक व्यवहार-कुशल मनुष्य को करना चाहिए था, लेकिन इनमें की कुछ बातें उनके मन में बैठ गयीं। उनका असर पड़ने में कोई सन्देह न था। धीरे-धीरे रंग बदलने लगे, जिसमें लोग खटक न जायं। पहले बालों से शुरू किया, फिर सुर्मे की बारी आई, यहां तक कि एक-दो महीने में उनका कलेवर ही बदल गया। गजलें याद करने का प्रस्ताव तो हास्यास्पद था, लेकिन वीरता की

डींग मारने में कोई हानि न थी ।

उस दिन से वह रोज अपनी जवांमर्दी का कोई-न-कोई प्रसंग अवश्य छेड़ देते । निर्मला को सन्देह होने लगा कि कहीं उन्हें उन्माद का रोग तो नहीं हो रहा है । जो आदमी मूंग की दाल और मोटे आटे के दो फुलके खाकर भी नमक सुलेमानी का मोहताज हो, उसके छैलपन पर उन्माद का सन्देह हो, तो आश्चर्य ही क्या ? निर्मला पर इस पागलपन का और तो क्या रंग जमता, हां, उसे उन पर दया आने लगी । क्रोध और घृणा का भाव जाता रहा । क्रोध और घृणा उस पर होती है, जो अपने होश में हो । परन्तु ऐसा आदमी तो दया ही का पात्र है । वह बात-बात में उनकी चुटकियां लेती, उनका मजाक उड़ाती, जैसे लोग पागलों के साथ किया करते हैं । हां, इसका ध्यान रखती थी कि वह समझ न जायं । वह सोचती, बेचारा अपने पाप का प्रायश्चित कर रहा है । यह सारा स्वांग केवल इसीलिए तो है कि अपना दुःख भूल जाऊं । आखिर अब भाग्य तो बदल सकता नहीं, इस बेचारे को क्यों जलाऊं ?

एक दिन रात को नौ बजे तोताराम बांके बने हुए सैर करके लौटे और निर्मला से बोले—आज तीन चोरों से सामना हो गया । मैं जरा शिवपुर की तरफ चला गया था । अंधेरा था ही । ज्यों ही रेल की सड़क के पास पहुंचा, तो तीन आदमी तलवार लिये हुए न जाने किधर से निकल पड़े । यकीन मानो, तीनों काले देव थे ! मैं बिलकुल अकेला, हाथ में सिर्फ यह छड़ी थी । उधर तीनों तलवार बांधे हुए, होश उड़ गए । उलझ गया कि जिन्दगी का यहीं तक साथ था; मगर मैंने भी सोचा, मरता ही हूं तो वीरों की मौत क्यों न मरूं । इतने में एक आदमी ने ललकार कहा—रख दे, पास जो कुछ हो और चुपके से चला जा ।

मैं छड़ी संभालकर खड़ा हो गया और बोला—मेरे पास सिर्फ यही छड़ी है, और इसका मूल्य एक आदमी का सिर है ।

मेरे मुंह से इतना निकलना था कि तीनों तलवारें खींचकर मुझ पर झपट पड़े और मैं उनके वारों को छड़ी पर रोकने लगा । तीनों झल्ला-झल्लाकर वार करते थे, खटाके की आवाज होती थी और मैं बिजली की तरह झपटकर उनके वारों को काट देता था । कोई दस मिनट तक तीनों ने खूब तलवार का जौहर दिखाया, पर मुझ पर रेफ तक न आयी । मजबूरी यही थी कि

मेरे हाथ में तलवार न थी। यदि कहीं तलवार होती तो एक को जीता न छोड़ता, खैर कहां तक बयान करूं, उस वक्त मेरे हाथों की सफाई देखने काबिल थी। मुझे खुद आश्चर्य हो रहा था कि यह चपलता मुझमें कहां से आ गई। जब तीनों ने देखा कि यहां दाल नहीं गलने की, तो तलवार म्यान में रख ली और पीठ ठोंककर बोले—जवान, तुम-सा और वीर आज तक नहीं देखा। हम तीनों सौ पर भारी हैं, गांव-के-गांव ढोल बजाकर लूटते हैं, पर आज तुमने हमें नीचा दिखा दिया। हम तुम्हारा लोहा मान गए। कहकर तीनों फिर नजरों से गायब हो गए।

निर्मला ने गम्भीर भाव से मुसकराकर कहा—इस छड़ी पर तलवारों के बहुत-से निशान बने होंगे ?

मुंशीजी इस शंका के लिए तैयार न थे, पर कोई जवाब देना आवश्यक था, बोले—मैं वारों को बराबर खाली कर देता था। दो-चार चोटें छड़ी पर पड़ीं भी तो उचटती हुई, जिनसे कोई निशान नहीं पड़ सकता था।

अभी उनके मुंह से पूरी बात निकली भी न थी कि सहसा रुक्मिणी देवी बदहवास भागती हुई आयीं और हांफते हुए बोलीं—तोता, तोता है कि नहीं ? मेरे कमरे में एक सांप निकल आया है। मेरी चारपाई के नीचे बैठा हुआ है। मैं उठकर भागी। मुआ कोई दो गज का होगा। फन निकाले फुफकार रहा है, जरा चलो तो ! डंडा लेते चलना।

तोताराम के चेहरे का रंग उड़ गया, मुंह पर हवाइयां छूटने लगीं, मगर मन के भावों को छिपाकर बोले—सांप यहां कहां ? तुम्हें धोखा हुआ होगा ? कोई रस्सी होगी।

रुक्मिणी—अरे, मैंने अपनी आंखों देखा है। जरा चलकर देख न लो। हें ! हें ! मर्द होकर डरते हो ?

मुंशीजी घर से निकले, लेकिन बरामदे में फिर ठिठक गये। उनके पांव ही न उठते थे। कलेजा धड़-धड़ कर रहा था। सांप बड़ा क्रोधी जानवर है। कहीं काट ले तो मुफ्त में प्राण से हाथ धोना पड़े। बोले—डरता नहीं। सांप ही तो है, शेर तो नहीं। मगर सांप पर लाठी नहीं असर करती; जाकर किसी को भेजूं, किसी के घर से भाला लाये।

यह कहकर मुंशीजी लपके हुए बाहर चले गए। मंसाराम खाना खा रहा

था। मुंशीजी तो बाहर गये, उधर वह खाना खाकर अपनी हाकी का डंडा हाथ में ले, कमरे में घुस ही तो पड़ा और तुरन्त चारपाई खींच ली। सांप मस्त था, भागने के बदले फन निकालकर खड़ा हो गया। मंसाराम ने चटपट चारपाई की चादर उठाकर सांप के ऊपर फेंक दी और ताबड़तोड़ तीन-चार डण्डे कसकर जमाए। सांप चादर के अन्दर तड़पकर रह गया। तब उसे डंडे पर उठाए बाहर चला। मुंशीजी कई आदमियों को साथ लिये चले आ रहे थे। मंसाराम को सांप लटकाए आते देखा, तो सहसा उनके मुख से चीख निकल पड़ी। मगर फिर संभल गए और बोले—मैं तो आ ही रहा था, तुमने क्यों जल्दी की ? दे दो, कोई फेंक आये।

यह कहकर बहादुरी के साथ रुक्मिणी के कमरे के द्वार पर आकर खड़े हो गए और कमरे को खूब देखभालकर मूंछों पर ताव देते हुए निर्मला के पास जाकर बोले—मैं जब तक आऊं-आऊं, मंसाराम ने मार डाला ! बेसमझ लड़का डंडा लेकर दौड़ पड़ा। सांप को हमेशा भाले से मारना चाहिए। यही तो लड़के में ऐब है। मैंने ऐसे-ऐसे कितने सांप मारे हैं। सांप खिला-खिलाकर मारता हूं। कितनों ही को मुट्ठी से पकड़कर मसल दिया है।

रुक्मिणी ने कहा—जाओ भी, देख ली तुम्हारी मर्दानगी।

मुंशीजी झेंपकर बोले—अच्छा जाओ, मैं डरपोक ही सही ! तुमसे कुछ इनाम तो नहीं मांग रहा हूं। जाकर महाराज से कहो, खाना निकाले।

मुंशीजी तो भोजन करने गये और निर्मला द्वार की चौखट पर खड़ी सोच रही थी—भगवान क्या इन्हें सचमुच कोई भीषण रोग हो रहा है ? क्या मेरी दशा को और भी दारुण बनाना चाहते हो ? मैं इनकी सेवा कर सकती हूं, अपना जीवन इनके चरणों पर अर्पण कर सकती हूं, लेकिन वह नहीं कर सकती, जो मेरे किए नहीं हो सकता। अवस्था का भेद मिटाना मेरे बस की बात नहीं। आखिर यह मुझसे क्या चाहते हैं ?—समझ गई। आह ! यह बात पहले ही नहीं समझी थी, नहीं तो इनको क्या इतनी तपस्या करनी पड़ती, क्यों इतने स्वांग भरने पड़ते ?

सात

उस दिन से निर्मला का रंग-ढंग बदलने लगा। उसने अपने को कर्त्तव्य पर मिटा देने का निश्चय कर लिया। अब तक नैराश्य के संताप में उसने कर्त्तव्य पर ध्यान ही नहीं दिया था। उसके हृदय में विप्लव की ज्वाला-सी दहकती रहती थी, जिसकी असह्य वेदना ने उसे संज्ञाहीन-सा कर रखा था।

अब उस वेदना का वेग शांत होने लगा। उसे ज्ञात हुआ कि मेरे जीवन में कोई आनन्द नहीं। उसका स्वप्न देखकर क्यों इस जीवन को नष्ट करूं ? संसार के सब-के-सब प्राणी सुख-सेज पर ही तो नहीं सोते। मैं भी उन्हीं अभागों में हूं। मुझे भी विधाता ने दुःख की गठरी ढोने के लिए चुना है। वह बोझ सिर से उतर नहीं सकता। उसे फेंकना भी चाहूं तो नहीं फेंक सकती। उस कठिन भार से चाहे आंखों में अंधेरा आ जाय, चाहे गर्दन टूटने लगे, चाहे पैर उठाना दुस्तर हो जाय, लेकिन गठरी ढोनी पड़ेगी। उम्र-भर का कैदी कहां रोएगा ? रोए भी तो कौन देखता है ? किसे उस पर दया आती है ? रोने से काम में हर्ज होने के कारण उसे और यातनाएं ही तो सहनी पड़ती हैं।

दूसरे दिन वकील साहब कचहरी से आये तो देखा, निर्मला की सहास्य मूर्ति अपने कमरे के द्वार पर खड़ी है। यह अनिंद्य छवि देखकर उनकी आंखें तृप्त हो गयीं। आज बहुत दिनों के बाद उन्हें यह कमल खिला दिखाई दिया। कमरे में एक बड़ा-सा आईना दीवार से लटका हुआ था। आज उसका परदा उठा हुआ था। वकील साहब ने कदम रखा, तो शीशे पर निगाह पड़ी। अपनी सूरत साथ-साथ दिखाई दी। उनके हृदय से चोट-सी लग गई। दिन-भर के परिश्रम से मुख की कांति मलिन हो गई थी। भांति-भांति के पौष्टिक पदार्थ खाने पर भी गालों की झुर्रियां साफ दिखाई दे रही थीं। तोंद कसी होने पर भी किसी मुंहजोर घोड़े की भांति बाहर निकली हुई थी। आईने के सामने, किन्तु दूसरी ओर झांकती हुई निर्मला भी खड़ी थी। दोनों सूरतों में कितना अन्तर था! एक रत्न-जटित विशाल भवन था, दूसरा टूटा-फूटा खंडहर। वह उस आईने की ओर और न देख सके। अपनी वह हीनावस्था उनके लिए असह्य थी। वह आईने के सामने से हट गए, उन्हें अपनी ही सूरत से घृणा होने लगी।

फिर इस रूपवती कामिनी का उनसे घृणा करना कोई आश्चर्य की बात न थी। निर्मला की ओर ताकने का भी उन्हें साहस न हुआ। उसकी यह अनुपम छवि उनके हृदय का शूल बन गई।

निर्मला ने कहा—आज इतनी देर कहां लगायी ? दिन-भर राह देखते-देखते आंखें फूट जाती हैं।

तोताराम ने खिड़की की ओर ताकते हुए जवाब दिया—मुकदमे के मारे दम मारने की छुट्टी नहीं मिलती। अभी एक मुकदमा और था लेकिन मैं सिर-दर्द का बहाना करके भाग खड़ा हुआ।

निर्मला—तो क्यों इतने मुकदमे लेते हो ? काम उतना ही करना चाहिए, जितना आराम से हो सके। प्राण देकर थोड़े ही काम किया जाता है। मत लिया करो मुकदमे, मुझे रुपयों का लालच नहीं। तुम आराम से रहोगे तो रुपये बहुत मिलेंगे।

तोताराम—भाई, आती हुई लक्ष्मी तो नहीं ठुकराई जाती।

निर्मला—लक्ष्मी अगर रक्त और मांस की भेंट लेकर आती है तो उसका न आना ही अच्छा है। मैं धन की भूखी नहीं हूं।

इसी वक्त मंसाराम भी स्कूल से लौटा। धूप में चलने के कारण मुख पर पसीने की बूंदें आयी हुई थीं, गोरे मुखड़े पर खून की लाली दौड़ रही थी। आंखों से ज्योति-सी निकलती मालूम होती थी। द्वार पर खड़ा होकर बोला—अम्माजी, लाइए, कुछ खाने को निकालिए, जरा खेलने जाना है।

निर्मला जाकर गिलास में पानी लायी और एक तश्तरी में कुछ मेवे रखकर मंसाराम को दिये। मंसाराम जब खाकर चलने लगा, तो निर्मला ने पूछा—कब तक आओगे ?

मंसाराम—कह नहीं सकता, गोरों के साथ हाकी का मैच है। बारक यहां से बहुत दूर है।

निर्मला—भई, जल्द आना। खाना ठण्डा हो जाएगा तो कहोगे, मुझे भूख नहीं है।

मंसाराम ने निर्मला की ओर सरल स्नेह-भाव से देखकर कहा—मुझे देर हो जाय तो समझ लीजिएगा, वहीं खा रहा हूं। मेरे लिए बैठने की जरूरत नहीं।

वह चला गया, तो निर्मला बोली—पहले तो घर में आते ही न थे, मुझसे बोलते शर्माते थे । किसी चीज की जरूरत होती, तो बाहर ही से मंगवा भेजते । जब से मैंने बुलाकर कहा, तब से आने लगे ।

तोताराम ने कुछ चिढ़कर कहा—यह तुम्हारे पास खाने-पीने की चीजें क्यों मांगने आता है ? दीदी से क्यों नहीं कहता ?

निर्मला ने यह बात प्रशंसा पाने के लोभ से कही थी । वह यह दिखाना चाहती थी कि मैं तुम्हारे लड़कों को कितना चाहती हूं । यह कोई बनावटी प्रेम न था । उसे लड़कों से सचमुच स्नेह था । उसके चरित्र में अभी तक बाल-भाव ही प्रधान था । उसमें वही उत्सुकता, वही चंचलता, वही विनोदप्रियता विद्यमान थी और बालकों के साथ उसकी ये बाल-वृत्तियां प्रस्फुटित होती थीं । पत्नी-सुलभ ईर्ष्या अभी तक उसके मन में उदय नहीं हुई थी; लेकिन पति के प्रसन्न होने के बदले नाक-भौं सिकोड़ने का आशय न समझकर बोली—मैं क्या जानूं, उनसे क्यों नहीं मांगते । मेरे पास आते हैं, तो दुतकार नहीं देती । मगर ऐसा करूं, तो यही होगा कि यह तो लड़कों को देखकर जलती है ।

मुंशीजी ने इसका कुछ जवाब न दिया, लेकिन आज उन्होंने मुवक्किलों से बातें नहीं कीं । मंसाराम के पास गये और उसका इम्तिहान लेने लगे । यह जीवन में पहला ही अवसर था, जबकि उन्होंने मंसाराम या और किसी लड़के की शिक्षोन्नति के विषय में इतनी दिलचस्पी दिखलाई हो । उन्हें अपने काम से सिर उठाने की फुरसत ही नहीं मिलती थी । उन्हें उन विषयों को पढ़े हुए चालीस वर्ष के लगभग हो गये थे । तब से उनकी ओर आंखें तक न उठायी थीं । वह कानूनी पुस्तकों और पत्रों के सिवा और कुछ पढ़ते ही न थे । इसका समय ही न मिलता । पर आज उन्हीं विषयों में वह मंसाराम की परीक्षा लेने गये । मंसाराम जहीन था और इसके साथ मेहनती था । खेल में बी टीम का कैप्टन होने पर भी वह क्लास में प्रथम रहता था । जिस पाठ को एक बार देख लेता, पत्थर की लकीर हो जाती थी । मुंशीजी को उतावली में ऐसे मार्मिक प्रश्न तो सूझे ही नहीं, जिनके उत्तर देने में चतुर लड़के को भी कुछ सोचना पड़ता और ऊपरी प्रश्नों को मंसाराम ने चुटकियों में उड़ा दिया ।

कोई सिपाही अपने शत्रु पर वार खाली जाते देख, जैसे झल्ला-झल्लाकर और भी तेजी से वार करता है, उसी भांति मंसाराम के जवाबों को सुन-सुनकर वकील साहब भी झल्लाते थे। वह कोई ऐसा प्रश्न करना चाहते थे जिसका जवाब मंसाराम से न बन पड़े। देखना चाहते थे कि इसका कमजोर पहलू कहां है। यह देख अब उन्हें सन्तोष न हो सकता था कि वह क्या करता है। वह यह देखना चाहते थे कि वह क्या नहीं कर सकता। कोई अभ्यस्त परीक्षक मंसाराम की कमजोरियों को आसानी से दिखा देता। पर वकील साहब अपनी आधी शताब्दी की भूली हुई शिक्षा के आधार पर उतने सफल कैसे होते ? अन्त में उन्हें जब गुस्सा उतारने के लिए कोई बहाना न मिला, तो बोले—मैं देखता हूं, तुम सारे दिन मटरगश्ती किया करते हो। मैं तुम्हारे चरित्र को तुम्हारी बुद्धि से बढ़कर समझता हूं। और तुम्हारा यों आवारा घूमना मुझे गवारा नहीं हो सकता।

मंसाराम ने निर्भीकता से कहा—मैं शाम को एक घंटा खेलने के लिए जाने के सिवा दिन-भर कहीं नहीं जाता। आप अम्मा या बुआजी से पूछ लें। मुझे खुद इस तरह घूमना पसन्द नहीं। हां, खेलने के लिए हेडमास्टर साहब आग्रह करके बुलाते हैं, मजबूरन जाना पड़ता है। अगर आपको मेरा खेलने जाना पसन्द नहीं है, तो कल से न जाऊंगा।

मुंशीजी ने देखा कि बातें दूसरे ही रुख पर जा रही हैं, तो तीव्र स्वर से बोले—मुझे इस बात का इत्मीनान क्योंकर हो कि खेलने के सिवा कहीं नहीं घूमने जाते ? मैं बराबर शिकायत सुनता हूं।

मंसाराम ने उत्तेजित होकर कहा—किन महाशय ने आपसे यह शिकायत की है, जरा मैं भी सुनूं ?

वकील—कोई हो, इससे तुम्हें कोई मतलब नहीं। तुम्हें इतना विश्वास होना चाहिए कि मैं झूठा आक्षेप नहीं करता।

मंसाराम—अगर मेरे सामने आकर कोई कह दे कि मैंने इन्हें घूमते देखा है, तो मुंह न दिखाऊं।

वकील—किसी को ऐसी क्या गरज पड़ी है कि तुम्हारे मुंह पर तुम्हारी शिकायत करे और तुमसे बैर मोल ले और तुम अपने दो-चार साथियों को लेकर उसके घर की खपरैल फोड़ते फिरो। मुझसे इस किस्म की शिकायत

एक आदमी ने नहीं, कई आदमियों ने की है और कोई वजह नहीं है कि मैं अपने दोस्तों की बात का विश्वास न करूं। मैं चाहता हूं कि तुम स्कूल में ही रहा करो।

मंसाराम ने मुंह गिराकर कहा—मुझे वहां रहने में कोई आपत्ति नहीं है। जब से कहिए चला जाऊं।

वकील—तुमने मुंह क्यों लटका लिया, क्या वहां रहना अच्छा नहीं लगता ? ऐसा मालूम होता है, मानो वहां के भय से तुम्हारी नानी मरी जा रही है। आखिर बात क्या है, वहां तुम्हें क्या तकलीफ होगी ?

मंसाराम छात्रालय में रहने के लिए उत्सुक नहीं था; लेकिन जब वकील साहब ने यही बात कह दी और इसका कारण पूछा, तो वह अपनी झेंप मिटाने के लिए प्रसन्नचित्त होकर बोला—मुंह क्यों लटकाऊं ? मेरे लिए जैसे घर वैसे बोर्डिंग-हाउस। तकलीफ भी कोई नहीं, और हो भी तो उसे सह सकता हूं। मैं कल से चला जाऊंगा। हां, अगर जगह खाली न हुई, तो मजबूरी है।

तोताराम वकील थे। समझ गये कि अब यह लौंडा कोई बहाना ढूंढ़ रहा है, जिससे वहां जाना भी न पड़े और कोई इल्जाम भी सिर पर न आये। बोले—सब लड़कों के लिए जगह है, तुम्हारे लिए जगह न होगी।

मंसाराम—कितने ही लड़कों को जगह नहीं मिली और बहुत-से बाहर किराये के मकानों में पड़े हुए हैं। अभी तक बोर्डिंग-हाउस से एक लड़के का नाम कट गया था, तो पचास अर्जियां उस जगह के लिए आयी थीं।

वकील साहब ने ज्यादा तर्क-वितर्क करना उचित न समझा। मंसाराम को कल तैयार रहने की आज्ञा देकर अपनी बग्घी तैयार करायी और सैर करने चले गये। इधर कुछ दिनों से वह शाम को प्रायः सैर करने चले जाया करते थे। किसी अनुभवी प्राणी ने बतलाया था कि दीर्घ जीवन के लिए इससे बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। उनके जाने के बाद मंसाराम आकर रुक्मिणी से बोला—बुआजी, बाबूजी ने मुझे कल से स्कूल में ही रहने को कहा है।

रुक्मिणी ने विस्मित होकर पूछा—क्यों ?

मंसाराम—मैं क्या जानूं ? कहने लगे कि तुम यहां आवारों की तरह इधर-उधर फिरा करते हो।

रुक्मिणी—तूने कहा नहीं कि मैं कहीं नहीं जाता ?

मंसाराम—कहा क्यों नहीं, मगर जब वह मानें भी ।

रुक्मिणी—तुम्हारी नई अम्माजी की कृपा होगी, और क्या ?

मंसाराम—नहीं बुआजी, मुझे उन पर सन्देह नहीं है । वह बेचारी तो भूल से भी कभी कुछ नहीं कहतीं । कोई चीज मांगने जाता हूं, तो तुरन्त उठकर देती हैं ।

रुक्मिणी—तू यह त्रिया-चरित्र क्या जाने ! यह उन्हीं की लगाई गई आग है । देख, मैं जाकर पूछती हूं ।

रुक्मिणी झल्लायी हुई निर्मला के पास पहुंचीं । उसे आड़े हाथों लेने का, कांटों में घसीटने का, रुलाने का सुअवसर वह हाथ से न जाने देती थीं । निर्मला उनका आदर करती थी । उनसे दबती थी, उनकी बातों का जवाब तक न देती थी । वह चाहती थी कि वह मुझे सिखावन की बातें कहें; मैं भूलूं, वहां सुधारें; वह कामों की देखरेख करती रहें । पर रुक्मिणी उससे तनी ही रहती थीं ।

निर्मला चारपाई से उठकर बोली—आइए, दीदी, बैठिए ।

रुक्मिणी ने खड़े-खड़े कहा—मैं पूछती हूं, क्या तुम सबको घर से निकालकर अकेली ही रहना चाहती हो ?

निर्मला ने कातर भाव से कहा—क्या हुआ, दीदीजी ? मैंने तो किसी से कुछ नहीं कहा ?

रुक्मिणी—मंसाराम को घर से निकाले देती हो, तिस पर कहती हो, मैंने तो कुछ नहीं कहा ! क्या तुमसे इतना भी नहीं देखा जाता ?

निर्मला—दीदीजी, तुम्हारे चरणों को छूकर कहती हूं, मुझे कुछ नहीं मालूम । मेरी आंखें फूट जाएं, अगर मैंने उसके विषय में मुंह तक खोला हो ।

रुक्मिणी—क्यों व्यर्थ कसमें खाती हो ? अब तक तोताराम कभी लड़के से नहीं बोलते थे । एक हफ्ते के लिए मंसाराम ननिहाल चला गया था, तो इतना घबराए कि खुद जाकर लिवा लाये । अब उसी मंसाराम को घर से निकालकर स्कूल में रखे देते हैं । अगर लड़के का बाल भी बांका हुआ, तो तुम जानोगी । वह कभी बाहर नहीं रहा । उसे न खाने की सुध रहती है, न पहनने की । जहां बैठा, वहीं सो जाता है । कहने को तो जवान हो गया, पर स्वभाव

बालकों-सा है। स्कूल में तो उसका मरन हो जाएगा। वहां किसे फिक्र है कि उसने खाया या नहीं, कहां कपड़े उतारे, कहां सो रहा। जब घर में कोई पूछनेवाला नहीं तो बाहर कौन पूछेगा? मैंने तुम्हें चेता दिया, आगे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

यह कहकर रुक्मिणी वहां से चली गयीं।

वकील साहब सैर करके लौटे तो निर्मला ने तुरन्त यह विषय छेड़ दिया। मंसाराम से वह आजकल थोड़ी देर अंग्रेजी पढ़ती थी। उसके चले जाने पर फिर पढ़ने का हरज न होगा? दूसरा कौन पढ़ाएगा? वकील साहब को अब तक यह बात मालूम न थी। निर्मला ने सोचा था कि जब कुछ अभ्यास हो जाएगा, तो वकील साहब को एक दिन अंग्रेजी में बातें करके चकित कर दूंगी। कुछ थोड़ा-सा ज्ञान तो उसे अपने भाइयों से हो गया था। अब वह नियमित रूप से पढ़ रही थी। वकील साहब की छाती पर सांप लोट गया, त्यौरियां बदलकर बोले—वो कब से पढ़ा रहा है तुम्हें? मुझसे तुमने कभी नहीं कहा।

निर्मला ने उनका यह रूप केवल एक बार देखा था, जब उन्होंने सियाराम को मारते-मारते बेदम कर दिया था। वही रूप और विकराल बनकर आज उसे फिर दिखाई दिया। सहमती हुई बोली—उनके पढ़ने में तो इससे कोई हरज नहीं होता। मैं उसी वक्त उनसे पढ़ती हूं, जब उन्हें फुरसत रहती है। पूछ लेती हूं कि तुम्हारा हरज हो तो जाओ। बहुधा जब वह खेलने जाने लगते हैं, तो दस मिनट के लिए रोक लेती हूं। मैं खुद चाहती हूं कि उनका नुकसान न हो।

बात कुछ न थी, मगर वकील साहब हताश होकर चारपाई पर गिर पड़े और माथे पर हाथ रखकर चिन्ता में मग्न हो गये। उन्होंने जितना समझा था बात उससे कहीं अधिक बढ़ गयी थी। उन्हें अपने ऊपर क्रोध आया कि मैंने पहले ही क्यों न इस लौंडे को बाहर रखने का प्रबन्ध किया। आजकल जो यह महारानी इतनी खुश दिखाई देती हैं, इसका रहस्य अब समझ में आया। पहले कभी इतनी सजी-सजायी न रहती थीं, बनाव-चुनाव भी न करती थीं, पर अब देखता हूं, कायापलट-सी हो गई है। जी में तो आया कि इसी वक्त चलकर मंसाराम को निकाल दें, लेकिन प्रौढ़ बुद्धि ने समझाया कि इस अवसर पर क्रोध की जरूरत नहीं। कहीं इसने भांप लिया, तो गजब ही हो जाएगा। हां,

जरा इसके मनोभावों को टटोलना चाहिए। बोले—यह तो मैं जानता हूं कि तुम्हें दो-चार मिनट पढ़ाने से उसका कोई हरज नहीं होता; लेकिन आवारा लड़का है, अपना काम न करने का उसे एक बहाना तो मिल जाता है। कल अगर फेल हो गया, तो साफ कह देगा—मैं तो दिन-भर पढ़ाता रहता था। मैं तुम्हारे लिए कोई मिस नौकर रख दूंगा। कुछ ज्यादा खर्च न होगा। तुमने मुझसे पहले कहा ही नहीं। वह तुम्हें भला क्या पढ़ाता होगा? दो-चार शब्द बताकर भाग जाता होगा। इस तरह तुम्हें कुछ भी न आएगा।

निर्मला ने तुरन्त इस आक्षेप का खण्डन किया—नहीं, यह बात तो नहीं, वह मुझे दिल लगाकर पढ़ाते हैं, और उनकी शैली भी ऐसी है कि पढ़ने में मन लगता है। आप एक दिन जरा उनका समझाना देखिए। मैं तो समझती हूं कि मिस इतने ध्यान से न पढ़ाएगी।

वकील साहब अपनी प्रश्न-कुशलता पर मूंछों पर ताव देते हुए बोले—दिन में एक ही बार पढ़ाता है या कई बार?

निर्मला अब भी प्रश्नों का आशय न समझी। बोली—पहले तो शाम ही को पढ़ा देते थे, अब कई दिनों से एक बार आकर लिखना भी देख लेते हैं। यह तो कहते हैं कि मैं अपने क्लास में सबसे अच्छा हूं। अभी परीक्षा में इन्हीं को प्रथम स्थान मिला था, फिर आप कैसे समझते हैं कि उनका पढ़ने में जी नहीं लगता? मैं इसलिए और भी कहती हूं कि दीदी समझेंगी इसी ने यह आग लगायी है। मुफ्त में मुझे यह ताने सुनने पड़ेंगे। अभी जरा ही देर हुई, धमकाकर गयी हैं।

मुंशीजी ने दिल में कहा, खूब समझता हूं? तुम कल की छोकरी होकर मुझे चराने चली? दीदी का सहारा लेकर अपना मतलब पूरा करना चाहती है। बोले—मैं नहीं समझता, बोर्डिंग का नाम सुनकर क्यों लौंडे की नानी मरती है। और लड़के खुश होते हैं कि अपने दोस्तों में रहेंगे, यह उल्टे रो रहा है। अभी कुछ दिन पहले तक यह दिल लगाकर पढ़ता था। यह उसी मेहनत का नतीजा है कि अपने क्लास में सबसे अच्छा है, लेकिन इधर कुछ दिनों से सैर-सपाटे का चस्का पड़ चला है। अगर अभी से रोक-थाम न की गई, तो पीछे करते-धरते न बन पड़ेगा। तुम्हारे लिए मैं मिस रख दूंगा।

दूसरे दिन मुंशीजी प्रातःकाल कपड़े-लत्ते पहनकर बाहर निकले।

दीवानखाने में कई मुवक्किल बैठे हुए थे। इनमें एक राजा साहब भी थे जिनसे मुंशीजी को कोई हजार सालाना मिलता था। मगर मुंशीजी उन्हें वहीं छोड़कर दस मिनट में आने का वायदा करके बग्घी पर बैठकर स्कूल के हेडमास्टर के यहां जा पहुंचे। हेडमास्टर साहब बड़े सज्जन पुरुष थे। वकील साहब का बहुत आदर-सत्कार किया, पर उनके यहां एक लड़के की जगह खाली न थी। सभी कमरे भरे हुए थे। इंस्पेक्टर साहब की कड़ी ताकीद थी कि मुफस्सिल के लड़कों को जगह देकर तब शहर के लड़कों को लिया जाय। इसलिए कोई जगह खाली भी हुई तो भी मंसाराम को जगह न मिल सकेगी; क्योंकि कितने ही बाहरी लड़कों के प्रार्थना-पत्र रखे हुए थे। मुंशीजी वकील थे, रात-दिन ऐसे प्राणियों से साबिका रहता, जो लोभवश असंभव को भी संभव, असाध्य को साध्य बना सकते हैं। समझे शायद कुछ दे-दिलाकर काम निकल जाय—दफ्तर के क्लर्क से ढंग की कुछ बातचीत करना चाहिए, पर उसने हंसकर कहा—मुंशीजी, यह कचहरी नहीं, स्कूल है। हेडमास्टर साहब के कानों में इसकी भनक भी पड़ गयी, तो जामे से बाहर हो जाएंगे और मंसाराम को खड़े-खड़े निकाल देंगे। सम्भव है, अफसरों से शिकायत कर दें। बेचारे मुंशीजी अपना-सा मुंह लेकर रह गये। दस बजते-बजते झुंझलाते हुए घर लौटे। मंसाराम उसी वक्त घर से स्कूल जाने को निकला। मुंशीजी ने कठोर नेत्रों से उसे देखा, मानो वह उनका शत्रु हो और घर में चले गये।

इसके बाद दस-बारह दिनों तक वकील साहब का यही नियम रहा कि कभी सुबह, कभी शाम, किसी-न-किसी स्कूल के हेडमास्टर से मिलने और मंसाराम को बोर्डिंग हाउस में दाखिल कराने की चेष्टा करते, पर किसी स्कूल में जगह न थी। सभी जगहों से कोरा जवाब मिल गया। अब दो ही उपाय थे—या तो मंसाराम को अलग किराये के मकान में रख दिया जाय, या किसी दूसरे स्कूल में भर्ती करा दिया जाय। यह दोनों ही बातें आसान थीं। मुफस्सिल के स्कूल में जगह अक्सर खाली रहती थी, लेकिन अब मुंशीजी का शंकित हृदय कुछ शांत हो गया था। उस दिन से उन्होंने मंसाराम को कभी घर से जाते न देखा। यहां तक कि वह खेलने भी न जाता था। स्कूल जाने के पहले और आने के बाद बराबर अपने कमरे में बैठा रहता। गर्मी के दिन थे, खुले

हुए मैदान में भी देह से पसीने की धारें निकलती थीं, लेकिन मंसाराम अपने कमरे से बाहर न निकलता। उसका आत्माभिमान आवारापन के आक्षेप से मुक्त हो जाने के लिए विकल हो रहा था। वह अपने आचरण से इस कलंक को मिटा देना चाहता था।

एक दिन मुंशीजी बैठे भोजन कर रहे थे कि मंसाराम भी नहाकर खाने आया। मुंशीजी ने इधर उसे महीनों से नंगे बदन न देखा था। आज उस पर निगाह पड़ी, तो होश उड़ गए। हड्डियों का ढांचा सामने खड़ा था। मुख पर अब भी ब्रह्मचर्य का तेज था, पर देह घुलकर कांटा हो गई थी। पूछा—आजकल तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है क्या ? इतने दुबले क्यों हो ?

मंसाराम ने धोती ओढ़कर कहा—तबीयत तो बिलकुल अच्छी है।

मुंशीजी—फिर दुबले क्यों हो ?

मंसाराम—दुबला तो नहीं हूं। मैं इससे ज्यादा मोटा कब था ?

मुंशीजी—वाह, आधी देह भी नहीं रही और कहते हो, मैं दुर्बल नहीं हूं। क्यों दीदी, यह ऐसा ही था ?

रुक्मिणी आंगन में खड़ी तुलसी को जल चढ़ा रही थीं। बोलीं—दुबला क्यों होगा, अब तो बड़ी अच्छी तरह लालन-पालन हो रहा है। मैं गंवारिन थी, लड़कों को खिलाना-पिलाना नहीं जानती थी। खोमचा खिला-खिलाकर इनकी आदत बिगाड़ देती थी। अब तो एक पढ़ी-लिखी, गृहस्थी के कामों में चतुर औरत पान की तरह फेर रही है न ! दुबला हो उसका दुश्मन !

मुंशीजी—दीदी, तुम बहुत अन्याय करती हो। तुमसे किसने कहा कि लड़कों को बिगाड़ रही हो। जो काम दूसरे के किए न हो सके, वह तुम्हें खुद करना चाहिए। यह नहीं कि घर से कोई नाता न रखो। जो अभी खुद लड़की है, दूसरों की देख-भाल क्या करेगी ? यह तुम्हारा काम है।

रुक्मिणी—जब तक अपना समझती थी, करती थी। जब तुमने गैर समझ लिया, तो मुझे क्या पड़ी है कि तुम्हारे गले से चिपटूं ? पूछो कै दिन से दूध नहीं पिया ? जाकर कमरे में देख आओ, नाश्ते के लिए जो मिठाई भेजी गई थी, वह पड़ी सड़ रही है ! मालकिन समझती है, मैंने तो खाने का सामान रख दिया, कोई न खाए तो क्या मैं मुंह में डाल दूं ? तो भैया, इस तरह वे लड़के पलते होंगे, जिन्होंने कभी लाड़-प्यार का सुख नहीं देखा। तुम्हारे लड़के

बराबर पान की तरह फेरे जाते रहे हैं, अब अनाथों की तरह सुखी नहीं रह सकते। मैं तो बात साफ करती हूं। बुरा मानकर ही कोई क्या कर लेगा! उस पर सुनती हूं कि लड़के को स्कूल में रखने का प्रबन्ध कर रहे हो। बेचारे को घर में आने तक की मनाही है। मेरे पास आते भी डरता है और फिर मेरे पास रखा ही क्या रहता है, जो जाकर खिलाऊंगी?

इतने में मंसाराम दो फुलके खाकर उठ खड़ा हुआ। मुंशीजी ने पूछा—क्या तुम खा चुके? अभी बैठे एक मिनट से ज्यादा नहीं हुआ। तुमने खाया क्या, दो ही फुलके तो लिये थे।

मंसाराम ने सकुचाते हुए कहा—दाल और तरकारी भी तो थी। ज्यादा खा जाता हूं, तो गला जलने लगता है, खट्टी डकारें आने लगती हैं।

मुंशीजी भोजन करके उठे तो बहुत चिंतित थे। अगर लड़का यों ही दुबला होता गया, तो उसे कोई भयंकर रोग पकड़ लेगा। उन्हें रुक्मिणी पर इस समय बहुत क्रोध आ रहा था। उन्हें यही जलन है कि मैं घर की मालकिन नहीं हूं। यह नहीं समझतीं कि मुझे घर की मालकिन बनने का क्या अधिकार है? जिसे रुपयों का हिसाब तक करना नहीं आता, वह घर की स्वामिनी कैसे बन सकती है? बनी तो थी साल-भर तक मालकिन—एक पाई की भी बचत न होती थी। इस आमदनी में रूपकला दो-ढाई सौ बचा लेती थी। इनके राज्य में वही आमंदनी खर्च को भी पूरी न पड़ती थी। कोई बात नहीं, लाड़-प्यार ने इन लड़कों को चौपट कर दिया। इतने बड़े-बड़े लड़कों को इसकी क्या जरूरत कि जब कोई खिलाए तो खाएं? इन्हें तो खुद अपनी फिक्र करनी चाहिए। मुंशीजी दिन-भर उस उधेड़बुन में पड़े रहे। दो-चार मित्रों से जिक्र किया। लोगों ने कहा—उसके खेल-कूद में बाधा न डालिए। अभी से उसे कैद न कीजिए। खुली हवा में चरित्र के भ्रष्ट होने की उससे कहीं कम संभावना है, जितनी बन्द कमरे में। कुसंगत से जरूर बचाइए, मगर यह नहीं कि उसे घर से निकलने ही न दीजिए। युवावस्था में एकान्तवास चरित्र के लिए बहुत ही हानिकारक है।

मुंशीजी को अपनी गलती मालूम हुई। घर लौटकर मंसाराम के पास गये। वह अभी स्कूल से आया था और बिना कपड़े उतारे एक किताब खोलकर, सामने खिड़की की ओर ताक रहा था। उसकी दृष्टि एक भिखारिन

पर लगी हुई थी, जो अपने बालक को गोद में लिये भिक्षा मांग रही थी। बालक माता की गोद में बैठा हुआ प्रसन्न था, मानो वह किसी राजसिंहासन पर बैठा हो। मंसाराम उस बालक को देखकर रो पड़ा। यह बालक क्या मुझसे अधिक सुखी नहीं है? इस अनन्त विश्व में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसे वह गोद के बदले में पाकर प्रसन्न हो? ईश्वर भी ऐसी वस्तु की सृष्टि नहीं कर सकते। ईश्वर, ऐसे बालकों को जन्म ही क्यों देते हो, जिनके भाग्य में मातृवियोग का दुःख भोगना बदा हो? आज मुझ-सा अभागा संसार में कोई है? किसे मेरे खाने-पीने की, मरने-जीने की सुध है। अगर आज मैं मर भी जाऊं, तो किसके दिल को चोट लगेगी? पिता को अब मुझे रुलाने में मजा आता है, वह मेरी सूरत भी नहीं देखना चाहते। मुझे घर से निकाल देने की तैयारियां हो रही हैं। आह माता! तुम्हारा लाडला बेटा आज आवारा कहा जा रहा है! वही पिताजी, जिनके हाथों में तुमने हम तीनों भाइयों के हाथ पकड़ाए थे, आज मुझे आवारा और बदमाश कह रहे हैं। मैं इस योग्य भी नहीं कि इस घर में रह सकूं? यह सोचते-सोचते अपार वेदना से फूट-फूटकर रोने लगा।

उसी समय तोताराम कमरे में आकर खड़े हो गए। मंसाराम ने चट-पट आंसू पोंछ डाले और सिर झुकाकर खड़ा हो गया। मुंशीजी ने शायद यह पहली बार उसके कमरे में कदम रखा था। मंसाराम का दिल धड़-धड़ करने लगा कि देखें आज क्या आफत आती है। मुंशीजी ने उसे रोते देखा, तो एक क्षण के लिए उनका वात्सल्य घोर निद्रा से चौंक पड़ा। घबराकर बोले—क्यों, रोते क्यों हो बेटा, किसी ने कुछ कहा है?

मंसाराम ने बड़ी मुश्किल से उमड़ते हुए आंसुओं को रोककर कहा—जी नहीं, रोता नहीं हूं।

मुंशीजी—तुम्हारी अम्मा ने तो कुछ नहीं कहा?

मंसाराम—जी नहीं, वह तो मुझसे बोलतीं ही नहीं।

मुंशीजी—क्या करूं बेटा, शादी तो इसीलिए की थी कि बच्चों को मां मिल जायगी, लेकिन यह आशा पूरी नहीं हुई। तो क्या बिलकुल नहीं बोलतीं?

मंसाराम—जी नहीं, इधर महीनों से नहीं बोलीं।

मुंशीजी—विचित्र स्वभाव की औरत है, मालूम नहीं होता कि क्या चाहती है। मैं जानता कि उसका ऐसा मिजाज होगा, तो कभी शादी न करता। रोज एक-न-एक बात लेकर उठ खड़ी होती है। उसी ने मुझसे कहा था कि यह दिन-भर न जाने कहां गायब रहता है। मैं उसके दिल की बात क्या जानता था ? समझा तुम कुसंगत में पड़कर शायद दिन-भर घूमा करते हो। कौन ऐसा पिता है, जिसे अपने प्यारे पुत्र को आवारा फिरते देखकर रंज न हो ? इसीलिए मैंने तुम्हें बोर्डिंग-हाउस में रखने का निश्चय किया। बस, और कोई बात नहीं थी, बेटा ! मैं तुम्हारा खेलना-कूदना बंद नहीं करना चाहता था। तुम्हारी यह दशा देखकर मेरे दिल के टुकड़े हुए जाते हैं। कल मुझे मालूम हुआ कि मैं भ्रम में था। तुम शौक से खेलो, सुबह-शाम मैदान में निकल जाया करो। ताजी हवा से तुम्हें लाभ होगा। जिस चीज की जरूरत हो, मुझसे कहो। उनसे कहने की जरूरत नहीं। समझ लो कि वह घर में हैं ही नहीं। तुम्हारी माता छोड़कर चली गई, तो मैं तो हूं।

बालक का सरल निष्कपट हृदय पितृप्रेम में पुलकित हो उठा। मालूम हुआ कि साक्षात् भगवान खड़े हैं। नैराश्य और क्षोभ से विकल होकर उसने अपने पिता को निष्ठुर और न जाने क्या-क्या समझ रखा था। विमाता से उसे कोई गिला न था। अब उसे ज्ञात हुआ कि मैंने अपने देवतुल्य पिता के साथ कितना अन्याय किया है। पितृभक्ति की एक तरंग-सी हृदय में उठी और वह पिता के चरणों पर सिर रखकर रोने लगा। मुंशीजी करुणा से विकल हो गए ! जिस पुत्र को एक क्षण-भर आंखों से ओझल देखकर उनका हृदय व्यग्र हो उठता था; जिसके शील, बुद्धि और चरित्र का अपने-पराये सभी बखान करते थे, उसी के प्रति उनका हृदय इतना कठोर क्यों हो गया ? वह अपने ही प्रिय को शत्रु समझने लगे; उसको निर्वासन देने को तैयार हो गए। निर्मला पुत्र और पिता के बीच दीवार बनकर खड़ी थी। निर्मला को अपनी ओर खींचने के लिए पीछे हटना पड़ता था, पिता तथा पुत्र में अन्तर बढ़ता जाता था। फलतः आज यह दशा हो गई है कि अपने अभिन्न पुत्र से उन्हें इतना छल करना पड़ रहा है। आज बहुत सोचने के बाद उन्हें एक ऐसी युक्ति सूझी है, जिससे आशा हो रही है कि वह

निर्मला को बीच से निकालकर अपने दूसरे बाजू को अपनी तरफ कर लेंगे। उन्होंने उस युक्ति का आरंभ कर दिया है। लेकिन इसमें अभीष्ट सिद्ध होगा या नहीं, इसे कौन जानता है?

जिस दिन से तोताराम ने निर्मला के बहुत मिन्नत-समाजत करने पर भी मंसाराम को बोर्डिंग-हाऊस भेजने का निश्चय किया था, उस दिन से उसने मंसाराम से पढ़ना छोड़ दिया था। यहां तक कि बोली भी न थी। उसे स्वामी की अविश्वासपूर्ण तत्परता का कुछ-कुछ आभास हो गया था। उफ्फोह! इतना शक्की मिजाज! ईश्वर ही इस घर में लाज रखे। इनके मन में ऐसी-ऐसी दुर्भावनाएं भरी हुई हैं! मुझे इतनी गयी-गुजरी समझते हैं। ये बातें सोच-सोचकर कई दिनों तक रोती रही। तब उसने सोचना शुरू किया, इन्हें क्यों ऐसा संदेह हो रहा है? मुझमें ऐसी कौन-सी बात है, जो इनकी आंखों में खटकती है? बहुत सोचने पर भी उसे अपने में कोई ऐसी बात नजर न आई। तो क्या उसका मंसाराम से पढ़ना, उससे हंसना-बोलना ही इनके संदेह का कारण है? तो फिर मैं पढ़ना छोड़ दूंगी, भूलकर भी मंसाराम से न बोलूंगी, उसकी सूरत न देखूंगी।

लेकिन यह समस्या उसे असाध्य जान पड़ती थी। मंसाराम के हंसने-बोलने में उसकी विलासिनी कल्पना उत्तेजित भी होती थी, तृप्त भी। उससे बातें करते हुए एक अपार सुख का अनुभव होता था, जिसे वह शब्दों में प्रकट न कर सकती थी। कुवासना की उसके मन में छाया भी न थी। वह स्वप्न में भी मंसाराम से कलुषित प्रेम करने की बात न सोच सकती थी। प्रत्येक प्राणी को अपने हमजोलियों के साथ हंसने-बोलने की जो एक नैसर्गिक तृष्णा होती है, उसी तृप्ति का यह एक अज्ञात साधन था। अब वह अतृप्त तृष्णा निर्मला के हृदय में दीपक की भांति जलने लगी। रह-रहकर उसका मन किसी अज्ञात वेदना से विकल हो जाता। खोयी हुई किसी अज्ञात वस्तु की खोज में इधर-उधर ढूंढ़ती फिरती, जहां बैठी वहां बैठी ही रह जाती; किसी काम में जी न लगता। हां, जब मुंशीजी आते, तो वह अपनी सारी तृष्णाओं को नैराश्य में डुबोकर, उनसे मुसकराकर इधर-उधर की बातें करने लगती।

कल जब मुंशीजी भोजन करके कचहरी चले गये, तो रुक्मिणी ने निर्मला को खूब तानों से छेदा—जानती तो थी कि यहां बच्चों का पालन-पोषण

करना पड़ेगा, तो क्यों घरवालों से नहीं कह दिया कि वहां मेरा विवाह न करो। वहां जाती, जहां पुरुष के सिवा और कोई न होता। वही यह बनाव-चुनाव और छवि देखकर खुश होता; अपने भाग्य को सराहता। यहां बुड्ढा आदमी तुम्हारे रंग-रूप, हाव-भाव पर क्या लट्टू होगा ? इसने इन्हीं बालकों की सेवा करने के लिए तुमसे विवाह किया है, भोग-विलास के लिए नहीं।

वह बड़ी देर तक घाव पर नमक छिड़कती रहीं, पर निर्मला ने चूं तक न की। वह अपनी सफाई तो पेश करना चाहती थी, पर कर न सकती थी। अगर कहे कि मैं वही कर रही हूं, जो मेरे स्वामी की इच्छा है, तो घर का भण्डा फूटता है। अगर वह अपनी भूल स्वीकार करके उसका सुधार करती है, तो भय है कि उसका न जाने क्या परिणाम हो। वह यों बड़ी स्पष्टवादिनी थी, सत्य कहने में उसे संकोच या भय न होता था, लेकिन इस नाजुक मौके पर उसे चुप्पी साधनी पड़ी। इसके सिवाय दूसरा उपाय न था। वह देखती थी कि मंसाराम बहुत विरक्त और उदास रहता है; यह भी देखती थी कि वह दिन-दिन दुर्बल होता जा रहा है; लेकिन उसकी वाणी और कर्म दोनों ही पर मुहर लगी हुई थी। चोर के घर चोरी हो जाने से उसकी जो दशा होती है, वही दशा इस समय निर्मला की हो रही थी।

आठ

जब कोई बात हमारी आशा के विरुद्ध होती है, तभी दुःख होता है। मंसाराम को निर्मला से कभी इस बात की आशा न थी कि वह उसकी शिकायत करेगी। इसलिए उसे घोर वेदना हो रही थी। वह क्यों मेरी शिकायत करती हैं ? क्या चाहती हैं ? यही कि यह मेरे पति की कमाई खाता है, इसके पढ़ने-लिखने में रुपये खर्च होते हैं, कपड़े पहनता है। उनकी यही इच्छा होगी कि यह घर में न रहे। मेरे न रहने से उनके रुपये

बच जायेंगे। वह मुझसे बहुत प्रसन्नचित्त रहती हैं। कभी मैंने उनके मुंह से कटु वचन नहीं सुने। क्या यह सब कौशल है ? हो सकता है। चिड़िया को जाल में फंसाने के पहले शिकारी दाने बिखेरता है ? आह ! मैं नहीं जानता था कि दाने के बीच जाल है, यह मातृस्नेह मेरे निर्वासन की भूमिका है !

अच्छा, मेरा यहां रहना क्यों बुरा लगता है ? जो उनका पति है, क्या वह मेरा पिता नहीं है ? क्या पिता-पुत्र का सम्बन्ध स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध से कुछ कम घनिष्ठ है ? मगर मुझे उनके सम्पूर्ण आधिपत्य से ईर्ष्या नहीं होती—वह जो चाहे करें, मैं मुंह नहीं खोल सकता—तो वह मुझे पितृ-प्रेम से क्यों वंचित करना चाहती हैं ? वह अपने साम्राज्य में क्यों मुझे वृक्ष की छाया में बैठा नहीं देख सकतीं ?

हां, वह समझती होंगी कि यह बड़ा होकर मेरे पति की सम्पत्ति का स्वामी हो जायेगा, इसलिए अभी से निकाल देना अच्छा है। उनको कैसे विश्वास दिलाऊं कि मेरी ओर से यह शंका न करें ? उन्हें क्योंकर बताऊं कि मंसाराम विष खाकर प्राण दे देगा, इसके पहले कि वह उनका अहित करे ! उसे चाहे कितनी ही कठिनाइयां सहनी पड़ें, वह उनके हृदय का शूल न बनेगा। यों तो पिताजी ने मुझे जन्म दिया है, और अब भी मुझ पर उनका स्नेह कम नहीं है; लेकिन क्या मैं इतना भी नहीं जानता कि जिस दिन पिताजी ने उनसे विवाह किया, उसी दिन उन्होंने हमें अपने हृदय से बाहर निकाल दिया ? अब हम अनाथों कि भांति यहां पड़े रह सकते हैं, इस घर पर हमारा कोई अधिकार नहीं है। कदाचित् पूर्व संस्कारों के कारण यहां अन्य अनाथों से हमारी दशा कुछ अच्छी है, पर हैं अनाथ ही। हम उसी दिन अनाथ हुए, जिस दिन अम्माजी परलोक सिधारीं। जो कुछ कसर रह गई थी, वह इस विवाह ने पूरी कर दी। मैं तो खुद पहले इनसे विशेष सम्बन्ध नहीं रखता था। अगर उन्हीं दिनों पिताजी से मेरी शिकायत की होती, तो शायद मुझे इतना दुख न होता। मैं तो उस आघात के लिए तैयार बैठा था। संसार में क्या मैं मजदूरी भी नहीं कर सकता ? लेकिन बुरे वक्त में इन्होंने चोट की। हिंसक पशु आदमी को गाफिल पाकर ही चोट करते हैं, इसलिए मेरी इतनी आवभगत होती थी; खाने-पीने के लिए उठने में जरा भी देर हो जाती थी, तो बुलावे पर बुलावे आते थे, जलपान

के लिए प्रातःकाल ताजा हलुआ बनाया जाता था, बार-बार पूछा जाता था—रुपयों की जरूरत तो नहीं है ? इसीलिए 100 रु. की घड़ी मंगवाई थी।

मगर क्या इन्हें कोई दूसरी शिकायत न सूझी, जो मुझे आवारा कहा ? आखिर उन्होंने मेरी क्या आवारगी देखी ! यह कह सकती थीं कि इसका मन पढ़ने-लिखने में नहीं लगता, एक-न-एक चीज के लिए नित्य रुपये मांगता रहता है। यही एक बात उन्हें क्यों सूझी ? शायद इसीलिए कि यही सबसे कठोर आघात था, जो वह मुझ पर कर सकती थीं। पहली ही बार इन्होंने मुझ पर अग्निबाण चला दिया; जिससे कहीं शरण नहीं। इसीलिए न कि यह पिता की नजरों से गिर जाये ? मुझे बोर्डिंग-हाऊस में रखने का तो एक बहाना था। उद्देश्य यही था कि इसे दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया जाये। दो-चार महीने के बाद खर्च-वर्च देना बंद कर दिया जाये; फिर चाहे मरे या जिए। अगर मैं जानता कि यह प्रेरणा इनकी ओर से हुई है, तो कहीं जगह न रहने पर भी जगह निकाल लेता। नौकरों की कोठरियों में तो जगह मिल जाती, बरामदे में पड़े रहने के लिए बहुत जगह मिल जाती। खैर, अब स्नेह भी नहीं रहा, तो केवल पेट भरने के लिए पड़े रहना बेहयाई है, यह अब मेरा घर नहीं। पिताजी भी मेरे पिता नहीं हैं। मैं उनका पुत्र हूं, पर वह मेरे पिता नहीं हैं। संसार के सारे नाते स्नेह के नाते हैं। जहां स्नेह नहीं, वहां कुछ नहीं। हाय अम्माजी ! तुम कहां हो ?

यह सोचकर मंसाराम रोने लगा। ज्यों-ज्यों मातृस्नेह की पूर्व-स्मृतियां जागृत होती थीं, उसके आंसू उमड़ते आते थे। वह कई बार अम्मा-अम्मा पुकार उठा मानो वह खड़ी सुन रही हों; मातृहीनता के दुःख का आज उसे पहली बार अनुभव हुआ। वह आत्माभिमानी था, साहसी था; पर अब तक सुख की गोद में लालन-पालन होने के कारण वह इस समय अपने को निराधार समझ रहा था।

रात के दस बज गए थे। मुंशीजी आज कहीं दावत खाने गए हुए थे। दो बार महरी मंसाराम को भोजन करने के लिए बुलाने आ चुकी थी। मंसाराम ने पिछली बार उससे झुंझलाकर कह दिया था—मुझे भूख नहीं है, कुछ न खाऊंगा। बार-बार आकर सिर पर सवार हो जाती है। इसलिए जब निर्मला

ने उसे फिर उसी काम के लिए भेजना चाहा, वह न गयी। बोली—बहूजी, वह मेरे बुलाने से न आएंगे।

निर्मला—आएंगे क्यों नहीं ? जाकर कह दे, खाना ठण्डा हुआ जाता है। दो ही चार कौर खा लें।

महरी—मैं यह सब कहके हार गई; नहीं आते।

निर्मला—तूने यह कहा था कि वह बैठी हुई हैं ?

महरी—नहीं बहूजी, यह तो मैंने नहीं कहा; झूठ क्यों बोलू ?

निर्मला—अच्छा, तो जाकर वही कह। कह देना, वह बैठी तुम्हारी राह देख रही हैं। तुम न खाओगे तो वह रसोई उठाकर सो रहेंगी। मेरी भूंगी ! सुन, अबकी और चली जा, (हंसकर) न आयें तो गोद में उठा लाना।

भूंगी नाक-भौं सिकोड़ते गयी, पर क्षण में आकर बोली—अरे बहूजी, वह तो रो रहे हैं। किसी ने कुछ कहा है क्या ?

निर्मला इस तरह चौंककर उठी और दो-तीन पग आगे चली, मानो किसी माता ने अपने बेटे की कुएं में गिर पड़ने की खबर पायी हो। फिर वह ठिठक गई और भूंगी से बोली—रो रहे हैं ? तूने पूछा नहीं क्यों रो रहे हैं ?

भूंगी—नहीं बहूजी, यह तो मैंने नहीं पूछा; झूठ क्यों बोलूं ?

वह रो रहे हैं। इस निस्तब्ध रात्रि में अकेले बैठे वह रो रहे हैं। माता की याद आई होगी। कैसे जाकर उन्हें समझाऊं ? हाय, कैसे समझाऊं ? यहां तो छींकते नाक कटती है। ईश्वर ! तुम साक्षी हो, अगर मैंने उन्हें भूल से भी कुछ कहा हो, तो वह मेरे आगे आये। मैं क्या करूं ? वह दिल में समझते होंगे कि इसी ने पिताजी से मेरी शिकायत की होगी। कैसे विश्वास दिलाऊं कि मैंने कभी तुम्हारे विरुद्ध एक शब्द भी मुंह से नहीं निकाला ? अगर मैं ऐसे देवकुमार के-से चरित्र रखनेवाले युवक का बुरा चेतूं, तो मुझसे बढ़कर राक्षसी संसार में न होगी।

निर्मला देखती थी कि मंसाराम का स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता जाता है, वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता है, उसके मुख की कांति दिन-दिन मलिन होती जाती है, उसका साहसी बदन संकुचित होता जाता है। इसका कारण उससे छिपा न था। पर वह इस विषय में अपने स्वामी से कुछ न कह सकती

थी। यह सब देख-देखकर उसका हृदय विदीर्ण होता रहता था, पर उसकी जबान न खुल सकती थी। वह कभी-कभी मन में झुंझलाती कि मंसाराम क्यों जरा-सी बात पर इतना क्षोभ करता है! क्या इनके आवारा कहने से वह आवारा हो गया? मेरी और बात है—एक जरा-सा शक मेरा सर्वनाश कर सकता है; पर उन्हें ऐसी बातों की इतनी क्या परवाह है?

उसके जी में प्रबल इच्छा हुई कि चलकर उन्हें चुप कराऊं और लाकर खाना खिला दूं। बेचारे रात-भर भूखे पड़े रहेंगे। हाय! मैं इस उपद्रव की जड़ हूं। मेरे आने के पहले इस घर में शान्ति थी। पिता बालकों पर जान देता था, बालक पिता को प्यार करते थे। मेरे आते ही बाधाएं आ खड़ी हुईं! इसका अंत क्या होगा? भगवान ही जाने। भगवान मुझे मौत भी नहीं देते। बेचारा अकेले भूखा पड़ा है। उस वक्त भी मुंह जूठा करके उठ गया था, और उसका आहार ही क्या है—जितना वह खाता है, उतना साल-दो साल के बच्चे खा जाते हैं।

निर्मला चली। पति की इच्छा के विरुद्ध चली। जो नाते में उसका पुत्र होता था, उसी को मनाने जाते उसका हृदय कांप रहा था।

उसने पहले रुक्मिणी के कमरे की ओर देखा। वह भोजन करके बेखबर सो रही थीं। फिर बाहर के कमरे की ओर गयी। वहां भी सन्नाटा था। मुंशीजी अभी न आये थे। यह सब देख-भालकर वह मंसाराम के सामने जा पहुंची। कमरा खुला हुआ था, मंसाराम एक पुस्तक सामने रखे मेज पर सिर झुकाये बैठा हुआ था, मानो शोक और चिन्ता की सजीव मूर्ति हो। निर्मला ने पुकारना चाहा, पर उसके कण्ठ से आवाज न निकली।

सहसा मंसाराम ने सिर उठाकर दीवार की ओर देखा। निर्मला को देखकर अंधेरे में पहचान न सका। चौंककर बोला—कौन?

निर्मला ने कांपते स्वर में कहा—मैं हूं। भोजन करने क्यों नहीं चल रहे हो? कितनी रात बीत गयी।

मंसाराम ने मुंह फेरकर कहा—मुझे भूख नहीं है।

निर्मला—यह तो मैं तीन बार भूंगी से सुन चुकी हूं।

मंसाराम ने व्यंग्य की हंसी हंसकर कहा—बहुत भूख लगेगी, तो आयेगा कहां से?

यह कहते-कहते मंसाराम ने कमरे का द्वार बंद करना चाहा, लेकिन निर्मला किवाड़ों को हटाकर कमरे में चली आयी और मंसाराम का हाथ पकड़कर सजल नेत्रों से विनय मधुर स्वर में बोली—मेरे कहने से चलकर थोड़ा-सा खा लो। तुम न खाओगे, तो मैं भी जाकर सो रहूंगी। दो ही कौर खा लेना। क्या मुझे रात-भर भूखों मारना चाहते हो ?

मंसाराम सोच में पड़ गया। अभी भोजन नहीं किया; मेरे ही इन्तजार में बैठी रहीं। यह स्नेह, वात्सल्य और विनय की देवी हैं या ईर्ष्या और अमंगल की मायाविनी मूर्ति ? उसे अपनी माता का स्मरण हो आया। जब वह रूठ जाता था, तो वह भी इसी तरह मनाने आया करती थीं और जब तक वह न जाता था, वहां से न उठती थीं। वह इस विनय को अस्वीकार न कर सका। बोला—मेरे लिए आपको इतना कष्ट हुआ, इसका मुझे खेद है। मैं जानता कि आप मेरे इन्तजार में भूखी बैठी हैं, तो कभी का खा आया होता।

निर्मला ने तिरस्कार-भाव से कहा—यह तुम कैसे समझ सकते थे कि तुम भूखे रहोगे और मैं खाकर सो रहूंगी ? क्या विमाता का नाता होने से ही ऐसी स्वार्थिनी हो जाऊंगी ?

सहसा मर्दाने कमरे से मुंशीजी के खांसने की आवाज आयी। देखा, मालूम हुआ कि मंसाराम के कमरे की ओर आ रहे हैं। निर्मला के चेहरे का रंग उड़ गया। वह तुरन्त कमरे से निकल गयी और भीतर जाने का मौका न पाकर कठोर स्वर से बोली—मैं लौंडी नहीं हूं कि इतनी रात तक किसी के लिए रसोई के द्वार पर बैठी रहूं! जिसे न खाना हो, पहले ही कह दिया करे।

मुंशीजी ने निर्मला को खड़े देखा। यह अनर्थ ! यह यहां क्या करने आ गई ? बोले—क्या कर रही हो ?

निर्मला ने कर्कश स्वर में कहा—क्या कर रही हूं, अपने भाग्य को रो रही हूं। बस, सारी बुराइयों की जड़ मैं हूं। कोई इधर रूठा है, कोई उधर मुंह फुलाए पड़ा है। किस-किसको मनाऊं और कहां तक मनाऊं ?

मुंशीजी चकित होकर बोले—बात क्या है ?

निर्मला—भोजन करने नहीं जाते और क्या बात है ! दस दफे महरी

को भेजा, आखिर आप दौड़ी आयी। इन्हें तो इतना कह देना आसान है, मुझे भूख नहीं है। यहां तो घर-भर की लौंडी हूं, सारी दुनिया मुंह में कालिख पोतने को तैयार है। किसी को भूख न हो, पर यह कहनेवालों को कौन रोकेगा कि पिशाचिनी किसी को खाना नहीं देती!

मुंशीजी ने मंसाराम से कहा—खाना क्यों नहीं खा लेते जी? जानते हो क्या वक्त है?

मंसाराम स्तंभित-सा खड़ा था। उसके सामने एक ऐसा रहस्य हो रहा था, जिसका मर्म वह कुछ भी न समझ सकता था। जिन नेत्रों में एक क्षण पहले विनय के आंसू भरे हुए थे उनमें अकस्मात् ईर्ष्या की ज्वाला कहां से आ गई? जिन अधरों से एक क्षण पहले सुधा-वृष्टि हो रही थी, उनमें से विष का प्रवाह क्यों होने लगा? उसी अर्ध-चेतना की दशा में बोला—मुझे भूख नहीं।

मुंशीजी ने घुड़ककर कहा—क्यों भूख नहीं है? भूख नहीं थी, तो शाम को क्यों न कहला दिया? तुम्हारी भूख के इन्तजार में कौन सारी रात बैठा रहे? तुममें तो पहले यह आदत न थी। रूठना कब से सीख लिया? जाकर खा लो।

मंसाराम—जी नहीं, मुझे जरा भी भूख नहीं है।

मुंशीजी ने दांत पीसकर कहा—अच्छी बात है, जब भूख लगे तब खाना। यह कहते हुए वह अंदर चले गए। निर्मला भी उनके पीछे चली गई! मुंशीजी तो लेटने चले गए, उसने जाकर रसोई उठा दी और कुल्ला कर पान खा, मुसकराती जा पहुंची। मुंशीजी ने पूछा—खाना खा लिया न?

निर्मला—क्या करती! किसी के लिए अन्न-जल छोड़ दूंगी?

मुंशीजी—इसे न जाने क्या हो गया है; कुछ समझ में नहीं आता। दिन-दिन घुलता जाता है; उसी कमरे में पड़ा रहता है।

निर्मला कुछ न बोली। वह चिन्ता के अपार सागर में डुबकियां खा रही थी। मंसाराम ने मेरे भाव-परिवर्तन को देखकर दिल में क्या समझा होगा? क्या उसके मन में यह प्रश्न उठा होगा कि पिताजी को देखते ही उसकी त्यौरियां क्यों बदल गयीं? इसका कारण भी क्या उसकी समझ में आया

होगा ? बेचारा खाने आ रहा था, तब तक यह महाशय न जाने कहां से फट पड़े। इस रहस्य को उसे कैसे समझाऊं। समझाना सम्भव भी है ? मैं किस विपत्ति में फंस गई !

सबेरे वह उठकर घर के काम-धन्धे में लगी। सहसा नौ बजे भूंगी ने आकर कहा—मंसा बाबू तो अपना कागज-पत्तर सब इक्के पर लाद रहे हैं।

निर्मला ने हकबकाकर कहा—इक्के पर लाद रहे हैं ! कहां जाते हैं ?

भूंगी—मैंने पूछा तो बोले, अब स्कूल ही में रहूंगा।

मंसाराम प्रातःकाल उठकर अपने स्कूल के हेडमास्टर साहब के पास गया था और अपने रहने का प्रबन्ध कर आया था। हेडमास्टर साहब ने पहले तो कहा, यहां जगह नहीं है, तुमसे पहले के कितने लड़कों के प्रार्थना-पत्र पड़े हुए हैं, लेकिन जब मंसाराम ने कहा, मुझे जगह न मिलेगी, तो कदाचित् मेरा पढ़ना न हो सके और मैं इम्तिहान में शरीक न हो सकूं, तो हेडमास्टर को हार माननी पड़ी। मंसाराम के प्रथम श्रेणी में पास होने की आशा थी ! अध्यापकों को विश्वास था कि वह उस शाला की कीर्ति को उज्ज्वल करेगा। हेडमास्टर साहब ऐसे लड़के को कैसे छोड़ सकते थे ? उन्होंने अपने दफ्तर का कमरा उसके लिए खाली कर दिया, इसलिए मंसाराम वहां से आते ही अपना सामान इक्के पर लादने लगा।

मुंशीजी ने कहा—अभी ऐसी क्या जल्दी है ? दो-चार दिन में चले जाना। मैं चाहता हूं, तुम्हारे लिए कोई अच्छा-सा रसोइया ठीक कर दूं।

मंसाराम—वहां रसोइया बहुत अच्छा भोजन पकाता है।

मुंशीजी ने कहा—अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। ऐसा न हो कि पढ़ने के पीछे स्वास्थ्य खो बैठो।

मंसाराम—वहां नौ बजे के बाद कोई पढ़ने नहीं पाता और सबको नियम के साथ खेलना पड़ता है।

मुंशीजी—बिस्तर क्यों छोड़ देते हो ? सोओगे किस पर ?

मंसाराम—कम्बल लिये जाता हूं। बिस्तर की जरूरत नहीं।

मुंशीजी—कहार जब तक तुम्हारा सामान रख रहा है, जाकर कुछ खा लो। रात भी तो कुछ नहीं खाया था।

मंसाराम—वहीं खा लूंगा। रसोइये से भोजन बनाने को कह आया हूं।

यहां खाने लगूंगा तो देर होगी।

घर में जियाराम और सियाराम भी भाई के साथ जाने की जिद कर रहे थे। निर्मला उन लोगों को बहला रही थी—बेटा ! वहां छोटे लड़के नहीं रहते, सब काम अपने हाथ से करना पड़ता है ···

एकाएक रुक्मिणी ने आकर कहा—तुम्हारा वज्र का हृदय है, महारानी ! लड़के ने रात भी कुछ न खाया, इस वक्त भी बिना खाए-पिए चला जा रहा है; और तुम लड़कों को लिये बातें कर रही हो। उसको तुम जानती हो ? यह समझ लो कि वह स्कूल नहीं जा रहा है, बनवास ले रहा है; लौटकर न आएगा। वह उन लड़कों में नहीं है, जो खेल में मार भूल जाते हैं। बात उसके दिल पर पत्थर की लकीर हो जाती है।

निर्मला ने कातर स्वर में कहा—क्या करूं, दीदीजी ? वह किसी की सुनते ही नहीं। आप जरा जाकर बुला लें। आपके बुलाने से आ जायेंगे।

रुक्मिणी—आखिर हुआ क्या, जिस पर भागा जाता है ? घर से तो उसका जी कभी उचाट न होता था। उसको तो अपने घर के सिवा और कहीं अच्छा ही नहीं लगता था। तुम्हीं ने उसे कुछ कहा होगा या उसकी कुछ शिकायत की होगी। क्यों अपने लिए कांटे बो रही हो ? रानी, घर को मिट्टी में मिलाकर चैन से बैठने पाओगी ?

निर्मला ने रोकर कहा—मैंने उन्हें कुछ कहा हो, तो मेरी जबान कट जाये। हां, सौतेली मां होने के कारण बदनाम तो हूं ही। आपके हाथ जोड़ती हूं, जरा जाकर उन्हें बुला लाइए।

रुक्मिणी ने तीव्र स्वर में कहा—तुम क्यों नहीं बुला लातीं ? क्या छोटी हो जाओगी ? अपना होता तो क्या इसी तरह बैठी रहतीं ?

निर्मला की दशा उस पंखहीन की तरह हो रही थी, जो सर्प को अपनी ओर आते देखकर उड़ना चाहता है, पर उड़ नहीं सकता, उछलता है और गिर पड़ता है, पंख फड़-फड़ाकर रह जाता है। उसका हृदय अन्दर-ही-अन्दर तड़प रहा था, पर बाहर न जा सकती थी।

इतने में दोनों लड़के अन्दर आकर बोले—भैयाजी चले गए। निर्मला मूर्तिवत् खड़ी रही, मानो संज्ञाहीन हो गई। चले गए। घर में आये तक नहीं, मुझसे मिले तक नहीं ! चले गए ? मुझसे इतनी घृणा ! मैं

उनकी कोई न सही; उनकी बुआ तो थीं। उनसे तो मिलने आना चाहिए न ? मैं यहां थी न ! अन्दर कैसे कदम रखते। मैं देख लेती न ! इसीलिए चले गए।

नौ

मंसाराम के जाने से घर सूना हो गया। दोनों छोटे लड़के उसी स्कूल में पढ़ते थे। निर्मला रोज उनसे मंसाराम का हाल पूछती। आशा थी कि छुट्टी के दिन आएगा; लेकिन जब छुट्टी का दिन गुजर गया और वह न आया, तो निर्मला की तबीयत घबराने लगी। उसने उसके लिए मूंग के लड्डू बना रखे थे। सोमवार को प्रातः भूंगी को लड्डू देकर मदरसे भेजा। नौ बजे भूंगी आयी। मंसाराम ने लड्डू ज्यों-के-त्यों लौटा दिए।

निर्मला ने पूछा—पहले से कुछ हरे हुए हैं रे ?

भूंगी—हरे-वरे तो नहीं हुए, और सूख गये हैं।

निर्मला—क्या जी अच्छा नहीं ?

भूंगी—यह तो नहीं पूछा बहूजी, झूठ क्यों बोलूं ? हां, वहां का कहार देवर लगता है। वह कहता था कि तुम्हारे बाबूजी की खुराक कुछ नहीं है। दो फुलकियां खाकर उठ जाते हैं। फिर दिन-भर कुछ नहीं खाते। हरदम पढ़ते रहते हैं।

निर्मला—तूने क्या पूछा नहीं कि लड्डू क्यों लौटाए देते हो ?

भूंगी—यह तो नहीं पूछा बहूजी, झूठ क्यों बोलूं ! उन्होंने कहा, इसे लेती जा, यहां रखने का कुछ काम नहीं। मैं लेती आयी।

निर्मला—और कुछ नहीं कहते थे ? पूछा नहीं कल क्यों नहीं आये ? छुट्टी तो थी।

भूंगी—बहूजी, झूठ क्यों बोलूं। यह पूछने की तो मुझे सुध ही न रही। हां, यह कहते थे कि अब तू यहां कभी न आना; न मेरे लिए कोई चीज लाना;

और अपनी बहूजी से कह देना कि मेरे पास कोई चिट्ठी-पत्तर न भेजें; लड़कों से भी मेरे पास कोई सन्देश न भेजें। और एक बात ऐसी कही कि मुंह से निकल नहीं सकती। फिर रोने लगे।

निर्मला—कौन बात थी, कह तो ?

भूंगी—क्या कहूं बहूजी, कहते थे, मेरे जीने को धिक्कार है। यही कहकर रोने लगे।

निर्मला के मुंह से एक ठण्डी सांस निकल गई। ऐसा मालूम हुआ, मानो कलेजा बैठा जाता है। उसका रोम-रोम आर्तनाद से रुदन करने लगा। वह वहां बैठी न रह सकी। आकर बिस्तर पर मुंह ढांपकर लेट रही और फूट-फूटकर रोने लगी। 'वह भी जान गए' ! उसके अन्तःकरण में बार-बार यही आवाज गूंजने लगी—'वह भी जान गए' ! भगवान् अब क्या होगा ? जिस संदेह की आग में वह भस्म हो रही थी, अब शतगुण वेग से धधकने लगी। उसे अपनी कोई चिन्ता न थी। जीवन में अब सुख की आशा क्या थी, जिसकी उसे लालसा होती ? उसने अपने मन को इस विचार से समझाया कि यह मेरे पूर्व कर्मों का प्रायश्चित है। कौन प्राणी ऐसा निर्लज्ज होगा, जो इस दशा में बहुत दिन जी सके ? कर्त्तव्य की वेदी पर अपना जीवन और उसकी सारी कामनाएं होम कर दी थीं। हृदय रोता था, पर मुख पर हंसी का रंग भरना पड़ता था। जिसका मुंह देखने को जी न चाहता था, उसके सामने हंस-हंसकर बातें करनी पड़ती थीं। जिस देह का स्पर्श उसे सर्प से शीतल स्पर्श के समान लगता था, उससे आलिंगित होकर उसे जितनी घृणा, जितनी मर्म-वेदना होती थी, उसे कौन जान सकता है ? उस समय उसकी यही इच्छा होती थी कि धरती फट जाये और उसमें समा जाये। लेकिन सारी विडम्बना अब तक अपने ही तक थी और अपनी ही चिन्ता करनी उसने छोड़ दी थी; लेकिन वह समस्या अब अत्यन्त भयंकर हो गई थी कि वह अपनी आंखों से मंसाराम की आत्मपीड़ा नहीं देख सकती थी। मंसाराम जैसे मनस्वी, साहसी युवक पर इस आक्षेप का जो असर पड़ सकता था, उसकी कल्पना ही से उसके प्राण कांप उठते थे। अब चाहे उस पर कितने ही संदेह क्यों न हों, चाहे उसे आत्महत्या ही क्यों न करनी पड़े, पर वह चुप नहीं बैठ सकती। मंसाराम की रक्षा करने के लिए वह विकल हो गई !

उसने संकोच और लज्जा की चादर उतारकर फेंक देने का निश्चय कर लिया।

वकील साहब भोजन करके कचहरी जाने के पहले एक बार उससे अवश्य मिल लिया करते थे। उनके आने का समय हो गया था। आ ही रहे होंगे, यह सोचकर निर्मला द्वार पर खड़ी हो गई और इन्तजार करने लगी, लेकिन यह क्या ? वह तो बाहर चले जा रहे हैं। गाड़ी जुतकर आ गई। यह हुक्म वह यहीं से दिया करते थे। तो क्या आज वह न आएंगे, बाहर-ही-बाहर चले जाएंगे। नहीं, ऐसा नहीं होने पाएगा। उसने भूंगी से कहा—जाकर बाबूजी को बुलाकर ला। कहना, एक जरूरी काम है, सुन लीजिए।

मुंशीजी जाने को तैयार ही थे। यह संदेश पाकर अन्दर आये, पर कमरे में न आकर दूर ही से पूछा—क्या बात है भाई, जल्दी कह दो, मुझे एक जरूरी काम से जाना है। अभी थोड़ी देर हुई, हेडमास्टर साहब का एक पत्र आया है कि मंसाराम को ज्वर आ गया है, बेहतर हो कि आप घर ही पर उसका इलाज करें। इसलिए उधर ही से होता हुआ कचहरी जाऊंगा। तुम्हें कोई खास बात कहनी है ?

निर्मला पर मानो वज्र गिर पड़ा। आंसुओं के आवेग और कण्ठ-स्वर में घोर संग्राम होने लगा। दोनों पहले निकलने पर तुले हुए थे। दो में से कोई एक कदम पीछे हटना नहीं चाहता था। कण्ठ-स्वर की दुर्बलता और आंसुओं की सबलता देखकर यह निश्चय करना कठिन था कि एक क्षण यही संग्राम होता रहा, तो मैदान किसके हाथ रहेगा। आखिर दोनों साथ-साथ निकले, लेकिन बाहर आते ही बलवान ने निर्बल को दबा दिया। केवल इतना मुंह से निकला—कोई खास बात नहीं थी ! आज आप तो उधर जा रहे हैं।

मुंशीजी—मैंने लड़कों से पूछा था तो वे कहते थे, कल बैठे पढ़ रहे थे। आज न जाने क्या हो गया।

निर्मला ने आवेश से कांपते हुए कहा—यह सब आप कर रहे हैं।

मुंशीजी ने त्योरियां बदलकर कहा—मैं कर रहा हूं ! मैं क्या कर रहा हूं ?

निर्मला—अपने दिल से पूछिए।

मुंशीजी—मैंने तो यही सोचा था कि यहां उसका पढ़ने में जी नहीं लगता, वहां और लड़कों के साथ खामख्वाह ही पढ़ेगा। यह तो कोई बुरी बात न थी; और मैंने क्या किया ?

निर्मला—खूब सोचिए, इसीलिए आपने उन्हें वहां भेजा था ! आपके मन में और कोई बात न थी ?

मुंशीजी हिचकिचाए और अपनी दुर्बलता को छिपाने के लिए मुसकराने की चेष्टा करके बोले—और क्या बात हो सकती थी ? भला तुम्हीं सोचो !

निर्मला—खैर, यही सही। अब आप कृपा करके उन्हें आज ही लेते आइएगा। वहां रहने से उनकी बीमारी बढ़ जाने का भय है। यहां दीदीजी जो तीमारदारी कर सकती हैं, दूसरा नहीं कर सकता।

एक क्षण के बाद उसने सिर नीचा करके कहा—मेरे कारण न लाना चाहते हों, तो मुझे मेरे घर भेज दीजिए। मैं वहां आराम से रहूंगी।

मुंशीजी ने इसका जवाब न दिया। बाहर चले गए और एक क्षण में गाड़ी स्कूल की ओर चली।

मन ! तेरी गति कितनी विचित्र है, कितनी रहस्य से भरी हुई, कितनी दुर्भेद्य। तू कितनी जल्दी रंग बदलता है। इस कला में तू निपुण है। आतिशबाज की चर्खी को भी रंग बदलते कुछ देर लगती है, पर तुझे रंग बदलने में उसका लक्षांश समय भी नहीं लगता। जहां अभी वात्सल्य था वहां फिर सन्देह ने आसन जमा लिया।

वह सोचते थे—कहीं उसने बहाना तो नहीं किया है ?

दस

मंसाराम दो दिन गहरी चिन्ता में डूबा रहा। बार-बार अपनी माता की याद आती; न खाना अच्छा लगता, न पढ़ने ही में जी लगता। उसकी कायापलट-सी हो गई। दिन गुजर गए और छात्रालय में रहते हुए भी उसने

वह काम न किया, जो स्कूल के मास्टरों ने घर से कर लाने को कह दिया था। परिणामस्वरूप उसे बेंच पर खड़ा रहना पड़ा। जो बात कभी न हुई थी, वह आज हो गई। यह असह्य अपमान भी उसे सहना पड़ा।

तीसरे दिन वह इन्हीं चिन्ताओं में मग्न हुआ अपने मन को समझा रहा था—क्या संसार में अकेली मेरी ही माता मरी है? विमाताएं तो सभी इसी प्रकार की होती हैं! मेरे साथ कोई नई बात नहीं हो रही है। अब मुझे पुरुषों की भांति द्विगुण परिश्रम से अपना काम करना चाहिए; माता-पिता जैसे राजी रहें; उन्हें राजी रखना चाहिए। इस साल अगर छात्रवृत्ति मिल गई, तो मुझे घर से कुछ लेने की जरूरत ही न रहेगी। कितने ही लड़के अपने बल पर बड़ी-बड़ी उपाधियां प्राप्त कर लेते हैं। बाधाओं पर विजय पाना और अवसर देखकर काम करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है। भाग्य के नाम को रोने-कोसने से क्या होगा?

इतने में जियाराम आकर खड़ा हो गया।

मंसाराम ने पूछा—घर का क्या हाल है, जिया? नई अम्माजी तो प्रसन्न होंगी?

जियाराम—उनके मन का हाल तो मैं नहीं जानता; लेकिन जब से तुम आये हो, उन्होंने एक जून भी खाना नहीं खाया। जब देखो, तब रोया ही करती हैं। जब बाबूजी आते हैं, तब अलबत्ता हंसने लगती हैं। तुम चले आये, तो मैंने भी शाम को अपनी किताबें संभालीं। यहीं तुम्हारे साथ रहना चाहता था। भूंगी चुड़ैल ने जाकर अम्माजी से कह दिया। बाबूजी बैठे थे, उनके सामने ही अम्माजी ने आकर मेरी किताबें छीन लीं और रोकर बोलीं—तुम चले जाओगे, तो इस घर में कौन रहेगा? अगर मेरे कारण तुम लोग घर छोड़-छोड़कर भागे जा रहे हो, तो लो मैं कहीं चली जाती हूं। मैं तो झल्लाया हुआ था ही, वहां अब बाबूजी भी न थे, बिगड़कर बोला—आप क्यों कहीं चली जायेंगी? आपका तो घर है, आप आराम से रहिए। गैर तो हमीं लोग हैं; हम न रहेंगे तब तो आपको आराम ही आराम होगा।

मंसाराम—तुमने खूब कहा, बहुत ही अच्छा कहा। इस पर और भी झल्लायी होंगी और जाकर बाबूजी से शिकायत की होगी।

जियाराम—नहीं, यह कुछ नहीं हुआ। बेचारी जमीन पर बैठकर रोने

लगीं। मुझे भी करुणा आ गई। मैं भी रो पड़ा। उन्होंने अंचल से मेरे आंसू पोंछे और बोलीं—जिया, मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहती हूं कि मैंने तुम्हारे भैया के विषय में तुम्हारे बाबूजी से एक शब्द नहीं कहा। मेरे भाग्य में कलंक लिखा हुआ है, वही भोग रही हूं। फिर और न जाने क्या-क्या कहा, जो मेरी समझ में नहीं आया। कुछ बाबूजी की बात थी।

मंसाराम ने उद्विग्नता से पूछा—बाबूजी के विषय में क्या कहा, कुछ याद है।

जियाराम—बातें तो भई, मुझे याद नहीं आतीं। मेरी मेमोरी (memory) कौन बड़ी तेज है; लेकिन उनकी बातों का मतलब कुछ ऐसा मालूम होता था कि उन्हें बाबूजी को प्रसन्न रखने के लिए यह स्वांग भरना पड़ रहा है। न जाने धर्म-अधर्म की कैसी बातें करती थीं, जो मैं बिलकुल न समझ सका। मुझे तो अब इसका विश्वास आ गया है कि उनकी इच्छा तुम्हें यहां भेजने की न थी।

मंसाराम—तुम इन चालों का मतलब नहीं समझ सकते। ये बड़ी गहरी चालें हैं।

जियाराम—तुम्हारी समझ में होंगी, मेरी समझ में नहीं हैं।

मंसाराम—जब तुम ज्योमेट्री (geometry) नहीं समझ सकते, तो इन बातों को क्या समझ सकोगे। उस रात को जब मुझे खाना खाने के लिए बुलाने आयी थीं और उनके आग्रह पर मैं जाने को तैयार हो गया था, उस वक्त बाबूजी को देखते ही उन्होंने जो कैंडा बदला, वह क्या मैं कभी भी भूल सकता हूं?

जियाराम—यही बात मेरी समझ में नहीं आती। अभी कल ही मैं यहां से गया, तो लगीं तुम्हारा हाल पूछने। मैंने कहा—वह कहते थे कि अब कभी इस घर में कदम न रखूंगा। मैंने कुछ झूठ तो कहा नहीं, तुमने मुझसे कहा ही था। इतना सुनना था कि फूट-फूटकर रोने लगीं। मैं दिल में बहुत पछताया कि कहां से कहां मैंने यह बातें कह दीं। बार-बार यही कहती थीं, क्या मेरे कारण घर छोड़ देंगे? मुझसे इतने नाराज हैं! चले गए और मुझसे मिले तक नहीं! खाना तैयार था, खाने तक नहीं आये। हाय! मैं क्या बताऊं, किस विपत्ति में हूं। इतने में बाबूजी आ गए। बस तुरन्त आंखें पोंछकर मुस्कराती

उनके पास चली गयीं। यह बात मेरी समझ में नहीं आती। आज मुझसे बड़ी मिन्नत की कि उनको साथ लेते आना। आज मैं तुम्हें खींच ले चलूंगा। दो दिन में वह कितनी दुबली हो गई हैं, तुम्हें यह देखकर उन पर दया आयेगी। चलोगे न?

मंसाराम ने कुछ जवाब न दिया। उसके पैर कांप रहे थे। जियाराम तो हाजिरी की घंटी सुनकर भागा, पर वह बेंच पर लेट गया और इतनी लम्बी सांस ली, मानो बहुत देर से उसने सांस नहीं ली है। उसके मुख से दुस्सह वेदना में डूबे हुए शब्द निकले—हाय ईश्वर! इस नाम के सिवा उसे अपना जीवन निराधार मालूम होता था। इस एक उच्छ्वास में कितना नैराश्य, कितनी संवेदना, कितनी करुणा, कितनी दीनता-प्रार्थना भरी हुई थी, इसका कौन अनुमान कर सकता है! अब सारा रहस्य उसकी समझ में आ रहा था और बार-बार उसका पीड़ित हृदय आर्त्तनाद कर रहा था—हाय ईश्वर! इतना घोर कलंक!

क्या जीवन में इससे बड़ी विपत्ति की कल्पना की जा सकती है? क्या संसार में इससे घोरतर नीचता की कल्पना की जा सकती है? आज तक किसी पिता ने अपने पुत्र पर इतना निर्दय कलंक न लगाया होगा। जिसके चरित्र की सभी प्रशंसा करते थे, जो अन्य युवकों के लिए आदर्श समझा जाता था, जिसने कभी अपवित्र विचारों को अपने पास नहीं फटकने दिया, उसी पर यह घोर कलंक! मंसाराम को ऐसा मालूम हुआ, मानो उसका दिल फटा जा रहा है।

दूसरी घंटी भी बज गई। लड़के अपने-अपने कमरे में गये; पर मंसाराम हथेली पर गाल रखे अनिमेष नेत्रों से भूमि की ओर देख रहा था, मानो उसका सर्वस्व जलमग्न हो गया हो, मानो वह किसी को मुंह न दिखा सकता हो। स्कूल में गैरहाजिरी हो जाएगी, जुर्माना हो जायेगा, इसकी उसे चिन्ता नहीं! जब उसका सर्वस्व लुट गया, तो अब इन छोटी-छोटी बातों का क्या भय? इतना बड़ा कलंक लगने पर भी अगर जीता रहूं, तो मेरे जीवन को धिक्कार है!

उसी शोकातिरेक की दशा में वह चिल्ला पड़ा—माताजी! तुम कहां हो? तुम्हारा बेटा, जिस पर तुम प्राण देती थीं—जिसे तुम अपने जीवन का

आधार समझती थीं, आज घोर संकट में है। उसी का पिता उसकी गर्दन पर छुरी फेर रहा है। हाय, तुम कहां हो ?

मंसाराम फिर शांत चित्त से सोचने लगा—मुझ पर यह संदेह क्यों हो रहा है ? इसका क्या कारण है ? मुझमें ऐसी कौन-सी बात उन्होंने देखी जिससे उन्हें यह संदेह हुआ ? वह हमारे पिता हैं, मेरे शत्रु नहीं जो अनायास ही मुझ पर यह अपराध लगाने बैठ जायें। जरूर उन्होंने कोई-न-कोई बात देखी या सुनी है। उनका मुझ पर कितना स्नेह था ! मेरे बगैर भोजन करने न जाते थे, वही मेरे शत्रु हो जायें, यह बात अकारण नहीं हो सकती।

अच्छा, इस संदेह का बीजारोपण किस दिन हुआ ? मुझे बोर्डिंग-हाऊस में ठहराने की बात तो पीछे की है। उस दिन, रात को वह मेरे कमरे में आकर मेरी परीक्षा लेने लगे थे, उसी दिन उनकी त्यौरियां बदली हुई थीं। उस दिन ऐसी कौन-सी बात हुई, जो अप्रिय लगी हो ? मैं नई अम्मा से कुछ खाने को मांगने गया था। बाबूजी उस समय वहां बैठे थे। हां, अब याद आती है, उसी वक्त उनका चेहरा तमतमा गया था ! उसी दिन से नई अम्मा ने मुझसे पढ़ना छोड़ दिया। अगर मैं जानता कि मेरा घर में आना-जाना, अम्माजी से कहना-सुनना और उन्हें पढ़ाना-लिखाना पिताजी को बुरा लगता है, तो आज क्यों यह नौबत आती ? और नई अम्मा, उन पर क्या बीत रही होगी !

मंसाराम ने अब तक निर्मला की ओर ध्यान नहीं दिया था। निर्मला का ध्यान आते ही उसके रोएं खड़े हो गए ! उनका सरल, स्नेहशील हृदय यह आघात कैसे सह सकेगा ? आह ! मैं कितने भ्रम में था ! मैं उनके स्नेह को कौशल समझता था। मुझे क्या मालूम था कि उन्हें पिताजी का भ्रम शांत करने के लिए मेरे प्रति इतना कटु व्यवहार करना पड़ता है। आह ! मैंने उन पर कितना अन्याय किया है ! उनकी दशा तो मुझसे भी खराब हो रही होगी। मैं तो यहां चला आया, मगर वह कहां जाएंगी ? जिया कहता था, उन्होंने दो दिन से भोजन नहीं किया। हरदम रोया करती हैं। कैसे जाकर समझाऊं ? वह इस अभागे के पीछे क्यों अपने सिर पर यह विपत्ति ले रही हैं ? वह क्यों बार-बार मेरा हाल पूछती हैं ? क्यों बार-बार मुझे रुलाती हैं ? कैसे कह दूं कि माता, मुझे तुमसे जरा भी शिकायत नहीं; मेरा

दिल तुम्हारी तरफ से साफ है ।

वह अब भी बैठी रो रही होंगी । कितना बड़ा अनर्थ है ? बाबूजी को यह क्या हो रहा ? क्या इसीलिए विवाह किया था ? एक बालिका की हत्या करने के लिए ही उसे लाये थे ? इस कोमल पुष्प को मसल डालने ही के लिए तोड़ा था ?

उनका कैसे उद्धार होगा ? उस निरपराध का मुख कैसे उज्ज्वल होगा ? उन्हें केवल मेरे साथ स्नेह का व्यवहार करने के लिए यह दंड दिया जा रहा है। उनकी सज्जनता का यह उपहार मिल रहा है । मैं उन्हें इस प्रकार निर्दय आघात सहते देखकर बैठा रहूंगा ? अपनी मानरक्षा न सही, उनकी आत्मरक्षा के लिए इन प्राणों का बलिदान करना पड़ेगा । इसके सिवाय उद्धार का कोई उपाय नहीं । आह ! दिल में कैसे-कैसे अरमान थे । वे सब खाक में मिला देने होंगे । एक सती पर संदेह किया जा रहा है; और मेरे कारण ! मुझे अपने से ज्यादा उनकी रक्षा करनी होगी, यही मेरा कर्त्तव्य है । इसी में सच्ची वीरता है । माता, मैं अपने रक्त से इस कालिमा को धो दूंगा । इसमें मेरा और तुम्हारा दोनों का कल्याण है ।

वह दिन-भर इन्हीं विचारों में डूबा रहा । शाम को उसके दोनों भाई आकर घर चलने के लिए आग्रह करने लगे ।

जियाराम—चलते क्यों नहीं ? मेरे भैयाजी, चले चलो न !

मंसाराम—मुझे फुरसत नहीं है कि तुम्हारे कहने से चला चलूं ।

जियाराम—आखिर कल तो इतवार है ही ।

मंसाराम—इतवार को भी काम है ।

जियाराम—अच्छा, कल आओगे न ?

मंसाराम—नहीं, मुझे कल एक मैच में जाना है ।

सियाराम—अम्माजी मूंग के लड्डू बना रही हैं । न चलोगे तो एक भी न पाओगे । हम-तुम मिलके खा जाएंगे, इन्हें न देंगे !

जियाराम—भैया, अगर तुम कल न गये, तो शायद अम्माजी यहीं चली आएं !

मंसाराम—सच ! नहीं, ऐसा क्यों करेंगी । यहां आयीं तो बड़ी परेशानी होगी । तुम कह देना, वह कहीं मैच देखने गये हैं ।

जियाराम—मैं झूठ क्यों बोलने लगा ? मैं कह दूंगा, वह मुंह फुलाये बैठे थे। देख लेना, उन्हें साथ लाता हूं कि नहीं।

सियाराम—हम कह देंगे कि आज पढ़ने नहीं गये। पड़े-पड़े सोते रहे।

मंसाराम ने इन दूतों से कल आने का वादा करके गला छुड़ाया। जब दोनों चले गए, तो फिर चिन्ता में डूबा। रात-भर उसे करवट बदलते गुजरी। छुट्टी का दिन भी बैठे-बैठे कट गया। उसे दिन-भर शंका होती रही कि कहीं अम्माजी सच न चली आएं। किसी गाड़ी की खड़खड़ाहट सुनता, तो उसका कलेजा धक-धक करने लगता। कहीं आ तो नहीं गयीं !

छात्रालय में एक छोटा-सा औषधालय था। एक डॉक्टर साहब सन्ध्या समय एक घण्टे के लिए आ जाया करते थे। अगर कोई लड़का बीमार होता, तो उसे दवा देते। आज वह आये तो मंसा कुछ सोचता हुआ उनके पास जाकर खड़ा हो गया। वह मंसाराम को अच्छी तरह जानते थे। उसे देखकर आश्चर्य से बोले—यह तुम्हारी क्या हालत है जी ? तुम तो मानो गले जा रहे हो ! बाजार का चस्का तो नहीं पड़ गया है ? आखिर तुम्हें क्या हुआ ? जरा यहां तो आओ !

मंसाराम ने मुस्कराकर कहा—मुझे जिन्दगी का रोग है। आपके पास इसकी भी कोई दवा है ?

डॉक्टर—मैं तुम्हारी परीक्षा करना चाहता हूं। तुम्हारी सूरत ही बदल गई जी, पहचाने भी नहीं जाते।

यह कहकर उन्होंने मंसाराम का हाथ पकड़ लिया, और छाती, पीठ, आंखें, जीभ सब बारी-बारी से देखीं। तब चिन्तित होकर बोले—वकील साहब से आज ही मिलूंगा। तुम्हें थाइसिस हो रहा है। सारे लक्षण उसी के हैं।

मंसाराम ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—भला, कितने दिनों में काम तमाम हो जायेगा, डॉक्टर साहब ?

डॉक्टर—कैसी बात करते हो जी ? मैं वकील साहब से मिलकर तुम्हें किसी पहाड़ी जगह भेजने की सलाह दूंगा। ईश्वर ने चाहा तो तुम अच्छे हो जाओगे। बीमारी अभी पहली स्टेज में है।

मंसाराम—तब तो अभी साल-दो साल की देर मालूम होती है। न, मैं तो इतना इन्तजार नहीं कर सकता। सुनिए, मुझे थाइसिस-वाइसिस कुछ नहीं

है, दूसरी शिकायत ही है, आप बाबूजी को नाहक तरद्दुद में न डालिएगा। इस वक्त मेरे सिर में दर्द है; कोई दवा दीजिए। कोई ऐसी दवा हो, जिससे नींद भी आ जाय, मुझे दो रात से नींद नहीं आती।

डॉक्टर ने जहरीली दवाइयों की अलमारी खोली और एक शीशी से थोड़ी-सी दवा निकालकर मंसाराम को दे दी। मंसाराम ने पूछा—यह तो कोई जहर है। भला, इसे कोई पी ले तो मर जाये?

डॉक्टर—नहीं मर तो नहीं जाये; पर सिर में चक्कर जरूर आ जाये।

मंसाराम—कोई ऐसी भी दवा इसमें है, जिसे पीते ही प्राण निकल जायं।

डॉक्टर—ऐसी एक-दो नहीं, कितनी ही दवाएं हैं! यह जो शीशी देख रहे हो, इसकी एक बूंद भी अगर पेट में चली जाये, तो जान न बचे। आनन-फानन में मौत हो जाये।

मंसाराम—क्यों डॉक्टर साहब, जो लोग जहर खा लेते हैं उन्हें बड़ी तकलीफ होती होगी?

डॉक्टर—सभी जहरों से तकलीफ नहीं होती। ब़ाजे तो ऐसे हैं कि पीते ही आदमी ठण्डा हो जाता है, फिर उसे होश नहीं आता।

मंसाराम ने सोचा, तब तो प्राण देना बहुत आसान है। फिर क्यों लोग इतना डरते हैं? यह शीशी कैसे मिलेगी? अगर दवा का नाम पूछकर शहर के किसी दवाफरोश से लेना चाहूं, तो वह कभी न देगा। ऊंह, इसके मिलने में कोई दिक्कत नहीं। यह तो मालूम हो गया कि प्राणों का अन्त बड़ी आसानी से किया जा सकता है। मंसाराम इतना प्रसन्न हुआ, मानो कोई इनाम पा गया हो। उसके दिल पर से एक बोझा-सा हट गया। चिन्ता की मेघराशि, जो सिर पर मंडरा रही थी, छिन्न-भिन्न हो गई। महीनों बाद आज उसे मन में एक स्फूर्ति का अनुभव हुआ।

कई लड़के थियेटर देखने जा रहे थे। निरीक्षक से आज्ञा ले ली थी। मंसाराम भी उनके साथ थिएटर देखने चला गया। ऐसा खुश था, मानो उससे ज्यादा सुखी जीव संसार में कोई नहीं है। थियेटर में नकल देखकर तो वह हंसते-हंसते लोट गया। बार-बार तालियां बजाने और 'वन्स मोर' की हांक लगाने में पहला नम्बर उसी का था। गाना सुनकर वह मस्त हो

जाता था और 'ओ हो हो !' करके चिल्ला उठता था। दर्शकों की निगाहें बार-बार उसकी तरफ उठ जाती थीं। थियेटर के पात्र भी उसी की ओर ताकते थे और जानने को उत्सुक थे कि कौन महाशय इतने रसिक और भावुक हैं। उसके मित्रों को उसकी उच्छृंखलता पर आश्चर्य हो रहा था। वह बहुत ही शान्तचित्त, गंभीर स्वभाव का युवक था। आज वह क्यों इतना हास्यशील हो गया है, क्यों उसके विनोद का वारापार नहीं है।

दो बजे रात को थियेटर से लौटने पर भी उसका हास्योन्माद कम नहीं हुआ। उसने एक लड़के की चारपाई उलट दी, कई लड़कों के कमरे के द्वार बाहर से बन्द कर दिए और उन्हें भीतर खट-खट करते सुनकर हंसता रहा। यहां तक कि छात्रालय के अध्यक्ष महोदय की नींद भी शोरगुल सुनकर खुल गई और उन्होंने मंसाराम की शरारत पर खेद प्रकट किया। कौन जानता है कि उसके अंतस्तल में कितनी भीषण क्रांति हो रही है? संदेह के निर्दय आघात ने उसकी लज्जा और आत्मसम्मान को कुचल डाला है। उसे अपमान और तिरस्कार का लेशमात्र भय नहीं है। यह विनोद नहीं, उसकी आत्मा का करुण विलाप है। जब और सब लड़के सो गये, तो वह भी चारपाई पर लेटा, लेकिन उसे नींद नहीं आई। एक क्षण के बाद वह उठ बैठा और अपनी सारी पुस्तकें बांधकर सन्दूक में रख दीं। जब मरना ही है तो पढ़कर क्या होगा? जिस जीवन में ऐसी-ऐसी बाधाएं हैं—ऐसी-ऐसी यातनाएं हैं, उससे मृत्यु कहीं अच्छी!

यह सोचते-सोचते तड़का हो गया। तीन रात से वह एक क्षण भी न सोया था। इस वक्त उठा तो उसके पैर थर-थर कांप रहे थे और सिर में चक्कर-सा आ रहा था। आंखें जल रही थीं और शरीर के सारे अंग शिथिल हो रहे थे। दिन चढ़ता जा रहा था और उसमें इतनी शक्ति भी न थी कि उठकर मुंह-हाथ धो डाले। एकाएक उसने भूंगी को रूमाल में कुछ लिए हुए कहार के साथ आते देखा। उसका कलेजा सन्न हो गया। हाय ईश्वर! वे आ गयीं, अब क्या होगा? भूंगी अकेले नहीं आयी होगी। बग्घी जरूर बाहर खड़ी होगी। कहां तो उससे उठा न जाता था, कहां भूंगी को देखते ही दौड़ा और घबरायी आवाज में बोला—अम्माजी भी आई हैं क्या रे? जब मालूम हुआ कि अम्माजी नहीं आयीं, तब उसका चित्त शांत हुआ। भूंगी

ने कहा—भैया ! कहती हैं मैंने उनकी कुछ भी शिकायत नहीं की है। मुझसे आज रो-रोकर कहने लगीं—उनके पास यह मिठाई लेती जा और कहना, मेरे कारण क्यों घर छोड़ दिया है ? कहां रख दूं यह थाली ?

मंसाराम ने रुखाई से कहा—थाली अपने सिर पर पटक दे, चुड़ैल ! यहां से चली जा मिठाई लेकर ! खबरदार जो फिर कभी इधर आयी। सौगात लेकर चली है ! जाकर कह देना, मुझे उनकी मिठाई नहीं चाहिए। जाकर कह देना तुम्हारा घर है, तुम रहो, वहां वे बड़े आराम से हैं। खूब खाते और मौज करते हैं ! सुनती है, बाबूजी के मुंह पर कहना, समझ गई। मुझे किसी का डर नहीं है; और जो करना चाहें कर डालें, जिससे दिल में कोई अरमान न रह जाय। कहें तो इलाहाबाद, कलकत्ता चला जाऊं। मेरे लिए जैसा बनारस, वैसा दूसरा शहर। यहां क्या रखा है ?

भूंगी—भैया मिठाई रख लो नहीं तो रो-रोकर मर जायेंगी। सच मानो रो-रोकर मर जायेंगी।

मंसाराम ने आंसुओं के उठते हुए वेग को दबाकर कहा—मर जायेंगी मेरी बला से ! कौन मुझे बड़ा सुख दिया है, जिसके लिए पछताऊं। मेरा तो उन्होंने सर्वनाश कर दिया। कह देना, मेरे पास कोई सन्देश न भेजें, कुछ जरूरत नहीं।

भूंगी—भैया, तुम तो कहते हो, यहां खूब खाता हूं और मौज करता हूं; मगर देह तो आधी भी नहीं रही। जैसे आये उसके आधे भी न रहे।

मंसाराम—यह तेरी आंखों का फेर है। देखना दो-चार दिन में मुटाकर कोल हो जाता हूं कि नहीं। उनसे कह देना रोना-धोना बन्द करें। जो मैंने सुना कि रोती हैं और खाना नहीं खातीं, तो मुझसे बुरा कोई नहीं। मुझे घर से निकाला है तो आप चैन से रहें। चली हैं प्रेम दिखाने। मैं ऐसे त्रियाचरित्र बहुत पढ़े बैठा हूं।

भूंगी चली गई। मंसाराम को उससे बातें करते ही कुछ ठण्ड मालूम होने लगी थी। यह अभिनय करने के लिये उसे अपने मनोभावों को जितना दबाना पड़ा था वह उसके लिए असाध्य था। उसका आत्मसम्मान उसे इस कुटिल व्यवहार का जल्द-से-जल्द अन्त कर देने के लिए बाध्य कर रहा था; पर इसका परिणाम क्या होगा ? निर्मला क्या यह आघात सह सकेगी ? अब तक

मृत्यु की कल्पना करते समय किसी अन्य प्राणी का विचार न करता था; पर आज एकाएक ज्ञान हुआ कि मेरे जीवन के साथ एक और प्राणी का जीवन-सूत्र भी बंधा हुआ है । निर्मला यह समझेगी कि मेरी निष्ठुरता ही ने इनकी जान ली । यह समझकर उसका कोमल हृदय फट न जायेगा ? उसका जीवन तो अब भी संकट में है । संदेह के कठोर फंदे में फंसी हुई अबला क्या अपने को हत्याकारिणी समझकर बहुत दिनों तक जीवित रह सकती है ?

मंसाराम ने चारपाई पर लेटकर लिहाफ ओढ़ लिया, फिर भी सर्दी से कलेजा कांप रहा था । थोड़ी ही देर में उसे जोर से ज्वर चढ़ आया—वह बेहोश हो गया । इस अचेत अवस्था में उसे भांति-भांति के स्वप्न दिखाई देने लगे । थोड़ी-थोड़ी देर के बाद चौंक पड़ता—आंखें खुल जातीं, फिर बेहोश हो जाता ।

सहसा वकील साहब की आवाज सुनकर वह चौंक पड़ा । हां, वकील साहब ही की आवाज थी । उसने लिहाफ फेंक दिया और चारपाई से उतरकर नीचे खड़ा हो गया । उसके मन में एक आवेश हुआ कि इसी वक्त इनके सामने प्राण दे दूं । उसे मालूम हुआ कि मर जाऊं तो इन्हें सच्ची खुशी होगी । शायद इसीलिए यह देखने आये हैं कि मेरे मरने में कितनी देर है । वकील साहब ने उसका हाथ पकड़ लिया, जिससे वह गिर न पड़े और पूछा—कैसी तबीयत है लल्लू, लेटे क्यों न रहे ? लेट जाओ; तुम खड़े क्यों हो गए ?

मंसाराम—मेरी तबीयत तो बहुत अच्छी है । आपको व्यर्थ ही कष्ट हुआ ।

मुंशीजी ने कुछ जवाब न दिया । लड़के की दशा देखकर उनकी आंखों से आंसू निकल आये । हृष्ट-पुष्ट बालक, जिसे देखकर चित्त प्रसन्न हो आता था, अब सूखकर कांटा हो गया था । पांच-छह दिन में ही वह इतना दुबला हो गया था कि उसे पहचानना कठिन था । मुंशीजी ने उसे आहिस्ता से चारपाई पर लिटा दिया और लिहाफ अच्छी तरह उढ़ाकर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए । कहीं लड़का हाथ से तो न निकल जाएगा । यह खयाल करके वह शोक में विह्वल हो गये और स्टूल पर बैठकर फूट-फूटकर रोने लगे । मंसाराम भी लिहाफ में मुंह लपेटे रो रहा था । अभी थोड़े ही दिन पहले उसे देखकर पिता का हृदय गर्व से फूल उठता था; लेकिन आज उसे दारुण दशा में देखकर

भी वह सोच रहा है कि इसे घर ले चलूं या नहीं ? क्या यहां दवा नहीं हो सकती ? मैं यहां चौबीसों घण्टे बैठा रहूंगा। डॉक्टर साहब यहां हैं ही। कोई दिक्कत न होगी। घर ले चलने में उन्हें बाधाएं-ही-बाधाएं दिखाई देती थीं; सबसे बड़ा भय था कि वहां निर्मला इसके पास हरदम बैठी रहेगी और मना न कर सकूंगा—यह उनके लिए असह्य था।

इतने में अध्यक्ष ने आकर कहा—मैं समझता हूं, आप इन्हें अपने साथ ले जाएं। गाड़ी है ही, तकलीफ न होगी। यहां अच्छी तरह देख-भाल न हो सकेगी।

मुंशीजी—हां, आया तो मैं इसी ख्याल से था, लेकिन इसकी हालत बहुत ही नाजुक मालूम होती है। जरा-सी असावधानी होने से सरसाम हो जाने का भय है।

अध्यक्ष—यहां से इन्हें ले जाने में थोड़ी-सी दिक्कत जरूर है, लेकिन यह तो आप खुद सोच सकते हैं कि घर पर जो आराम मिल सकता है, वह यहां किसी तरह नहीं मिल सकता। इसके अतिरिक्त किसी बीमार लड़के को यहां रखना नियम-विरुद्ध भी है।

मुंशीजी—कहिए तो मैं हेडमास्टर से आज्ञा ले लूं ! मुझे इनको यहां से इस हालत में ले जाना, किसी तरह मुनासिब नहीं मालूम होता।

अध्यक्ष ने हेडमास्टर का नाम सुना तो समझे कि यह महाशय धमकी दे रहे हैं। जरा तिनककर बोले—हेडमास्टर नियम-विरुद्ध कोई बात नहीं कर सकते। मैं इतनी बड़ी जिम्मेदारी कैसे ले सकता हूं।

अब क्या हो ? क्या घर ले जाना ही पड़ेगा ? यहां रखने का तो बहाना था कि ले जाने से बीमारी बढ़ जाने की शंका है। यहां से ले जाकर अस्पताल में ठहराने के लिए कौन बहाना है ? जो सुनेगा, वह यही कहेगा कि डॉक्टर की फीस बचाने के लिए लड़के को अस्पताल में फेंक आये। पर अब ले जाने के सिवाय और कोई उपाय न था। अगर अध्यक्ष महोदय इस वक्त रिश्वत लेने पर तैयार हो जाते, तो शायद दो-चार साल का वेतन ले लेते; लेकिन कायदे के पाबन्द लोगों में इतनी बुद्धि, इतनी चतुराई कहां ? अगर इस वक्त मुंशीजी को कोई आदमी ऐसा उज्र सुझा देता, जिसमें मंसाराम को घर न ले जाना पड़े, तो वह आजीवन उसका एहसान मानते। सोचने का

समय भी नहीं था। अध्यक्ष महोदय शैतान की तरह सिर पर सवार थे। विवश होकर मुंशीजी ने दोनों साईसों को बुलाया और मंसाराम को उठाने लगे। मंसाराम अर्द्ध-चेतना की दशा में था, चौंककर बोला—क्या है, कौन है ?

मुंशीजी—कोई नहीं है बेटा, मैं तुम्हें घर ले चलना चाहता हूं। आओ, गोद में उठा लूं।

मंसाराम—मुझे क्यों घर ले चलते हैं ? मैं वहां नहीं जाऊंगा।

मुंशीजी—यहां तो रह नहीं सकते, नियम ही ऐसा है।

मंसाराम—कुछ भी हो, वहां न जाऊंगा। मुझे और कहीं ले चलिए, किसी पेड़ के नीचे, किसी झोंपड़े में, जहां चाहें रखिए; पर घर न ले चलिए।

अध्यक्ष ने मुंशीजी से कहा—आप इन बातों का खयाल न करें। यह तो होश में नहीं है।

मंसाराम—कौन होश में नहीं है ? मैं होश में नहीं हूं ? किसी को गालियां देता हूं ? दांत काटता हूं ? क्यों होश में नहीं हूं ? मुझे यहीं पड़ा रहने दीजिए, जो कुछ होना होगा यहीं होगा। अगर ऐसा है तो मुझे अस्पताल ले चलिए, वहां पड़ा रहूंगा। जीना होगा तो जीऊंगा, मरना होगा तो मरूंगा; लेकिन घर किसी तरह भी न जाऊंगा।

यह जोर पाकर मुंशीजी फिर अध्यक्ष से मिन्नतें करने लगे। लेकिन वह कायदे का पाबन्द आदमी कुछ सुनता ही न था। अगर छूत की बीमारी हुई और किसी दूसरे लड़के को छूत लग गई, तो कौन उसका जवाबदेह होगा ? इस तर्क के सामने मुंशीजी की कानूनी दलीलें भी मात हो गयीं।

आखिर मुंशीजी ने मंसाराम से कहा—बेटा, तुम्हें घर चलने से क्यों इनकार हो रहा है ? वहां तो सभी तरह का आराम होगा।

मुंशीजी ने कहने को यह बात कह दी, लेकिन डर रहे थे कि कहीं मंसाराम चलने पर राजी न हो जाय। वह मंसाराम को अस्पताल में रखने का कोई बहाना खोज रहे थे। और उसकी सारी जिम्मेदारी मंसाराम ही के सिर पर डालना चाहते थे। वह अध्यक्ष के सामने की बात थी, और वह इस बात की साक्षी दे सकते थे कि मंसाराम अपनी जिद से अस्पताल जा रहा है। मुंशीजी का इसमें लेशमात्र भी दोष नहीं है।

मंसाराम ने झल्लाकर कहा—नहीं, नहीं, सौ बार नहीं ! मैं घर नहीं जाऊंगा। मुझे अस्पताल ले चलिए और घर के सब आदमियों को मना कर दीजिए कि मुझे देखने न आएं। मुझे कुछ नहीं हुआ है। बिलकुल बीमार नहीं हूं। आप मुझे छोड़ दीजिए, मैं अपने पांव से चल सकता हूं।

वह उठ खड़ा हुआ और उन्मत्त की भांति द्वार की ओर चला; लेकिन पैर लड़खड़ा गए। यदि मुंशीजी ने संभाल न लिया होता, तो उसे बड़ी चोट आती। लेकिन नौकरों की मदद से मुंशीजी उसे बग्घी के पास लाये और अन्दर बिठा लिया।

गाड़ी अस्पताल की ओर चली। वही हुआ जो मुंशीजी चाहते थे। इस शोक से भी उनका चित्त संतुष्ट न था। लड़का अपनी इच्छा से अस्पताल जा रहा था; क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं था कि घर से इसे कोई स्नेह नहीं है ? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मंसाराम निर्दोष है ! वह उस पर अकारण ही भ्रम कर रहे थे।

लेकिन जरा ही देर में इस तुष्टि की जगह उनके मन में ग्लानि का भाव जागृत हुआ। वह अपने प्राणप्रिय पुत्र को घर न ले जाकर अस्पताल लिये जा रहे थे। उनके विशाल भवन में उनके पुत्र के लिए जगह न थी, उस दशा में भी जबकि उसका जीवन संकट में पड़ा हुआ था। कितनी विडम्बना है।

एक क्षण के बाद एकाएक मुंशीजी के मन में प्रश्न उठा—कहीं मंसाराम उनके भावों को ताड़ तो नहीं गया ? इसीलिए तो उसे घर से घृणा नहीं हो गई है ! अगर ऐसा है, तो गजब हो जायेगा।

उस अनर्थ की कल्पना ही से मुंशीजी के रोएं खड़े हो गए और कलेजा धक-धक करने लगा। हृदय में एक धक्का-सा लगा। अगर इस ज्वर का यही कारण है, तो ईश्वर ही मालिक है। इस समय उनकी दशा अत्यन्त दयनीय थी। वह आग, जो उन्होंने अपने ठिठुरे हुए हाथों को सेंकने के लिए जलायी थी, अब उनके घर में लगी जा रही थी। इस करुणा, शोक, पश्चात्ताप और शंका से उनका चित्त घबरा उठा। उनके गुप्त रोदन की ध्वनि बाहर निकल सकती, तो सुननेवाले रो पड़ते। उनके आंसू बाहर निकल सकते, तो उनका तार बंध जाता। वेदना से विकल होकर उन्होंने उसे छाती से लगा

लिया और इतना रोए कि हिचकी बंध गई।

सामने अस्पताल का फाटक दिखाई दे रहा था।

ग्यारह

मुंशी तोताराम सन्ध्या के समय कचहरी से घर पहुंचे, तो निर्मला ने पूछा—उन्हें देखा, क्या हाल है ? मुंशीजी ने देखा कि निर्मला के मुख पर नाम-मात्र को भी चिन्ता का चिन्ह नहीं है, उसका बनाव-शृंगार और दिनों से भी कुछ गाढ़ा हुआ है। मसलन वह गले में हार न पहनती थी, पर आज वह भी गले में शोभा दे रहा था। झूमर से भी उसे बहुत प्रेम न था, पर आज वह भी महीन रेशमी साड़ी के नीचे, काले-काले केशों के ऊपर फानूस के दीपक की भांति चमक रहा था।

मुंशीजी ने मुंह फेरकर कहा—बीमार है, और क्या हाल बताऊं ?

निर्मला—तुम तो उन्हें यहां लाने गए थे ?

मुंशीजी ने झुंझलाकर कहा—वह नहीं आता तो क्या मैं जबरदस्ती उठा लाता ? कितना समझाया कि बेटा, घर चलो, वहां तुम्हें कोई तकलीफ न होने पाएगी; लेकिन घर का नाम सुनकर उसे दूना ज्वर हो जाता था। कहने लगा—मैं यहां मर जाऊंगा, लेकिन घर न जाऊंगा। आखिर मजबूर होकर अस्पताल पहुंचाया, और क्या करता ?

रुक्मिणी भी आकर बरामदे में खड़ी हो गईं, बोलीं—वह जन्म का हठी है। यहां किसी तरह न आएगा और यह भी देख लेना, वहां अच्छा भी न होगा !

मुंशीजी ने कातर स्वर में कहा—तुम दो-चार दिन के लिए वहां चली जाओ, तो बड़ा अच्छा होगा, बहन ! तुम्हारे रहने से उसे तस्कीन होती रहेगी ! मेरी बहन, मेरी विनय मान लो। अकेले वह रो-रोकर प्राण दे देगा। बस, 'हाय अम्मा, हाय अम्मा !' की रट लगाकर रोया करता है।

मैं वहीं जा रहा हूं, मेरे साथ ही चली चलो। उसकी दशा अच्छी नहीं। बहन, वह सूरत ही नहीं रही। देखें, ईश्वर क्या करते हैं?

यह कहते-कहते मुंशीजी की आंखों से आंसू बहने लगे, लेकिन रुक्मिणी अविचलित भाव से बोलीं—मैं जाने को तैयार हूं। मेरे वहां रहने से अगर मेरे लाल के प्राण बच जाएं तो मैं सिर के बल दौड़ी जाऊं, लेकिन मेरी बात गिरह में बांध लो, भैया! वहां वह अच्छा न होगा। मैं उसे खूब पहचानती हूं। उसे कोई बीमारी नहीं है, केवल घर से निकाले जाने का शोक है। यही दुख ज्वर के रूप में प्रकट हुआ। तुम एक नहीं, लाख दवा करो—सिविल सर्जन को ही क्यों न दिखाओ, उसे कोई दवा असर न करेगी।

मुंशीजी—बहन, उसे घर से निकाला किसने है? मैंने तो केवल पढ़ाई के खयाल से वहां भेजा था।

रुक्मिणी—तुमने चाहे जिस खयाल से भेजा हो; लेकिन यह बात उसे लग गई। मैं तो अब किसी गिनती में नहीं हूं, मुझे किसी बात में बोलने का कोई अधिकार नहीं। मालिक तुम, मालकिन तुम्हारी स्त्री। मैं तो केवल तुम्हारी रोटियों पर पड़ी हुई अभागिन विधवा हूं। मेरी कौन सुनेगा और परवाह करेगा? लेकिन बिना बोले रहा नहीं जाता। मंसा तभी अच्छा होगा, जब घर आएगा—जब तुम्हारा हृदय वही हो जाएगा, जो पहले था।

यह कहकर रुक्मिणी वहां से चली गयीं। उनकी ज्योतिहीन पर अनुभवपूर्ण आंखों के सामने जो चरित्र हो रहे थे, उनका रहस्य वह खूब समझती थीं; और उनका सारा क्रोध निरपराधिन निर्मला पर ही उतरता था। इस समय भी वह कहते-कहते रुक गयीं कि जब तक यह लक्ष्मी इस घर में रहेगी; इस घर की दशा बिगड़ती ही जायगी। पर उनके प्रकट रूप से न कहने पर भी उनका आशय मुंशीजी से छिपा नहीं रहा। उनके चले जाने पर मुंशीजी ने सिर उठा लिया और सोचने लगे। उन्हें अपने ऊपर इस समय इतना क्रोध आ रहा था कि दीवार से सिर पटककर प्राणों का अन्त कर दें। उन्होंने क्यों विवाह किया था? विवाह करने की जरूरत क्या थी? ईश्वर ने उन्हें एक नहीं, तीन-तीन पुत्र दिये थे। उनकी अवस्था भी पचास के लगभग पहुंच गई थी, फिर उन्होंने क्यों विवाह क्या?

क्या इसी बहाने ईश्वर को उनका सर्वनाश मंजूर था! उन्होंने सिर

उठाकर एक बार निर्मला की सहास, पर निश्चल मूर्ति देखी और अस्पताल चले गए। निर्मला की सहास छवि ने उनका चित्त शान्त कर दिया था। आज कई दिनों के बाद उन्हें यह शान्ति मयस्सर हुई थी। प्रेम-पीड़ित हृदय इस दशा में क्या शांत और अविचलित रह सकता है ? नहीं, कभी नहीं। हृदय की चोट भाव-कौशल से नहीं छिपाई जा सकती। अपने चित्त की दुर्बलता पर इस समय उन्हें अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन्होंने अकारण ही सन्देह को हृदय में स्थान देकर इतना अनर्थ किया। मंसाराम की ओर से भी उनका मन निःशंक हो गया। हां, उसकी जगह अब एक नई शंका उत्पन्न हो गई। क्या मंसाराम भांप तो नहीं गया ? क्या भांपकर ही तो आने से इनकार नहीं कर रहा है ? अगर वह भांप गया है, तो महान् अनर्थ हो जाएगा। इस कल्पना से ही उनका मन दहल उठा; उनकी देह की सारी हड्डियां मानो इस हाहाकार पर पानी डालने के लिए व्याकुल हो उठीं।

उन्होंने कोचवान से घोड़े को तेज चलाने को कहा। कई दिनों के बाद उनके हृदय-मण्डल पर छाया घन फट गया था और प्रकाश की लहरें अन्दर से निकलने के लिए व्यग्र हो रही थीं। उन्होंने बाहर सिर निकालकर देखा कोचवान सो तो नहीं रहा है। घोड़े की चाल उन्हें इतनी मन्द कभी न मालूम हुई थी। अस्पताल पहुंचकर लपके हुए मंसाराम के पास गए। देखा तो डॉक्टर साहब उसके सामने चिन्ता में मग्न खड़े थे। मुंशीजी के हाथ-पांव फूल गए। मुंह से शब्द न निकल सका। भरभराई हुई आवाज में बड़ी मुश्किल से बोले—क्या हाल है, डॉक्टर साहब ? यह कहते-कहते वह रो पड़े और जब डॉक्टर साहब को उनके प्रश्न का उत्तर देने में एक क्षण विलम्ब हुआ तब तो उनके प्राण वहीं समा गए। उन्होंने पलंग पर बैठकर अचेत बालक को गोद में उठा लिया और बालकों की भांति सिसक-सिसककर रोने लगे। मंसाराम की देह तवे की तरह जल रही थी। मंसाराम ने एक बार आंखें खोलीं। आह, कितनी भयंकर और उसके साथ ही कितनी दीन दृष्टि थी ! मुंशीजी ने बालक को कण्ठ से लगाकर डॉक्टर से पूछा—क्या हाल है, डॉक्टर साहब ? आप चुप क्यों हैं ?

डॉक्टर ने संदिग्ध स्वर से कहा—हाल जो कुछ है, वह आप देख ही रहे हैं। 106 डिग्री का ज्वर है; और मैं क्या बताऊं ? अभी ज्वर का प्रकोप बढ़ता

ही जाता है। मेरे किए जो कुछ हो सकता है, कर रहा हूं। ईश्वर मालिक है। जब से आप गए हैं, एक मिनट के लिए भी यहां से नहीं हिला। भोजन तक नहीं कर सका। हालत इतनी नाजुक है कि एक मिनट में क्या हो जाएगा, नहीं कहा जा सकता। यह महाज्वर है, बिलकुल होश नहीं है। रह-रहकर डिलिरियम (Delirium) का दौरा-सा हो जाता है। क्या घर पर इन्हें किसी ने कुछ कहा है ? बार-बार, 'अम्माजी तुम कहां हो' यही आवाज मुंह से निकलती है।

डॉक्टर साहब कह ही रहे थे कि सहसा मंसाराम उठकर बैठ गया और धक्के से मुंशीजी को चारपाई के नीचे ढकेल, उन्मत्त स्वर में बोला—क्यों धमकाते हैं आप ? मार डालिए, मार डालिए; अभी मार डालिए ! तलवार नहीं मिलती ? रस्सी का फन्दा है। या वह भी नहीं ? मैं अपने गले में लगा लूंगा। हाय अम्मा, तुम कहां हो ? यह कहते-कहते वह फिर अचेत होकर गिर पड़ा।

मुंशीजी एक क्षण तक मंसाराम की शिथिल मुद्रा की ओर व्यथित नेत्रों से ताकते रहे; फिर सहसा उन्होंने डॉक्टर साहब का हाथ पकड़ लिया और अत्यन्त दीनतापूर्ण आग्रह से बोले—डॉक्टर साहब, इस लड़के को बचा लीजिए, ईश्वर के लिए बचा लीजिए, नहीं तो मेरा सर्वनाश हो जाएगा। मैं अमीर हूं, लेकिन आप जो कुछ कहेंगे, वह हाजिर करूंगा, इसे बचा लीजिए। आप बड़े-बड़े डॉक्टरों को बुलाइए और उनकी राय लीजिए। मैं··· मैं सब खर्च दूंगा ! इसकी यह दशा नहीं देखी जाती ! हाय, मेरा होनहार बेटा !

डॉक्टर साहब ने करुण स्वर में कहा—बाबू साहब, मैं आपसे सत्य कह रहा हूं कि मैं इनके लिए अपनी तरफ से कोई बात उठा नहीं रख रहा हूं। अब आप दूसरे डॉक्टरों से सलाह लेने को कहते हैं। अभी डॉक्टर लहरी, डॉक्टर भाटिया और डॉक्टर माथुर को बुलाता हूं। विनायक शास्त्री को भी बुलाए लेता हूं, लेकिन मैं आपको व्यर्थ का आश्वासन नहीं देना चाहता—हालत नाजुक है।

मुंशीजी ने रोते हुए कहा—नहीं डॉक्टर साहब, यह शब्द मुंह से न निकालिए। हालत इसके दुश्मनों की नाजुक हो। ईश्वर मुझ पर इतना कोप न करेंगे। आप कलकत्ता और बम्बई के डॉक्टरों को तार दीजिए। मैं

जिन्दगी-भर आपकी गुलामी करूँगा। यही मेरे कुल का दीपक है। यही मेरे जीवन का आधार है। मेरा हृदय फटा जा रहा है। कोई ऐसी दवा दीजिए, जिसमें इसे होश आ जाये। मैं जरा अपने कानों से इसकी बात सुनूं कि इसे क्या कष्ट हो रहा है? हाय मेरा बच्चा!

डॉक्टर—आप जरा दिल को तस्कीन दीजिए। आप बुजुर्ग आदमी हैं, यों हाय-हाय करने और डॉक्टरों की फौज जमा करने से कोई नतीजा न निकलेगा। शांत होकर बैठिए। मैं शहर के डॉक्टरों को बुला रहा हूं, देखिए क्या कहते हैं। आप तो खुद ही बदहवास हुए जाते हैं।

मुंशीजी—अच्छा डॉक्टर साहब, मैं अब न बोलूंगा, जबान तक न खोलूंगा। आप जो चाहें करें, बच्चा अब आपके हाथ में है। आप ही उसकी रक्षा कर सकते हैं। मैं इतना ही चाहता हूं कि जरा इसे होश आ जाये; मुझे पहचान ले, मेरी बातें समझने लगे। क्या कोई ऐसी संजीवनी बूटी नहीं कि मैं इससे दो-चार बातें कर लेता?

यह कहते-कहते मुंशीजी आवेश में आकर मंसाराम से बोले—बेटा, जरा आंखें खोलो; कैसा जी है! मैं तुम्हारे पास बैठा रो रहा हूं। मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है, मेरा दिल तुम्हारी तरफ से साफ है।

डॉक्टर—फिर आपने अनर्गल बातें करनी शुरू कीं। अरे साहब, आप बच्चे नहीं हैं—बुजुर्ग आदमी हैं, जरा धैर्य से काम लीजिए।

मुंशीजी—अच्छा डॉक्टर साहब, अब न बोलूंगा, खता हुई। आप जो चाहें कीजिए। मैंने सबकुछ आप पर छोड़ दिया। कोई उपाय ऐसा नहीं है जिससे मैं इसे इतना समझा सकूं कि मेरा दिल साफ है? आप ही कह दीजिए, डॉक्टर साहब, कह दीजिए, तुम्हारा अभागा पिता बैठा रो रहा है। उसका दिल तुम्हारी तरफ से बिलकुल साफ है। उसे कुछ भ्रम हुआ था। वह अब दूर हो गया। बस, इतना ही कह दीजिए, मैं और कुछ नहीं चाहता। मैं चुपचाप बैठा हूं। जबान तक नहीं खोलता; लेकिन आप इतना जरूर कह दीजिए।

डॉक्टर—ईश्वर के लिए बाबू साहब, जरा सब्र कीजिए, वरना मुझे मजबूर होकर आपसे कहना पड़ेगा कि घर जाइए। जरा दफ्तर में जाकर डॉक्टरों को खत लिख रहा हूं। चुपचाप बैठे रहिए।

निर्दयी डॉक्टर। जवान बेटे की यह दशा देखकर कौन पिता है, जो

धैर्य से काम लेगा ? मुंशीजी बहुत गम्भीर स्वभाव के मनुष्य थे। यह भी जानते थे कि इस समय हाय-हाय मचाने से कोई नतीजा नहीं, लेकिन फिर भी इस समय शांत बैठना उनके लिए असंभव था। अगर दैव-गति से वह बीमार होता, तो वह शांत हो सकते थे, दूसरों को समझा सकते थे, खुद डॉक्टरों को बुला सकते थे। लेकिन क्या यह जानकर भी धैर्य रख सकते थे कि यह सब आग उनकी ही लगायी हुई है ? कोई पिता इतना वज्र-हृदय हो सकता है ? उनका रोम-रोम इस समय उन्हें धिक्कार रहा था। उन्होंने सोचा, मुझे यह दुर्भावना उत्पन्न ही क्यों हुई ? मैंने क्यों बिना किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के ऐसी भीषण कल्पना कर डाली ? अच्छा, मुझे उस दशा में क्या करना चाहिए था ? जो कुछ उन्होंने किया, उसके सिवाय वह और क्या करते—इसका वह निश्चय न कर सके। वास्तव में विवाह के बन्धन में पड़ना ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना था। हां, यही सारे उपद्रव की जड़ है।

मगर यह मैंने कोई अनोखी बात नहीं की। सभी स्त्री-पुरुष विवाह करते हैं। उनका जीवन आनन्द से कटता है। आनन्द की इच्छा से ही तो हम विवाह करते हैं। मुहल्ले के सैकड़ों आदमियों ने दूसरी, तीसरी, चौथी, यहां तक कि सातवीं शादियां की हैं और मुझसे भी कहीं अधिक अवस्था में। वह जब तक जिए, आराम से ही जिए। यह भी नहीं हुआ कि सभी स्त्री से पहले मर गए हों। दुहाज-तिहाज होने पर भी कितने ही रंडुए हो गए। अगर मेरी जैसी दशा सबकी होती, तो विवाह का नाम ही कौन लेता ? मेरे पिताजी ने पचपनवें वर्ष में विवाह किया था और मेरे जन्म के समय उनकी अवस्था साठ से कम न थी। हां, इतनी बात जरूर है कि तब और अब में कुछ अन्तर हो गया है। पहले स्त्रियां पढ़ी-लिखी न होती थीं। पति चाहे कैसा ही हो, उसे पूज्य समझती थीं, यह बात हो कि पुरुष सबकुछ देखकर भी बेहयाई से काम लेता हो, अवश्य यही बात है। जब युवक वृद्धा के साथ प्रसन्न नहीं रह सकता, तो युवती क्यों किसी वृद्ध के साथ प्रसन्न रहने लगी।

लेकिन मैं तो कुछ ऐसा बुड्ढा न था। मुझे देखकर कोई चालीस से अधिक नहीं बता सकता। कुछ भी हो, जवानी ढल जाने पर जवान औरत से विवाह करके कुछ-न-कुछ बेहयाई जरूर करनी पड़ती है, इसमें सन्देह नहीं।

स्त्री स्वभाव से लज्जाशील होती है। कुलटाओं की बात दूसरी है, साधारणतः स्त्री पुरुष से कहीं ज्यादा संयमशील होती है। जोड़ का पति पाकर वह परपुरुष से हंसी-दिल्लगी कर ले, उसका मन शुद्ध रहता है। बेजोड़ विवाह हो जाने से वह चाहे किसी की ओर आंखें उठाकर न देखे, पर उसका चित्त दुःखी रहता है। वह पक्की दीवार है, उसमें सबरी का असर नहीं होता; यह कच्ची दीवार है और उसी वक्त तक खड़ी रहती है जब तक उस पर सबरी न चलायी जाये।

इन्हीं विचारों में पड़े-पड़े मुंशीजी को एक झपकी आ गई, मन के भावों ने तत्काल स्वप्न का रूप धारण कर लिया। क्या देखते हैं कि उनकी पहली स्त्री मंसाराम के सामने कह रही है—स्वामी, यह तुमने क्या किया ? जिस बालक को मैंने अपना रक्त पिला-पिलाकर पाला, उसको तुमने इतनी निर्दयता से मार डाला ! ऐसे आदर्श-चरित्र बालक पर तुमने इतना घोर कलंक लगा दिया ? अब बैठे क्या बिसूरते हो ? तुमने उससे हाथ धो लिया ! मैं तुम्हारे निर्दयी हाथों से छीनकर उसे अपने साथ लिये जाती हूं। तुम तो इतने शक्की कभी न थे। क्या विवाह करते ही शक को भी गले बांध लाये ? इस कोमल हृदय पर इतना कठोर आघात ! इतना भीषण कलंक ! इतना बड़ा अपमान सहकर जीनेवाले कोई बेहया होंगे ! मेरा बेटा नहीं सह सकता। यह कहते-कहते उसने बालक को गोद में उठा लिया और चली गई। मुंशीजी ने रोते हुए उसकी गोद से मंसाराम को छीनने के लिए हाथ बढ़ाया, तो आंखें खुल गयीं और डॉक्टर लहरी, डॉक्टर भाटिया आदि आधे दर्जन डॉक्टर उनके सामने खड़े दिखाई दिये।

बारह

तीन दिन गुजर गये और मुंशीजी घर न आये। रुक्मिणी दोनों वक्त जातीं और मंसाराम को देख आती थीं। दोनों लड़के भी जाते थे, पर निर्मला

कैसे जाती ? उसके पैरों में तो बेड़ियां पड़ी हुई थीं । वह मंसाराम की बीमारी का हाल-चाल जानने के लिए व्यग्र रहती थी । यदि रुक्मिणी से कुछ पूछती थी तो ताने मिलते थे और लड़कों से पूछती तो बेसिर-पैर की बात करने लगते । एक बार खुद जाकर देखने के लिए उसका चित्त व्याकुल हो रहा था । उसे यह भय होता था कि सन्देह ने कहीं मुंशीजी के पुत्र-प्रेम को शिथिल न कर दिया हो, कहीं उनकी कृपणता ही तो मंसाराम के अच्छे होने में बाधक नहीं हो रही है ! डॉक्टर किसी के सगे नहीं होते, उन्हें तो अपने पैसों से काम । मुर्दा दोजख में जाये या बहिश्त में ।

उसके मन में प्रबल इच्छा होती थी कि जाकर अस्पताल के डॉक्टर को एक हजार की थैली देकर कहे—इन्हें बचा दीजिए, यह थैली आपको भेंट है, पर उसके पास न तो इतने रुपये ही थे, न इतना साहस ही था । अब भी यदि वह वहां पहुंच सकती, तो मंसाराम अच्छा हो जाता । उसकी जैसी सेवा-सुश्रूषा होनी चाहिए, वैसी नहीं हो रही है, नहीं तो क्या तीन दिन तक ज्वर ही न उतरता ? यह दैहिक ज्वर नहीं, मानसिक ज्वर है और चित्त के शांत होने से ही इसका प्रकोप शांत हो सकता है । अगर वह वहां रात-भर बैठी रह सकती और मुंशीजी जरा भी मन मैला न कर सकते, तो कदाचित् मंसाराम को विश्वास हो जाता कि पिताजी का दिल साफ है, और फिर अच्छे होने में देर न लगती, लेकिन ऐसा होगा ? मुंशीजी उसे वहां देखकर प्रसन्नचित्त रह सकेंगे ? क्या अब भी उनका दिल साफ नहीं हुआ ? यहां से जाते समय तो ऐसा ज्ञात हुआ था कि वह प्रमाद पर पछता रहे हैं । ऐसा तो न होगा कि वहां जाते समय ही मुंशीजी का संदेह फिर भड़क उठे और वह बेटे की जान लेकर ही छोड़ें ?

इसी दुविधा में पड़े-पड़े तीन दिन गुजर गये और न घर में चूल्हा जला, न किसी ने कुछ खाया । लड़कों के लिए बाजार से पूड़ियां ली जाती थीं, रुक्मिणी और निर्मला भूखी ही सो जाती थीं । उन्हें भोजन की इच्छा ही न होती ।

चौथे दिन जियाराम स्कूल से लौटा, तो अस्पताल होता हुआ घर आया । निर्मला ने पूछा—क्यों भैया, अस्पताल भी गये थे ? आज क्या हाल है ? तुम्हारे भैया उठे या नहीं ?

जियाराम रुआंसा होकर बोला—अम्माजी, आज तो वह कुछ बोलते-चालते ही न थे। चुपचाप चारपाई पर पड़े जोर-जोर से हाथ-पांव पटक रहे थे।

निर्मला के चेहरे का रंग उड़ गया। घबराकर पूछा—तुम्हारे बाबूजी न थे ?

जियाराम—थे क्यों नहीं ! आज वह बहुत रोते थे।

निर्मला का कलेजा धक-धक करने लगा। पूछा—डॉक्टर लोग वहां न थे ?

जियाराम—डॉक्टर भी खड़े थे और आपस में कुछ सलाह कर रहे थे। सबसे बड़ा सिविल-सर्जन अंग्रेजी में कह रहा था कि मरीज की देह में कुछ ताजा खून डालना चाहिए। इस पर बाबूजी ने कहा, मेरी देह से जितना खून चाहें, ले लीजिए। सिविल-सर्जन ने हंसकर कहा—आपके खून से काम नहीं चलेगा, किसी जवान आदमी का ब्लड चाहिए। आखिर उसने पिचकारी से कोई दवा भैया के बाजू में डाल दी। चार अंगुल से कम की सुई नहीं रही होगी, पर भैया मिनके तक नहीं। मैंने तो मारे डर के आंखें बन्द कर लीं।

बड़े-बड़े महान् संकल्प आवेश में ही जन्म लेते हैं। कहां तो निर्मला भय से सूखी जाती थी, कहां उसके मुंह पर दृढ़ संकल्प की आभा झलक पड़ी। उसने अपनी देह का ताजा खून देने का निश्चय कर लिया। अगर उसके रक्त से मंसाराम के प्राण बच जायें, तो वह बड़ी खुशी से उसकी अन्तिम बूंद तक दें डालेगी। अब जिसका जो जी चाहे समझे, वह कुछ परवाह न करेगी। उसने जियाराम से कहा—तुम लपककर एक इक्का बुला लाओ, मैं अस्पताल जाऊंगी।

जियाराम—वहां इस वक्त बहुत से आदमी होंगे। जरा रात हो जाने दीजिए।

निर्मला—नहीं, तुम अभी इक्का बुला लो।

जियाराम—कहीं बाबूजी बिगड़ें न !

निर्मला—बिगड़ने दो। तुम अभी जाकर सवारी लाओ।

जियाराम—मैं कह दूंगा, अम्माजी ही ने मुझसे सवारी मंगायी थी।

निर्मला—कह देना।

जियाराम उधर तांगा लाने गया, इतनी देर में निर्मला नें सिर में कंघी की, जूड़ा बांधा, कपड़े बदले, आभूषण पहने, पान खाया और द्वार पर आकर तांगे की राह देखने लगी।

रुक्मिणी अपने कमरे में बैठी हुई थीं। उसे इस तैयारी से जाते देखकर बोलीं—कहां जाती हो बहू ?

निर्मला—जरा अस्पताल तक जाती हूं।

रुक्मिणी—वहां जाकर क्या करोगी ?

निर्मला—कुछ नहीं, करूंगी क्या ? करनेवाले तो भगवान् हैं। देखने को जी चाहता है।

रुक्मिणी—मैं कहती हूं, मत जाओ।

निर्मला ने विनीत भाव से कहा—अभी चली आऊंगी, दीदीजी ! जियाराम कह रहे हैं कि इस वक्त उनकी हालत अच्छी नहीं है। जी नहीं मानता, आप भी चलिए न ?

रुक्मिणी—मैं देख आयी हूं। इतना समझ लो कि अब बाहरी खून पहुंचाने पर ही जीवन की आशा है। कौन अपना ताजा खून देगा, और क्यों देगा ? उसमें भी तो प्राणों का भय है !

निर्मला—इसीलिए तो जाती हूं। मेरे खून से क्या काम न चलेगा ?

रुक्मिणी—चलेगा क्यों नहीं, जवान ही का तो खून चाहिए, लेकिन तुम्हारे खून से मंसाराम की जान बचे, इससे यह कहीं अच्छा है कि उसे पानी में बहा दिया जाये !

तांगा आ गया। निर्मला और जियाराम दोनों जा बैठे। तांगा चला।

रुक्मिणी द्वार पर खड़ी देर तक रोती रहीं। आज पहली बार उन्हें निर्मला पर दया आयी। उनका बस होता, तो वह निर्मला को बांध रखतीं। करुणा और सहानुभूति का आवेश उसे कहां लिये जाता है, यह वह अप्रकट रूप से देख रही थीं। आह ! यह दुर्भाग्य की प्रेरणा है। सर्वनाश का मार्ग है।

निर्मला अस्पताल पहुंची, तो दीपक जल चुके थे। डॉक्टर लोग अपनी राय देकर विदा हो चुके थे। मंसाराम का ज्वर कुछ कम हो गया था। वह टकटकी लगाए हुए द्वार की ओर देख रहा था। उसकी दृष्टि उन्मुक्त आकाश की ओर लगी हुई थी, मानो किसी देवता की प्रतीक्षा कर रहा हो ! वह

कहां है, इसका उसे ज्ञान न था ।

सहसा निर्मला को देखते ही वह चौंककर उठ बैठा । उसकी समाधि टूट गई । उसकी विलुप्त चेतना प्रदीप्त हो गई । उसे अपनी स्थिति का, अपनी दशा का ज्ञान हो गया, मानो कोई भूली हुई बात याद आ गई हो । उसने आंखें फाड़कर निर्मला को देखा और मुंह फेर लिया ।

एकाएक मुंशीजी तीव्र स्वर में बोले—तुम यहां क्या करने आयीं ?

निर्मला अवाक् रह गई । वह बतलाए कि क्या करने आयी ? इतने सीधे से प्रश्न का भी वह क्या कोई जवाब दे सकी ? वह क्या करने आयी थी ? इतना जटिल प्रश्न किसके सामने आया होगा ? घर का आदमी बीमार है, उसे देखने आयी है, यह बात क्या बिना पूछे मालूम न हो सकती थी ? फिर यह प्रश्न क्यों ?

वह हतबुद्धि-सी खड़ी रही, मानो संज्ञाहीन हो गई हो । उसने दोनों लड़कों से शोक और संताप की बातें सुनकर यह अनुभव किया था कि अब उनका दिल साफ हो गया है । पर अब उसे ज्ञात हुआ कि वह भ्रम था । हां, वह महाभ्रम था । अगर वह जानती कि आंसुओं की वृष्टि ने भी सन्देह की अग्नि शांत नहीं की, तो वह कदापि न आती । वह कुढ़-कुढ़कर मर जाती, पर घर से पांवं न निकालती ।

मुंशीजी ने फिर वही प्रश्न किया—तुम यहां क्यों आयीं ?

निर्मला ने निःशंक भाव से उत्तर दिया—आप यहां क्या करने आये हैं ?

मुंशीजी के नथुने फड़कने लगे । वह झल्लाकर चारपाई से उठे और निर्मला का हाथ पकड़कर बोले—तुम्हारे यहां आने की कोई जरूरत नहीं । जब मैं बुलाऊं तब आना, समझ गयीं ?

अरे ! यह क्या अनर्थ हुआ ! मंसाराम जो चारपाई से हिल न सकता था, उठकर खड़ा हो गया और निर्मला के पैरों पर गिरकर रोते हुए बोला—अम्माजी, इस अभागे के लिए आपको व्यर्थ इतना कष्ट हुआ । मैं आपका स्नेह कभी न भूलूंगा । ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा पुनर्जन्म आपके गर्भ से हो, जिससे मैं आपके ऋण से उऋण हो सकूं । ईश्वर जानता है, मैंने आपको विमाता नहीं समझा । मैं आपको अपनी माता समझता रहा ।

आपकी उम्र मुझसे बहुत ज्यादा न हो, लेकिन आप मेरी माता के स्थान पर थीं और मैंने आपको सदैव उसी दृष्टि से देखा···अब नहीं बोला जाता अम्माजी, क्षमा कीजिए ! यह अन्तिम भेंट है ।

निर्मला ने अश्रुप्रवाह को रोकते हुए कहा—तुम ऐसी बातें क्यों करते हो ? दो-चार दिन में अच्छे हो जाओगे ।

मंसाराम ने क्षीण स्वर से कहा—अब जीने की इच्छा नहीं और न बोलने की शक्ति ही है ।

यह कहते-कहते मंसाराम अशक्त होकर जमीन पर लेट गया । निर्मला ने पति की ओर निर्भय नेत्रों से देखते हुए कहा—डॉक्टरों ने क्या सलाह दी ?

मुंशीजी—सबके सब भंग खा गये हैं, कहते हैं ताजा खून चाहिए ?

निर्मला—ताजा खून मिल जाये, तो प्राण-रक्षा हो सकती है ?

मुंशीजी ने निर्मला की ओर तीव्र नेत्रों से देखकर कहा—मैं ईश्वर नहीं हूं और न डॉक्टर ही को ईश्वर समझता हूं ।

निर्मला—ताजा खून तो ऐसी अलभ्य वस्तु नहीं ।

मुंशीजी—आकाश के तारे भी तो अलभ्य नहीं । मुंह के सामने खन्दक क्या चीज है ?

निर्मला—मैं अपना खून देने को तैयार हूं । डॉक्टर को बुलाइए ।

मुंशीजी ने विस्मित होकर कहा—तुम ?

निर्मला—हां ! क्या मेरे खून से काम न चलेगा ?

मुंशीजी—तुम अपना खून दोगी ? नहीं, तुम्हारे खून की जरूरत नहीं, इसमें प्राणों का भय है ।

निर्मला—मेरे प्राण और किस दिन काम आएंगे ?

मुंशीजी ने सजल नेत्र होकर कहा—नहीं निर्मला, उसका मूल्य अब मेरी निगाहों में बहुत बढ़ गया है । आज तक वह मेरे भोग की वस्तु थी; आज से वह भक्ति की वस्तु है । मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है, क्षमा करो ।

तेरह

जो कुछ होना था हो गया, किसी की कुछ न चली। डॉक्टर साहब निर्मला की देह से रक्त निकालने की चेष्टा कर ही रहे थे कि मंसाराम अपने उज्ज्वल चरित्र की अंतिम झलक दिखाकर इस भ्रम-लोक से विदा हो गया। कदाचित् इतनी देर तक उसके प्राण निर्मला की ही राह देख रहे थे। उसे निष्कलंक सिद्ध किए बिना वे देह को कैसे त्याग देते ? अब उनका उद्देश्य पूरा हो गया। मुंशीजी को निर्मला के निर्दोष होने का विश्वास हो गया, पर कब ? जब हाथ से तीर निकल चुका था—जब मुसाफिर ने रकाब में पांव डाल दिया था।

पुत्रशोक से मुंशीजी का जीवन भारस्वरूप हो गया। उस दिन से फिर उनके ओंठों पर हंसी न आयी। यह जीवन उन्हें व्यर्थ-सा जान पड़ता था। कचहरी जाते, मगर मुकदमों की पैरवी करने के लिए नहीं, केवल दिल बहलाने के लिए। घंटे-दो घंटे में वहां से उकताकर चले आते। खाने बैठते तो कौर मुंह में न जाता। निर्मला अच्छी-से-अच्छी चीज पकाती, पर मुंशीजी दो-चार कौर से अधिक न खा सकते। ऐसा जान पड़ता, कि कौर मुंह से निकला जाता है। मंसाराम के कमरे की ओर जाते ही उनका हृदय टूक-टूक हो जाता था। जहां उनकी आशाओं का दीपक जलता रहता था, वहां अब अंधकार छाया हुआ था। उनके दो पुत्र अब भी थे, लेकिन जब दूध देती हुई गाय मर गई; तो बछिया का क्या भरोसा ? जब फलने-फूलनेवाला वृक्ष गिर पड़ा तो नन्हें-नन्हें पौधों की क्या आशा ? यों तो जवान-बूढ़े सभी मरते हैं, लेकिन दुःख इस बात का था कि उन्होंने स्वयं लड़के की जान ली। जिस दम यह बात याद आ जाती; तो ऐसा मालूम होता था कि उनकी छाती फट जाएगी—मानो हृदय बाहर निकल पड़ेगा।

निर्मला को पति से सच्ची सहानुभूति थी। जहां तक हो सकता था, वह उनको प्रसन्न रखने की फिक्र रखती थी और भूलकर भी पिछली बातें जबान पर न लाती थी। मुंशीजी उससे मंसाराम की कोई चर्चा करते शरमाते थे। उनकी कभी-कभी ऐसी इच्छा होती कि एक बार निर्मला से अपने दिल के सारे भाव खोलकर कह दूं, लेकिन लज्जा जबान रोक लेती थी। इस भांति

उन्हें सांत्वना भी न मिलती थी, जो अपनी व्यथा कह डालने से, दूसरे को अपने गम में शरीक कर लेने से प्राप्त होती है। मवाद बाहर न निकलकर अन्दर-ही-अन्दर विष फैलाता जाता था। दिन-दिन देह घुलती जाती थी।

इधर कुछ दिन से मुंशीजी और उन डॉक्टर साहब में, जिन्होंने मंसाराम की दवा की थी, याराना हो गया था। बेचारे कभी-कभी आकर मुंशीजी को समझाया करते थे, कभी-कभी अपने साथ हवा खिलाने के लिए खींच ले जाते। उनकी स्त्री दो-चार बार निर्मला से मिलने आयी थी। निर्मला भी कई बार उनके घर गयी थी, मगर वहां से जब लौटती, तो कई दिन तक उदास रहती। उस दम्पति का सुखमय जीवन देखकर उसे अपनी दशा पर दुःख हुए बिना न रहता था। डॉक्टर साहब को 200 रुपये मिलते थे, पर इतने ही में दोनों आनन्द से जीवन व्यतीत करते थे। घर में केवल एक महरी थी, गृहस्थी का बहुत-सा काम स्त्री को अपने ही हाथों करना पड़ता था। गहने भी उसकी देह पर बहुत कम थे, पर उन दोनों में वह प्रेम था, जो धन की तृण बराबर परवाह नहीं करता। पुरुष को देखकर स्त्री का चेहरा खिल उठता था, स्त्री को देखकर पुरुष निहाल हो जाता था।

निर्मला के घर में धन इससे कहीं अधिक था—आभूषणों से उसकी देह फट पड़ती थी—घर का कोई काम उसे अपने हाथों से न करना पड़ता था, पर निर्मला संपन्न होने पर अधिक दुःखी थी, और सुधा विपन्न होने पर भी सुखी। सुधा के पास कोई ऐसी वस्तु न थी, जो निर्मला के पास न थी, जिसके सामने उसे अपना वैभव तुच्छ जान पड़ता था। यहां तक कि वह सुधा के घर गहने पहनकर जाते शरमाती थी।

एक दिन निर्मला डॉक्टर साहब के घर आयी, तो उसे बहुत उदास देखकर सुधा ने पूछा—बहन, आज बहुत उदास हो, वकील साहब की तबीयत तो अच्छी है न ?

निर्मला—क्या कहूं सुधा ? उनकी दशा दिन-दिन खराब होती जाती है—कुछ कहते नहीं बनता। न जाने ईश्वर को क्या मंजूर है ?

सुधा—हमारे बाबूजी तो कहते हैं कि उन्हें कहीं जलवायु बदलने के लिए जाना जरूरी है, नहीं तो कोई भयंकर रोग खड़ा हो जाएगा। कई बार वकील साहब से कह चुके हैं। पर वह यही कह दिया करते हैं, मैं तो बहुत

अच्छी तरह हूं—मुझे कोई शिकायत नहीं। आज तुम कहना।

निर्मला—जब डॉक्टर साहब की नहीं सुनते तो मेरी क्या सुनेंगे ?

यह कहते-कहते निर्मला की आंखें डबडबा गयीं, और जो शंका इधर महीनों से उसके मन को विकल करती थी, मुंह से निकल पड़ी। अब तक उसने शंका को छिपाया था, पर अब न छिपा सकी। बोली—बहन मुझे तो लक्षण कुछ अच्छे नहीं मालूम होते। देखें, भगवान् क्या करते हैं ?

सुधा—तुम उनसे आज खूब जोर देकर कहना कि कहीं जलवायु बदलना चाहिए। दो-चार महीने बाहर रहने से बहुत-सी बातें भूल जाएंगे। मैं तो समझती हूं, शायद मकान बदलने से भी उनका शोक कुछ कम हो जायेगा। लेकिन तुम कहीं बाहर जा भी तो न सकोगी। यह कौन-सा महीना है ?

निर्मला—आठवां महीना बीत रहा है। यह चिंता तो मुझे और भी मारे डालती है। मैंने तो इसके लिए ईश्वर से कभी प्रार्थना न की थी। यह बला मेरे सिर न जाने क्यों मढ़ दी ! मैं बड़ी अभागिन हूं ! बहन, विवाह के एक महीने पहले पिताजी का देहान्त हो गया। उनके मरते ही मेरे सिर पर सनीचर सवार हुए। जहां पहले विवाह की बातचीत पक्की हुई थी, उन लोगों ने आंखें फेर लीं। बेचारी अम्मा को हारकर मेरा विवाह यहां करना पड़ा। अब छोटी बहन का विवाह होनेवाला है। देखें, उसकी नाव किस घाट जाती है !

सुधा—जहां पहले विवाह की बातचीत हुई थी, उन लोगों ने इनकार क्यों कर दिया ?

निर्मला—यह तो वे ही जानें। पिताजी न रहे तो सोने की गठरी कौन देता ?

सुधा—यह तो नीचता है। कहां के रहनेवाले थे ?

निर्मला—लखनऊ के, नाम तो याद नहीं, आबकारी के कोई बड़े अफसर थे।

सुधा ने गम्भीर भाव से पूछा—और उनका लड़का क्या करता था ?

निर्मला—कुछ नहीं, कहीं पढ़ता था; पर था बड़ा होनहार।

सुधा ने सिर नीचा करके कहा—उसने अपने पिता से कुछ न कहा था ? वह तो जवान था, अपने बाप को दबा न सकता था ?

निर्मला—अब मैं क्या जानूं, बहन ! सोने की गठरी किसे प्यारी नहीं होती ? जो पंडित मेरे यहां से संदेश लेकर गया था, उसने तो कहा था कि लड़का ही इनकार कर रहा है। लड़के की मां अलबत्ता देवी थी। उसने पुत्र और पति दोनों ही को समझाया, पर उसकी कुछ न चली।

सुधा—मैं तो उस लड़के को पाती, तो खूब आड़े हाथों लेती !

निर्मला—मेरे भाग्य में जो लिखा था, वह हो चुका। बेचारी कृष्णा पर न जाने क्या बीतेगी।

सन्ध्या समय निर्मला के जाने के बाद डॉक्टर बाहर से आये, तो सुधा ने कहा—क्यों जी, तुम उस आदमी को क्या कहोगे, जो एक जगह विवाह ठीक कर लेने के बाद फिर लोभवश किसी दूसरी जगह संबंध कर ले ?

डॉक्टर सिन्हा ने स्त्री की ओर कुतूहल से देखकर कहा—ऐसा नहीं करना चाहिए, और क्या।

सुधा—यह क्यों नहीं कहते कि यह घोर नीचता है—परले सिरे का कमीनापन है !

सिन्हा—हां, यह कहने मैं मुझको इनकार नहीं।

सुधा—किसका अपराध बड़ा है—वर का या वर के पिता का ?

सिन्हा की समझ में अभी तक नहीं आया कि सुधा के इन प्रश्नों का आशय क्या है ? विस्मय से बोले—जैसी स्थिति हो। अगर वह पिता के अधीन हो तो पिता का ही अपराध समझो।

सुधा—अधीन होने पर भी क्या जवान आदमी का अपना कोई कर्त्तव्य नहीं है ? अगर उसे अपने लिए नये कोट की जरूरत हो, तो वह पिता के विरोध करने पर भी उसे रो-धोकर मनवा लेता है। क्या ऐसे महत्व के विषय में वह अपनी आवाज पिता के कानों तक नहीं पहुंचा सकता ? यह कहो कि वर और उसका पिता दोनों अपराधी हैं; परन्तु वह अधिक ! बूढ़ा आदमी सोचता है, मुझे सारा खर्च संभालना पड़ेगा, कन्या पक्ष से जितना ऐंठ सकूं, उतना ही अच्छा; मगर यह वर का धर्म है कि यदि वह स्वार्थ के हाथों बिलकुल बिक नहीं गया है, तो अपने आत्मबल का परिचय दे। अगर वह ऐसा नहीं करता, तो कहूंगी कि वह लोभी है और कायर भी। दुर्भाग्यवश ऐसा ही एक प्राणी मेरा पति भी है, और मेरी समझ में नहीं आता, किन

शब्दों में उनका तिरस्कार करूँ।

सिन्हा ने हिचकिचाते हुए कहा—वह··· वह··· वह दूसरी बात थी। लेन-देन का कारण नहीं था; बिलकुल दूसरी बात थी। कन्या के पिता का देहान्त हो गया था। ऐसी दशा में हम लोग क्या करते ? यह भी सुनने में आया कि कन्या में कोई ऐब है। वह बिलकुल दूसरी बात थी; मगर तुमसे यह कथा किसने कही ?

सुधा—कह दो, वह कानी थी या कुबड़ी थी, या नाइन के पेट की थी या भ्रष्टा थी ! इतनी कसर क्यों छोड़ दी ? भला सुनूं तो उस कन्या में क्या ऐब था ?

सिन्हा—मैंने देखा तो था नहीं; सुनने में आया था कि उसमें कोई ऐब है।

सुधा—सबसे बड़ा ऐब यही था कि उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था, और वह कोई लम्बी-चौड़ी रकम न दे सकती थी। इतना स्वीकार करते क्यों झेंपते हो ? मैं कुछ तुम्हारे कान तो काट न लूंगी ? अगर दो-चार फिकरे कसूं, तो इस कान से सुनकर उस कान से उड़ा देना। ज्यादा चीं-चपड़ करूं तो छड़ी से काम ले सकते हो। औरत लात-डण्डे ही से ठीक रहती है। अगर उस कन्या में कोई ऐब था, तो मैं कहूंगी, लक्ष्मी भी बे-ऐब नहीं ! तुम्हारी तकदीर खोटी थी बस ! और क्या ? तुम्हें तो मेरे पाले पड़ना था।

सिन्हा—तुमसे किसने कहा था कि वह ऐसी थी और वैसी थी ! जैसे तुमने किसी से सुनकर मान लिया, वैसे ही हम लोगों ने भी सुनकर मान लिया।

सुधा—मैंने सुनकर नहीं मान लिया। अपनी आंखों से देखा। ज्यादा बखान क्या करूं; मैंने ऐसी सुन्दर स्त्री कभी नहीं देखी थी।

सिन्हा ने व्यग्र होकर पूछा—क्या वह यहीं कहीं है ? सच बताओ, उसे कहां देखा ? क्या तुम्हारे घर आयी थी ?

सुधा—हां, मेरे घर आयी थी; और एक बार नहीं, कई बार आ चुकी है। मैं भी उसके यहां कई बार जा चुकी हूं। वकील साहब की बीवी वही कन्या है, जिसे आपने ऐबों के कारण त्याग दिया।

सिन्हा—सच !

सुधा—बिलकुल सच ! आज उसे अगर मालूम हो जाए कि आप वही महापुरुष हैं तो शायद फिर इस घर में कदम न रखे। ऐसी सुशीला, घर के कामों में ऐसी निपुण और ऐसी परम सुन्दरी स्त्री इस शहर में दो-ही-चार होंगी। तुम मेरा बखान करते हो। मैं उसकी लौंडी बनने के योग्य भी नहीं हूं। घर में ईश्वर का दिया हुआ सबकुछ है, मगर जब प्राणी ही मेल का नहीं तो और सब रहकर क्या करेगा ? धन्य है उसके धैर्य को कि उस बुड्ढे खूसट वकील के साथ जीवन के दिन काट रही है। मैंने तो कब का जहर खा लिया होता। मगर मन की व्यथा कहने से ही थोड़े प्रकट होती है। हंसती है, बोलती है; गहने-कपड़े पहनती है, पर रोआं-रोआं रोया करता है।

सिन्हा—वकील साहब की खूब शिकायत करती होगी।

सुधा—शिकायत क्यों करेगी ? क्या वह उसके पति नहीं हैं ? संसार में अब उसके लिए जो कुछ है, वकील साहब हैं। वह बुड्ढे हों या रोगी, पर हैं तो उसके स्वामी ही। कुलवती स्त्रियां पति की निन्दा नहीं करतीं। यह कुलटाओं का काम है। वह उनकी दशा देखकर कुढ़ती है, पर मुंह से कुछ नहीं कहती है।

सिन्हा—इन वकील साहब को क्या सूझी थी, जो इस उम्र में ब्याह करने चले ?

सुधा—ऐसे आदमी न हों, तो गरीब क्वारियों की नाव कौन पार लगाए ? तुम और तुम्हारे साथी बिना भारी गठरी लिये बात नहीं करते, तो फिर ये बेचारी किसके घर जाएं ? तुमने बड़ा अन्याय किया है और तुम्हें इसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। ईश्वर इसका सुहाग अमर करे ! लेकिन वकील साहब को कहीं कुछ हो गया तो बेचारी का जीवन नष्ट हो जायेगा। आज तो वह बहुत रोती थी। तुम लोग सचमुच बड़े निर्दय हो। मैं तो अपने सोहन का विवाह किसी गरीब लड़की से करूंगी।

डॉक्टर साहब ने पिछला वाक्य नहीं सुना। वह घोर चिन्ता में पड़ गए। उनके मन में प्रश्न उठ-उठकर उन्हें विकल करने लगा—कहीं वकील साहब को कुछ हो गया तो ? आज अपने स्वार्थ का भयंकर स्वरूप दिखाई दिया ! वास्तव में यह उन्हीं का अपराध था। अगर उन्होंने पिता से जोर देकर कहा

होता कि और कहीं विवाह न करूंगा तो क्या वह उनकी इच्छा के विरुद्ध उनका विवाह कर देते ?

सहसा सुधा ने कहा—कहो तो निर्मला से तुम्हारी मुलाकात करा दूं ! वह भी जरा तुम्हारी सूरत देख ले । वह कुछ बोलेगी तो नहीं, पर कदाचित् एक दृष्टि में वह तुम्हारा उतना तिरस्कार कर देगी, जिसे तुम कभी न भूल सकोगे । बोलो, कल मिला दूं ? तुम्हारा बहुत संक्षिप्त परिचय भी दे दूंगी ।

सिन्हा ने कहा—नहीं सुधा, तुम्हारे हाथ जोड़ता हूं, कहीं ऐसा गजब न करना, नहीं तो सच कहता हूं, घर छोड़कर भाग जाऊंगा ।

सुधा—जो कांटा बोया है, उसका फल खाते क्यों इतना डरते हो ? जिसकी गर्दन पर कटार चलायी है, जरा उसे तड़पते भी तो देखो ! मेरे दादाजी ने पांच हजार दिये न ! अभी छोटे भाई के विवाह में पांच-छह हजार और मिल जाएंगे । फिर तो तुम्हारे बराबर धनी संसार में कोई दूसरा न होगा ! ग्यारह हजार बहुत होते हैं । बाप-रे-बाप ! ग्यारह हजार ! उठा-उठाकर रखने लगें, तो महीनों लग जाएं । अगर लड़के उड़ाने भी लगें, तो तीन पीढ़ियों तक चले ! कहीं से बात हो रही है या नहीं ?

इस परिहास से डॉक्टर साहब इतना झेंपे कि सिर तक न उठा सके । उनका सारा वाक्-चातुर्य गायब हो गया । नन्हा-सा मुंह निकल आया, मानो मार पड़ गई हो । इसी वक्त किसी ने डॉक्टर साहब को बाहर से पुकारा । बेचारे जान लेकर भागे । स्त्री कितनी परिहास-कुशल होती है, इसका आज परिचय मिल गया ।

रात को डॉक्टर साहब शयन करते हुए सुधा से बोले—निर्मला की तो कोई बहन है न ?

सुधा—हां, आज उसी की तो चर्चा करती थी । उसी की चिंता अभी से सवार हो रही है ! अपने ऊपर तो जो कुछ बीतना था, बीत चुका; बहन की फिक्र में पड़ी हुई थी । मां के पास तो अब और कुछ भी न रहा; मजबूरन किसी ऐसे ही बूढ़े बाबा के गले वह भी मढ़ दी जाएगी ।

सिन्हा—निर्मला अब तो अपनी मां की मदद कर सकती है ।

सुधा ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—तुम भी कभी-कभी बिलकुल बेसिर-पैर की बातें करने लगते हो । निर्मला बहुत करेगी, तो दो-चार सौ रुपये दे

देगी, और क्या कर सकती है ? वकील साहब का यह हाल हो रहा है; उसे अभी पहाड़-सी उम्र काटनी है। फिर कौन जाने, उनके घर का क्या हाल है। इधर छह महीने से बेचारे घर बैठे हैं। रुपये आकाश से थोड़े ही बरसते हैं। दस-बीस हजार होंगे भी तो बैंक में होंगे; कुछ निर्मला के पास तो रखे न होंगे। हमारा 200 रुपये महीने का खर्च है तो क्या उनका 400 रुपये महीने का भी न होगा ?

सुधा को तो नींद आ गई, पर डॉक्टर साहब बहुत देर तक करवट बदलते रहे। फिर कुछ सोचकर उठे और मेज पर बैठकर एक पत्र लिखने लगे।

चौदह

तीनों बातें एक साथ हुईं—निर्मला की कन्या ने जन्म लिया, कृष्णा का विवाह निश्चित और मुंशी तोताराम का मकान नीलाम हो गया। कन्या का जन्म तो साधारण बात थी, यद्यपि निर्मला की दृष्टि में यह उसके जीवन की सबसे महान घटना थी; लेकिन शेष घटनाएं असाधारण थीं। कृष्णा का विवाह ऐसे सम्पन्न घराने में क्योंकर ठीक हुआ ? उसकी माता के पास तो दहेज के नाम की कौड़ी भी न थी; और इधर बुड्ढे सिन्हा साहब जो पेंशन लेकर घर आ गये थे, बिरादरी में लोभी मशहूर थे। वह अपने पुत्र का विवाह ऐसे दरिद्र घराने में करने पर कैसे राजी हुए ? किसी को सहसा विश्वास न आता था। इससे भी बड़े आश्चर्य की बात मुंशीजी के मकान का नीलाम होना था। लोग मुंशीजी को लखपती नहीं, तो बड़े आदमी अवश्य समझते थे। उनका मकान कैसे नीलाम हुआ ? बात यह थी कि मुंशीजी ने एक महाजन से कुछ रुपये कर्ज लेकर एक गांव रेहन रखा था। उन्हें आशा थी कि साल-आध साल में रुपये पटा देंगे। फिर दस-पांच साल में उस गांव पर कब्जा कर लेंगे। वह जमींदार असल और सूद के कुल रुपये अदा करने में असमर्थ हो जायेगा।

इसी भरोसे पर मुंशीजी ने यह मामला किया था। गांव बहुत बड़ा था—चार-पांच सौ रुपये नफा होता था, लेकिन मन की सोची मन ही में रह गई। मुंशीजी दिल को बहुत समझाने पर भी कचहरी न जा सके। पुत्रशोक ने कोई काम करने की शक्ति ही न छोड़ी। कौन ऐसा हृदय-शून्य पिता है, जो पुत्र की गर्दन पर तलवार चलाकर चित्त को शांत कर ले ?

महाजन के पास जब साल-भर तक सूद न पहुंचा और न उसके बार-बार बुलाने पर मुंशीजी उसके पास गये—यहां तक कि पिछली बार उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि हम किसी के गुलाम नहीं हैं, साहुजी जो चाहें करें—तब साहुजी को गुस्सा आ गया। उसने नालिश कर दी। मुंशीजी पैरवी करने भी न गये। एकाएक डिग्री हो गई। यहां घर में रुपये कहां रखे थे। इतने ही दिनों में मुंशीजी की साख भी उठ गई थी। वह रुपये का कोई प्रबन्ध न कर सके। आखिर मकान नीलाम पर चढ़ गया। निर्मला सौर में थी। यह खबर सुनी तो कलेजा सन्न-सा हो गया। जीवन में कोई और सुख न होने पर भी धनाभाव की चिंताओं से मुक्त थी। धन मानव जीवन में अगर सर्वप्रधान वस्तु नहीं, तो वह उसके बहुत निकट की वस्तु अवश्य है। अब और अभावों के साथ यह चिन्ता भी उसके सिर सवार हुई। उसने दाई द्वारा कहला भेजा, मेरे सब गहने बेचकर घर को बचा लीजिए, लेकिन मुंशीजी ने यह प्रस्ताव किसी तरह स्वीकार न किया।

उस दिन से मुंशीजी और भी चिन्ताग्रस्त रहने लगे। जिस धन का सुख भोगने के लिए उन्होंने विवाह किया था, वह अब अतीत की स्मृति-मात्र था। वह मारे ग्लानि के अब निर्मला को अपना मुंह तक न दिखा सकते थे। उन्हें अब उस अन्याय का अनुमान हो रहा था, जो उन्होंने निर्मला के साथ किया था और कन्या के जन्म ने तो रही-सही कसर भी पूरी कर दी—सर्वनाश ही कर डाला !

बारहवें दिन सौर से निकलकर निर्मला नवजात शिशु को गोद में लिये पति के पास गयी। वह इस अभाव में भी इतनी प्रसन्न थी, मानो कोई चिंता नहीं है। बालिका को हृदय से लगाकर वह अपनी सारी चिन्ताएं भूल गई थी। शिशु के विकसित और हर्षप्रदीप्त नेत्रों को देखकर उसका हृदय प्रफुल्लित हो रहा था। मातृत्व के इस उद्गार में उसके सारे

क्लेश विलीन हो गए थे। वह शिशु को पति की गोद में देखकर निहाल हो जाना चाहती थी, लेकिन मुंशीजी कन्या को देखकर सहम उठे। गोद में लेने के लिए उनका हृदय हुलसा नहीं; पर उन्होंने एक बार उसे करुण नेत्रों से देखा और फिर सिर झुका लिया। शिशु की सूरत मंसाराम से बिलकुल मिलती थी।

निर्मला ने उनके मन का भाव कुछ और ही समझा। उसने शतगुण स्नेह से लड़की को हृदय से लगा लिया, मानो उनसे कह रही है—अगर तुम इसके बोझ से दबे जाते हो, तो आज से मैं इस पर तुम्हारा साया भी न पड़ने दूंगी। जिस रत्न को मैंने इतनी तपस्या के बाद पाया है, उसका निरादर करते हुए तुम्हारा हृदय फट नहीं जाता। वह उसी क्षण शिशु को चिपकाए हुए अपने कमरे में चली आयी और देर तक रोती रही। उसने पति की इस उदासीनता को समझने की जरा भी चेष्टा न की, नहीं तो शायद वह उन्हें इतना कठोर न समझती। उसके सिर उत्तरदायित्व का इतना बड़ा भार कहां था, जो उसके पति पर आ पड़ा था। वह सोचने की चेष्टा करती, तो क्या इतना भी उसकी समझ में न आता।

मुंशीजी को एक ही क्षण में अपनी भूल मालूम हो गई। माता का हृदय प्रेम में इतना अनुरक्त रहता है कि भविष्य की चिन्ता और बाधाएं उसे जरा भी भयभीत नहीं करतीं। उसे अपने अन्तःकरण में एक अलौकिक शक्ति का अनुभव होता है, जो बाधाओं को उसके सामने परास्त कर देती है। मुंशीजी दौड़ते हुए घर में आये और शिशु को गोद में लेकर बोले—मुझे याद आती है, मंसा भी ऐसा ही था—बिलकुल ऐसा ही!

निर्मला—दीदीजी भी तो यही कहती हैं।

मुंशीजी—बिलकुल वही बड़ी-बड़ी आंखें और लाल-लाल होंठ हैं। ईश्वर ने मुझे मंसाराम इस रूप में दे दिया। वही माथा है, वही हाथ-पांव! ईश्वर, तुम्हारी लीला अपार है।

सहसा रुक्मिणी भी आ गयीं। मुंशीजी को देखते ही बोलीं—देखो बाबू मंसाराम है कि नहीं? वही आया है, कोई लाख कहे, मैं न मानूंगी। साफ मंसाराम है! साल-भर के लगभग हो भी तो गया।

मुंशीजी—बहन, एक-एक अंग तो मिलता है। बस, भगवान् ने मुझे

मेरा मंसाराम दे दिया। (शिशु से) क्यों री, तू मंसाराम ही है ? छोड़कर जाने का नाम न लेना, नहीं खींच लाऊंगा। कैसे निठुर होकर भागे थे। आखिर पकड़ लाया कि नहीं ? बस कह दिया, अब मुझे छोड़कर जाने का नाम न लेना। देखो बहन, कैसे टुकुर-टुकुर ताक रही है !

उसी क्षण मुंशीजी ने फिर से अभिलाषाओं का भवन बनाना शुरू कर दिया। मोह ने उन्हें फिर संसार की ओर खींचा। मानव-जीवन ! तू इतना क्षणभंगुर है, पर तेरी कल्पनाएं कितनी दीर्घायु ! वही तोताराम जो संसार से विरक्त हो रहे थे, जो रात-दिन मृत्यु का आह्वान करते थे, तिनके का सहारा पाकर तट पर पहुंचने के लिए पूरी शक्ति से हाथ-पांव मार रहे हैं !

मगर तिनके का सहारा पाकर कोई तट पर पहुंचा है ?

पन्द्रह

निर्मला को यद्यपि अपने घर के झंझटों से अवकाश न था, पर कृष्णा के विवाह का संदेशा पाकर वह किसी तरह न रुक सकी। उसकी माता ने बहुत आग्रह करके बुलाया था। सबसे बड़ा आकर्षण यह था कि कृष्णा का विवाह उसी घर में हो रहा था, जहां निर्मला का विवाह पहले तय हुआ था। आश्चर्य यही था कि इस बार वे लोग बिना कुछ दहेज लिये कैसे विवाह करने पर तैयार हो गए। निर्मला को कृष्णा के विषय में बड़ी चिन्ता हो रही थी। समझती थी, मेरी ही तरह वह भी किसी के गले मढ़ दी जाएगी। बहुत चाहती थी, कि माता की कुछ सहायता करूं, जिससे कृष्णा के लिए योग्य वर मिले; लेकिन उधर वकील साहब के घर बैठ जाने और महाजन के नालिश कर देने से उसका हाथ तंग था। ऐसी दशा में यह खबर पाकर उसे बड़ी शान्ति मिली। चलने की तैयारी कर दी। वकील साहब स्टेशन तक पहुंचाने आये। नन्ही बच्ची से उन्हें बहुत प्रेम था। छोड़ते ही न थे; यहां तक कि निर्मला के साथ चलने को तैयार हो गए, लेकिन विवाह से एक महीने पहले उनका ससुराल जा बैठना निर्मला

को उचित न मालूम हुआ।

निर्मला ने अपनी माता से अब तक अपनी विपत्ति कथा न कही थी। जो बात हो गई, उसका रोना रोकर माता को कष्ट देने और रुलाने से क्या फायदा ? इसलिए उसकी माता समझी थी, निर्मला बड़े आनन्द से है। अब जो निर्मला की सूरत देखी, तो मानो उसके हृदय पर धक्का-सा लग गया। लड़कियां ससुराल से घुलकर नहीं आतीं, फिर निर्मला जैसी लड़की, जिसको सुख की सभी सामग्रियां प्राप्त थीं ? उसने कितनी लड़कियों को दूज के चन्द्रमा की भांति ससुराल जाते और पूर्ण चन्द्र बनकर आते देखा। मन में कल्पना कर रही थी, निर्मला का रंग निखर गया होगा, देह भरकर सुडौल हो गई होगी—अंग-प्रत्यंग की शोभा कुछ और ही हो गई होगी। अब जो देखा, तो वह आधी भी न रही थी। न यौवन की चंचलता थी, न वह विहसित छवि, जो हृदय को मोह लेती है। वह कमनीयता, सुकुमारता, जो विलासमय जीवन से आ जाती है, यहां नाम को न थी। मुख पीला, चेष्टा गिरी हुई, अंग शिथिल। उन्नीसवें ही वर्ष में बुड्ढी हो गई थी। जब मां-बेटियां रो-धोकर शान्त हुईं तो माता ने पूछा—क्यों री, तुझे क्या तकलीफ थी ?

कृष्णा ने हंसकर कहा—वहां मालकिन थीं कि नहीं ? मालकिन को दुनिया-भर की चिन्ताएं रहती हैं, भोजन कब करे !

निर्मला—नहीं अम्मा, वहां का पानी मुझे रास नहीं आता। तबीयत मरी रहती है।

माता—वकील साहब न्योते में आएंगे न ? तब पूछूंगी कि आपने फूल-सी लड़की ले जाकर उसकी यह गत बना डाली। अच्छा, यह बता कि तूने यहां रुपये क्यों भेजे थे ? मैंने तो तुझसे कभी न मांगे थे। लाख गयी-गुजरी हूं, लेकिन बेटी का धन खाने की नीयत नहीं।

निर्मला ने चकित होकर पूछा—किसने रुपये भेजे थे, अम्मा ! मैंने तो नहीं भेजे।

माता—झूठ न बोल ! तूने 500 रुपये के नोट नहीं भेजे थे ?

कृष्णा—भेजे नहीं थे तो क्या आसमान से आ गए ? तुम्हारा नाम साफ लिखा था। मोहर भी वहीं की थी।

निर्मला—चरण छूकर कहती हूं, मैंने रुपये नहीं भेजे। यह कब की

बात है ?

माता—अरे, यही दो-ढाई महीने हुए होंगे। मगर तूने नहीं भेजे, तो आये कहां से ?

निर्मला—यह मैं क्या जानूं ? मगर मैंने रुपये नहीं भेजे। हमारे यहां तो जब से जवान बेटा मरा है, कचहरी ही नहीं जाते। मेरा हाथ तो आप ही तंग था, रुपये कहां से आते ?

माता—यह बड़े आश्चर्य की बात है। वहां और कोई तेरा सगा-सम्बन्धी तो नहीं है ? वकील साहब ने तुमसे छिपाकर तो नहीं भेजे ?

निर्मला—नहीं अम्मा, मुझे तो विश्वास नहीं।

माता—इसका पता लगाना चाहिए। मैंने सारे रुपये कृष्णा के गहने-कपड़े में खर्च कर डाले। यही बड़ी मुश्किल हुई।

दोनों लड़कों में किसी विषय पर विवाद उठ खड़ा हुआ और कृष्णा उधर फैसला करने चली गई, तो निर्मला ने माता से कहा—इस विवाह की बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। यह कैसे हुआ, अम्मा ?

माता—यहां जो सुनता है, दांतों उंगली दबाता है। जिन लोगों ने पक्की करायी बात फेर दी, और केवल थोड़े से रुपये के लोभ से; वे अब बिना कुछ लिये कैसे विवाह करने को तैयार हो गए, समझ में नहीं आता। उन्होंने खुद पत्र भेजा। मैंने साफ लिख दिया कि मेरे पास देने-लेने को कुछ नहीं है, कुशकन्या ही से आपकी सेवा कर सकती हूं।

निर्मला—इसका कुछ जवाब नहीं दिया ?

माता—शास्त्रीजी पत्र लेकर गये थे। वह तो यही कहते थे कि अब मुंशीजी कुछ लेने के इच्छुक नहीं हैं। अपनी पहली वादाखिलाफी पर कुछ लज्जित भी हैं। मुंशीजी से तो इतनी उदारता की आशा न थी, मगर सुनती हूं, उनके बड़े पुत्र सज्जन आदमी हैं। उन्होंने कह-सुनकर बाप को राजी किया है।

निर्मला—पहले तो वह महाशय भी थैली चाहते थे न ?

माता—हां, मगर अब तो शास्त्रीजी कहते थे कि दहेज के नाम से चिढ़ते हैं। सुना है, यहां विवाह न करने पर पछताते भी थे। रुपये के लिए बात छोड़ी थी, और रुपये खूब पाये पर स्त्री पसंद नहीं।

निर्मला के मन में उस पुरुष को देखने की प्रबल उत्कंठा हुई, जो

उसकी अवहेलना करके अब उसकी बहन का उद्धार करना चाहता है। प्रायश्चित्त सही, लेकिन कितने ऐसे प्राणी हैं जो इस तरह प्रायश्चित्त करने को तैयार हैं ? उनसे बातें करने के लिए, नम्र शब्दों से उनका तिरस्कार करने के लिए, अपनी अनुपम छवि दिखाकर उन्हें और भी जलाने के लिए निर्मला का मन अधीर हो उठा। रात को दोनों बहनें एक ही कमरे में सोयीं। मुहल्ले में किन-किन लड़कियों का विवाह हो गया, कौन-कौन लड़कौरी हुई, किस-किसका विवाह धूम-धाम से हुआ, किस-किसके पति कन्या के इच्छानुकूल मिले, कौन कितने और कैसे-कैसे गहने चढ़ावे में लाया—इन्हीं विषयों पर दोनों में बड़ी देर तक बातें होती रहीं। कृष्णा बराबर चाहती थी कि बहन के घर का कुछ हाल पूछूं; मगर निर्मला उसे पूछने का अवसर न देती थी। वह जानती थी कि वह जो बातें पूछेगी उनके बताने में मुझे संकोच होगा। एक बार कृष्णा पूछ ही बैठी—जीजाजी भी आएंगे न ?

निर्मला—आने को कहा तो है।

कृष्णा—अब तो तुमसे प्रसन्न रहते हैं न, या अब भी वही हाल है ? मैं तो सुना करती थी, दुहाजू पति अपनी स्त्री को प्राणों से भी प्रिय समझते हैं, यहां बिलकुल उलटी बात देखी। आखिर किस बात पर बिगड़ते रहते हैं ?

निर्मला—अब मैं किसी के मन की बात क्या जानूं ?

कृष्णा—मैं तो समझती हूं, तुम्हारी रुखाई से चिढ़ते होंगे। तुम तो यहीं से जली हुई गयी थीं। वहां भी उन्हें कुछ कहा होगा।

निर्मला—यह बात नहीं है कृष्णा, मैं सौगन्ध खाकर कहती हूं जो मेरे मन में उनकी ओर से जरा भी मैल हो। मुझसे जहां तक हो सकता है, उनकी सेवा करती हूं। अगर उनकी जगह कोई देवता भी होता, तो भी मैं इससे ज्यादा और कुछ न कर सकती। उन्हें भी मुझसे प्रेम है। बराबर मेरा मुंह देखते रहते हैं, लेकिन जो बात उनके और मेरे काबू के बाहर है, उसके लिए वह क्या कर सकते हैं, और मैं क्या कर सकती हूं ! न वह जवान हो सकते हैं, न मैं बुढ़िया हो सकती हूं, जवान बनने के लिए वह न जाने कितने रस और भस्म खाते रहते हैं, मैं बुढ़िया बनने के लिए दूध-घी सब छोड़ देती हूं। सोचती हूं, मेरे दुबलेपन ही से अवस्था का भेद कुछ कम हो

जाये, लेकिन न उन्हें पौष्टिक पदार्थों से कुछ लाभ होता है, न मुझे उपवासों से। जब से मंसाराम का देहान्त हो गया है, तब से उनकी दशा और खराब हो गई है।

कृष्णा—मंसाराम को तुम भी बहुत प्यार करती थीं ?

निर्मला—वह लड़का ऐसा था जो देखता था, प्यार करता था। ऐसी बड़ी-बड़ी डोरेदार आंखें मैंने किसी की नहीं देखीं। कमल की भांति मुख हरदम खिला रहता था। ऐसा साहसी कि अगर अवसर आ पड़ता, तो आग में फांद जाता। कृष्णा, मैं तुमसे सच कहती हूं, जब मेरे पास आकर बैठ जाता, तो मैं अपने को भूल जाती थी। जी चाहता था, वह हरदम सामने बैठा रहे और मैं देखा करूं। मेरे मन में पाप का लेश भी न था। अगर एक क्षण के लिए भी मैंने उसकी ओर किसी और भाव से देखा हो तो मेरी आंखें फूट जायें; पर न जाने क्यों उसे अपने पास देखकर मेरा हृदय फूला न समाता था। इसीलिए मैंने उससे पढ़ने का स्वांग रचा, नहीं तो वह घर में आता ही न था। यह मैं जानती हूं कि अगर उसके मन में पाप होता, तो मैं उसके लिए सबकुछ कर सकती थी।

कृष्णा—अरे बहन, चुप रहो, कैसी बात मुंह से निकालती हो ?

निर्मला—हां-हां, यह बात सुनने में बुरी मालूम होती है, और है भी बुरी, लेकिन मुनष्य की प्रकृति को कोई नहीं बदल सकता। तू ही बता, एक पचास वर्ष के मर्द से तेरा विवाह हो जाये तो क्या करेगी ?

कृष्णा—मैं तो जहर खाकर सो रहूं! मुझसे मुंह देखते भी न बने।

निर्मला—तो बस, यही समझ ले। उस लड़के ने कभी मेरी ओर आंख उठाकर नहीं देखा, लेकिन बुड्ढे शक्की तो होते ही हैं—तुम्हारे जीजा उस लड़के के दुश्मन हो गए, और आखिर उसकी जान लेकर ही छोड़ी। जिस दिन से उसे ज्वर चढ़ा, तो जान लेकर ही उतरा। हाय! उस अन्तिम समय का दृश्य आंखों से नहीं उतरा। मैं अस्पताल गयी थी, वह ज्वर में बेहोश पड़ा था—उठने की शक्ति न थी, लेकिन ज्यों ही मेरी आवाज सुनी, चौंककर और "माता-माता" कहकर मेरे पैरों पर गिर पड़ा। (रोकर) कृष्णा! उस समय ऐसा जी चाहता था कि अपने प्राण निकालकर उसे दे दूं। मेरे पैरों पर ही वह मूर्च्छित हो गया और आंखें न खोलीं। डॉक्टरों ने उसकी देह में

ताजा खून डालने का प्रस्ताव किया था, यही सुनकर मैं दौड़ी गई थी, लेकिन डॉक्टर लोग वह क्रिया आरम्भ करें कि उसके प्राण निकल गए।

कृष्णा—ताजा रक्त पड़ जाने से उसकी जान बच जाती ?

निर्मला—कौन जानता है ? लेकिन मैं तो अपने रुधिर की अन्तिम बूंद तक देने को तैयार थी ! उस दशा में भी उसका मुख-मण्डल दीपक की भांति चमकता था। अगर वह मुझे देखते ही दौड़कर मेरे पैरों पर न गिर पड़ता और पहले कुछ रक्त देह में पहुंच जाता, तो शायद बच जाता।

कृष्णा—तो तुमने उन्हें उसी वक्त लिटा क्यों न दिया ?

निर्मला—अरे पगली, तू अभी तक बात न समझी। वह मेरे पैरों पर गिरकर और माता-पुत्र का सम्बन्ध दिखाकर अपने बाप के दिल से वह सन्देह निकाल देना चाहता था। केवल इसीलिए वह उठा था। मेरा क्लेश मिटाने के लिए उसने प्राण दिये और उसकी वह इच्छा पूरी हो गई। तुम्हारे जीजाजी उसी दिन से सीधे हो गए। अब तो उनकी दशा पर मुझे दया आती है। पुत्रशोक उनके प्राण लेकर छोड़ेगा। मुझ पर संदेह करके जो अन्याय किया है, अब उसका प्रतिशोध कर रहे हैं। अबकी उनकी सूरत देखकर तू डर जायेगी। बूढ़े बाबा हो गए हैं। कमर भी झुक चली है।

कृष्णा—बुड्ढे लोग इतने शक्की क्यों होते हैं, बहन ?

निर्मला—यह जाकर बुड्ढों से पूछो।

कृष्णा—मैं तो समझती हूं, उनके दिल में हरदम एक चोर-सा बैठा रहता होगा कि युवती को प्रसन्न नहीं रख सकता। इसीलिए जरा-जरा-सी बात पर उन्हें शक होने लगता है।

निर्मला—जानती तो है फिर मुझसे क्यों पूछती है ?

कृष्णा—इसीलिए बेचारा स्त्री से दबता भी होगा। देखनेवाले समझते होंगे कि यह प्रेम करता है।

निर्मला—तूने इतने ही दिनों में इतनी बातें कहां सीख लीं ? इन बातों को जाने दे; बता तुझे अपना वर पसंद है ? उसकी तस्वीर तो देखी होगी ?

कृष्णा—हां, आयी तो थी। लाऊं, देखोगी ?

एक क्षण में कृष्णा ने तस्वीर लाकर निर्मला के हाथ में रख दी।

निर्मला ने मुस्कराकर कहा—तू बड़ी भाग्यवान है।

कृष्णा—अम्माजी ने भी बहुत पसन्द किया।

निर्मला—तुझे पसन्द है कि नहीं सो कह; दूसरों की बात न चला।

कृष्णा—(लजाती हुई) शक्ल-सूरत तो बुरी नहीं है, स्वभाव का हाल ईश्वर जाने। शास्त्रीजी तो कहते थे, ऐसे सुशील और चरित्रवान युवक कम होंगे।

निर्मला—यहां से तेरी तस्वीर गई थी ?

कृष्णा—गई तो थी, शास्त्रीजी तो ले गए थे।

निर्मला—उन्हें पसन्द आई ?

कृष्णा—अब किसी के मन की बात मैं क्या जानूं ? शास्त्रीजी तो कहते थे, बहुत खुश हुए थे।

निर्मला—अच्छा, बता तुझे क्या उपहार दूं ? अभी से बता दे जिससे बनवा रखूं।

कृष्णा—जो तुम्हारा जी चाहे, दे देना। उन्हें पुस्तकों से बहुत प्रेम है। अच्छी-अच्छी पुस्तकें मंगवा देना।

निर्मला—उनके लिए नहीं पूछती, तेरे लिए पूछती हूं।

कृष्णा—अपने ही लिए तो मैं कह रही हूं।

निर्मला—(तस्वीर की तरफ देखती हुई) कपड़े सब खद्दर के मालूम होते हैं।

कृष्णा—हां, खद्दर के बड़े प्रेमी हैं। सुनती हूं कि पीठ पर खद्दर लादकर देहातों में बेचने जाया करते हैं। व्याख्यान देने में बड़े चतुर हैं।

निर्मला—तब तो तुझे भी खद्दर पहनना पड़ेगा। तुझे तो मोटे कपड़ों से चिढ़ है।

कृष्णा—जब उन्हें मोटे कपड़े अच्छे लगते हैं, तो मुझे क्यों चिढ़ होगी; मैंने तो चर्खा चलाना सीख लिया है।

निर्मला—सच ! सूत निकाल लेती है ?

कृष्णा—हां, बहन ! थोड़ा-थोड़ा निकाल लेती हूं। जब वह खद्दर के इतने प्रेमी हैं, तो चर्खा भी जरूर चलाते होंगे। मैं न चला सकूंगी, तो मुझे कितना लज्जित होना पड़ेगा।

इस तरह बात करते-करते दोनों बहनें सोयीं। कोई दो बजे रात को

बच्ची रोयी, तो निर्मला की नींद खुली। देखा तो कृष्णा की चारपाई खाली पड़ी थी। निर्मला को आश्चर्य हुआ कि इतनी रात गए कृष्णा कहां चली गई। शायद पानी-वानी पीने गई हो, मगर पानी तो सिरहाने रखा हुआ है, फिर कहां गई है? उसने दो-तीन बार उसका नाम लेकर आवाज दी; पर कृष्णा का पता न था। तब तो निर्मला घबरा उठी। उसके मन में भांति-भांति की शंकाएं होने लगीं। सहसा उसे खयाल आया कि शायद अपने कमरे में न चली गई हो। बच्ची सो गई, तो वह उठकर कृष्णा के कमरे के द्वार पर आयी। उसका अनुमान ठीक था, कृष्णा अपने कमरे में थी। सारा घर सो रहा था और वह बैठी चर्खा चला रही थी। इतनी तन्मयता से शायद उसने थियेटर भी न देखा होगा। निर्मला दंग रह गई और अन्दर जाकर बोली—यह क्या कर रही है रे! चर्खा चलाने का समय है?

कृष्णा चौंककर उठ बैठी और संकोच से सिर झुकाकर बोली—तुम्हारी नींद कैसे खुल गई? पानी-वानी तो मैंने रख दिया था।

निर्मला—मैं कहती हूं, दिन को तुझे समय नहीं मिलता, जो पिछली रात को चर्खा लेकर बैठी है?

कृष्णा—दिन को फुरसत नहीं मिलती।

निर्मला—(सूत देखकर) सूत तो बहुत महीन है।

कृष्णा—कहां बहन, यह सूत तो मोटा है। मैं बारीक सूत कातकर उनके लिए एक साफा बनाना चाहती हूं। यही मेरा उपहार होगा।

निर्मला—बात तो तूने खूब सोची है। इससे अधिक मूल्यवान वस्तु उनकी दृष्टि में और क्या होगी? अच्छा, उठ इस वक्त, कल कातना। कहीं बीमार पड़ जायेगी, तो यह सब धरा रह जायेगा।

कृष्णा—नहीं मेरी बहन; तुम चलकर सोओ, मैं अभी आती हूं।

निर्मला ने अधिक आग्रह नहीं किया—लेटने चली गई। मगर किसी तरह नींद न आई। कृष्णा की उत्सुकता और यह उमंग देखकर उसका हृदय किसी अलक्षित आकांक्षा से आन्दोलित हो उठा। ओह! इस समय इसका हृदय कितना प्रफुल्लित हो रहा है। अनुराग ने इसे कितना उन्मत्त कर रखा है। तब उसे अपने विवाह की याद आई। जिस दिन तिलक गया था, उसी दिन से उसकी सारी चंचलता, सारी सजीवता विदा हो गई थी। अपनी कोठरी

में बैठी वह अपनी किस्मत को रोती थी और ईश्वर से विनय करती थी कि प्राण निकल जाएं। अपराधी जैसे दण्ड की प्रतीक्षा करता है, उसी भांति वह विवाह की प्रतीक्षा करती थी—उस विवाह की, जिसमें उसके जीवन की सारी अभिलाषाएं विलीन हो जायेंगी, जब मण्डप के नीचे बने हुए एक हवन-कुण्ड में उसकी आशाएं जलकर भस्म हो जायेंगी।

सोलह

महीना कटते देर न लगी। विवाह का शुभ मुहूर्त आ पहुंचा। मेहमानों से घर भर गया। मुंशी तोताराम एक दिन पहले घर से आ गए और उनके साथ निर्मला की सहेली भी आयी। निर्मला ने तो बहुत आग्रह न किया था—वह खुद ही आने को उत्सुक थी। निर्मला की सबसे बड़ी उत्कण्ठा यही थी कि वर के बड़े भाई के दर्शन करूंगी; और हो सका तो उनकी सुबुद्धि पर धन्यवाद दूंगी।

सुधा ने हंसकर कहा—तुम उनसे बोल सकोगी ?

निर्मला—क्यों, बोलने में क्या हानि है ? अब तो दूसरा ही सम्बन्ध हो गया। और न बोल सकूंगी तो तुम तो हो ही।

सुधा—न भाई, मुझसे न होगा। मैं पराये मर्द से नहीं बोल सकती। न जाने कैसे आदमी हों।

निर्मला—आदमी तो बुरे नहीं हैं, और तुम्हें उनसे विवाह तो करना नहीं। जरा-सा बोलने में क्या हानि ? डॉक्टर साहब यहां होते, तो मैं तुम्हें आज्ञा दिला देती।

सुधा—जो लोग हृदय के उदार होते हैं, क्या चरित्र के भी अच्छे होते हैं ? परायी स्त्री को घूरने में तो किसी मर्द को संकोच नहीं होता।

निर्मला—अच्छा, न बोलना, मैं ही बातें कर लूंगी। घूर लेंगे जितना उनसे घूरते बनेगा, बस अब तो राजी हुई ?

इतने में कृष्णा आकर बैठ गई। निर्मला ने मुस्कराकर कहा—सच बता कृष्णा, तेरा मन इस वक्त क्यों उचाट हो रहा है ?

कृष्णा—जीजाजी बुला रहे हैं, पहले जाकर सुन आओ, पीछे गप्पें लगाना। बहुत बिगड़ रहे हैं।

निर्मला—क्या है; तूने कुछ पूछा नहीं ?

कृष्णा—कुछ बीमार से मालूम होते हैं। बहुत दुबले हो गए हैं।

निर्मला—तो जरा बैठकर उनका मन बहला देती। यहां दौड़ी क्यों चली आयी ? यह कहो, ईश्वर ने कृपा की, नहीं तो ऐसा ही पुरुष तुझे भी मिलता। जरा बैठकर बातें करो। बुड्ढे बात बड़ी लच्छेदार करते हैं। जवान इतने डींगियल नहीं होते।

कृष्णा—नहीं बहन, तुम जाओ, मुझसे तो वहां नहीं बैठा जाता।

निर्मला चली गई, तो सुधा ने कृष्णा से कहा—अब तो बारात आ गई होगी। द्वार-पूजा क्यों नहीं होती ?

कृष्णा—क्या जाने बहन, शास्त्रीजी सामान इकट्ठा कर रहे हैं।

सुधा—सुना है, दूल्हा की भावज बड़े कड़े स्वभाव की स्त्री है !

कृष्णा—कैसे मालूम ?

सुधा—मैंने सुना है, इसलिए चेताए देती हूं। चार बातें गम खाकर रहना होगा।

कृष्णा—मेरी झगड़ने की आदत नहीं। जब मेरी तरफ से कोई शिकायत ही न पायेंगी, तो क्या अनायास ही बिगड़ेंगी ?

सुधा—हां, सुना तो ऐसा ही है। झूठमूठ लड़ा करती हैं।

कृष्णा—मैं तो सौ बात की एक बात जानती हूं—नम्रता पत्थर को भी मोम कर देती है।

सहसा शोर मचा। बारात आ रही है। दोनों रमणियां खिड़कियों के सामने आ बैठीं। एक क्षण में निर्मला भी आ पहुंची।

वर के बड़े भाई को देखने की उसे बड़ी उत्सुकता हो रही थी।

सुधा ने कहा—कैसे पता चलेगा कि बड़े भाई कौन हैं ?

निर्मला—शास्त्रीजी से पूछूं तो मालूम हो। हाथी पर तो कृष्णा के ससुर महाशय हैं। अच्छा, डॉक्टर साहब यहां कैसे आ पहुंचे ! घोड़े पर क्या हैं,

देखती नहीं हो ?

सुधा—हां, हैं तो वही ।

निर्मला—उन लोगों से मित्रता होगी । कोई सम्बन्ध तो नहीं है ?

सुधा—अब भेंट हो तो पूछूं, मुझे तो कुछ नहीं मालूम ।

निर्मला—पालकी में जो महाशय बैठे हुए हैं, वह तो दूल्हा के भाई जैसे नहीं दीखते ।

सुधा—बिलकुल नहीं । मालूम होता है, सारी देह में पेट-ही-पेट है ।

निर्मला—दूसरे हाथी पर कौन बैठा हुआ है, समझ में नहीं आता ।

सुधा—कोई हो, दूल्हा का भाई नहीं हो सकता । उसकी उम्र नहीं देखती हो, चालीस के ऊपर होगी ।

निर्मला—शास्त्रीजी तो इस वक्त द्वार-पूजा की फिक्र में हैं, नहीं तो पूछती ।

संयोग से नाई आ गया । संदूक की कुंजियां निर्मला के पास थीं । इस वक्त द्वारचार के लिए कुछ रुपयों की जरूरत थी, माता ने भेजा था । यह नाई भी पण्डित मोटेराम के साथ तिलक लेकर गया था ।

निर्मला ने कहा—क्या अभी रुपये चाहिए ?

नाई—हां बहन, चलकर दे दीजिए ।

निर्मला—अच्छा चलती हूं । पहले यह बता, तू दूल्हा के बड़े भाई को पहचानता है ?

नाई—पहचानता काहे नहीं, यह क्या सामने हैं ।

निर्मला—कहां, मैं तो नहीं देखती ?

नाई—अरे, वह क्या घोड़े पर सवार हैं । वही तो हैं ।

निर्मला ने चकित होकर कहा—क्या कहता है, घोड़े पर दूल्हा के भाई हैं ! पहचानता है या अटकल से ही कह रहा है ?

नाई—अरे बहनजी, क्या इतना भूल जाऊंगा ? अभी जलपान का सामान दिये चला आ रहा हूं ।

निर्मला—अरे, यह तो डॉक्टर साहब हैं; मेरे पड़ोस में रहते हैं ।

निर्मला ने सुधा की ओर देखकर कहा—सुनती हो बहन, इसकी बातें ?

सुधा ने हंसी रोककर कहा—झूठ बोलता है ।

नाई—अच्छा साहब, झूठ ही सही, अब बड़ों के मुंह कौन लगे ? अभी शास्त्रीजी से पुछवा दूंगा, तब मानियेगा ?

नाई को आने में देर हुई, तो मोटेराम खुद आंगन में आकर शोर मचाने लगे—इस घर की मर्यादा ईश्वर ही के हाथ है ! नाई घण्टे-भर से आया हुआ है और अभी तक रुपये नहीं मिले ।

निर्मला—जरा यहां चले आइएगा, शास्त्रीजी ! कितने रुपये दरकार हैं, निकाल दूं ।

शास्त्रीजी भुनभुनाते और जोर-जोर से हांफते हुए ऊपर आये, और एक लम्बी सांस लेकर बोले—क्या है ? यह बातों का समय नहीं है, जल्दी से रुपये निकाल दो ।

निर्मला—लीजिए, निकाल तो रही हूं, अब क्या मुंह के बल गिर पड़ूं ? पहले यह बताइए कि दूल्हा के बड़े भाई कौन हैं ?

शास्त्रीजी—राम-राम ! इतनी-सी बात के लिए मुझे आकाश पर लटका दिया । नाई क्या न पहचान सकता था ?

निर्मला—नाई तो कहता है कि वह घोड़े पर सवार हैं, वही हैं ?

शास्त्रीजी—तो फिर किसे बता दे ! वही तो हैं ।

नाई—घड़ी-भर से कह रहा हूं, पर बहनजी मानती ही नहीं ।

निर्मला ने सुधा की ओर स्नेह, ममता, विनोद और कृत्रिम तिरस्कार की दृष्टि से देखकर कहा—अच्छा, तुम्हीं अब तक मेरे साथ यह त्रियाचरित्र खेल रही थीं ! मैं जानती तो तुम्हें यहां बुलाती ही नहीं । ओफ्फोह ! बड़ा गहरा पेट है तुम्हारा ! तुम महीनों से मेरे साथ शरारत करती चली आती हो, और कभी भूल से इस विषय का एक शब्द तुम्हारे मुंह से नहीं निकला । मैं तो दो-चार दिन ही में उबल पड़ती ।

सुधा—तुम्हें मालूम हो जाता, तो मेरे यहां आती ही क्यों ?

निर्मला—गजब, रे गजब, मैं डॉक्टर साहब से कई बार बातें कर चुकी हूं । तुम्हारे ऊपर यह सारा पाप पड़ेगा । देखी कृष्णा, तूने अपनी जेठानी की शरारत ! यह ऐसी मायाविनी हैं, इनसे डरती रहना ।

कृष्णा—मैं तो ऐसी देवी के चरण धो-धोकर चढ़ाऊंगी । धन्य भाग कि इनके दर्शन हुए ।

निर्मला—अब समझ गई। रुपये भी तुम्हीं ने भिजवाए होंगे। अब सिर हिलाया तो सच कहती हूं, मार बैठूंगी।

सुधा—अपने घर बुलाकर मेहमान का अपमान नहीं किया जाता।

निर्मला—देखो तो अभी कैसी-कैसी खबर लेती हूं। मैंने तुम्हारा मान रखने को जरा-सा लिख दिया था, और तुम सचमुच आ पहुंचीं। भला वहां वाले क्या कहते होंगे ?

सुधा—सबसे कहकर आयी हूं।

निर्मला—अब तुम्हारे पास कभी न आऊंगी। इतना तो इशारा कर देतीं कि डॉक्टर साहब से परदा रखना।

सुधा—उनके देख लेने से ही कौन बुराई हो गई ? न देखते तो अपनी किस्मत को रोते कैसे ? जानते कैसे कि लोभ में पड़कर कैसी चीज खो दी ? अब तो तुम्हें देखकर लालाजी हाथ मलकर रह जाते हैं। मुंह से कुछ नहीं कहते, पर मन में अपनी भूल पर पछताते हैं।

निर्मला—अब तुम्हारे घर कभी न आऊंगी।

सुधा—अब पिंड नहीं छूट सकता। मैंने कौन तुम्हारे घर की राह नहीं देखी है।

द्वार-पूजा समाप्त हो चुकी थी। मेहमान लोग जलपान कर रहे थे। मुंशीजी के बगल में डॉक्टर सिन्हा बैठे थे। निर्मला ने कोठे पर चिक की आड़ से उन्हें देखा और कलेजा थामकर रह गई। एक आरोग्य, यौवन और प्रतिभा का देवता था; पर दूसरा··· इस विषय में कुछ न कहना उचित है।

निर्मला ने डॉक्टर साहब को सैकड़ों बार देखा था, पर आज उसके हृदय में जो विचार उठे, वे कभी न उठे थे। बार-बार जी यही चाहता था कि बुलाकर खूब फटकारूं, ऐसे-ऐसे ताने मारूं कि वह भी याद करें; रुला-रुलाकर छोड़ूं; मगर रहम करके रह जाती थी। बारात जनवासे चली गई थी। भोजन की तैयारी हो रही थी। निर्मला भोजन के थाल चुनने में व्यस्त थी। सहसा महरी ने आकर कहा—बिट्टो, तुम्हें सुधा रानी बुला रही हैं। तुम्हारे कमरे में बैठी हैं।

निर्मला ने थाल छोड़ दिये और घबरायी हुई सुधा के पास आयी, मगर अन्दर कदम रखते ही ठिठक गई—डॉक्टर सिन्हा खड़े थे।

सुधा ने मुस्कराकर कहा—लो, बहन, बुला दिया। अब जितना चाहो, फटकारो। मैं दरवाजा रोके खड़ी हूं, भाग नहीं सकते।

डॉक्टर साहब ने गम्भीर भाव से कहा—भागता कौन है ? यहां तो सिर झुकाए खड़ा हूं।

निर्मला ने हाथ जोड़कर कहा—इसी तरह सदा कृपादृष्टि रखिए, भूल न जाइएगा। यही मेरी विनती है।

सत्रह

कृष्णा के विवाह के बाद सुधा चली गई। लेकिन निर्मला मैके में ही रह गई। वकील साहब बार-बार लिखते थे, पर वह न जाती थी। जाने को उसका जी न चाहता था। वहां कोई ऐसी चीज न थी, जो उसे खींच ले जाए। यहां माता की सेवा और छोटे भाइयों की देखभाल में उसका समय बड़े आनन्द से कट जाता था। वकील साहब खुद आते, तो शायद वह जाने पर राजी हो जाती, लेकिन इस विवाह में मुहल्ले की लड़कियों ने उनकी वह दुर्गत की थी कि बेचारे आने का नाम ही न लेते थे। सुधा ने भी कई बार पत्र लिखा, पर निर्मला ने उससे भी हीले-हवाले किए। आखिर एक दिन सुधा ने नौकर को साथ लिया और आ धमकी।

जब दोनों गले मिल चुकीं, तो सुधा ने कहा—तुम्हें तो वहां जाते मानो डर लगता है।

निर्मला—हां बहन, डर तो लगता है। ब्याह की गयी, तीन साल में आयी। अब की तो वहां उम्र ही खतम हो जायगी। फिर कौन बुलाता है और कौन आता है ?

सुधा—आने को क्या हुआ, जब जी चाहे, चली आना। वहां वकील साहब बहुत बेचैन हो गए हैं।

निर्मला—बहुत बेचैन, रात को शायद नींद न आती हो !

सुधा—बहन, तुम्हारा कलेजा पत्थर का है। उनकी दशा देखकर तरस आता है। कहते थे, घर में कोई पूछनेवाला नहीं, न कोई लड़का, न बाला, किससे जी बहलाएं ? जब से दूसरे मकान में उठ आये हैं, बहुत दुःखी रहते हैं।

निर्मला—लड़के तो ईश्वर के दिये दो-दो हैं।

सुधा—उन दोनों की बड़ी शिकायत करते थे। जियाराम तो अब बात ही नहीं सुनता—तुरकी-बतुरकी जवाब देता है। रहा छोटा, वह भी उसी के कहने में है। बेचारे बड़े लड़के को याद करके रोया करते हैं।

निर्मला—जियाराम तो शरीर न था; वह बदमाशी कब से सीख गया ? मेरी तो कोई बात न टालता था—इशारे पर काम करता था।

सुधा—क्या जाने, बहन ! कहता है आपने भैया को जहर देकर मार डाला—आप हत्यारे हैं। कई बार तुमसे विवाह करने के लिए ताने दे चुका है। ऐसी-ऐसी बातें कहता है कि वकील साहब रो पड़ते हैं। अरे, और तो क्या कहूं , एक दिन पत्थर उठाकर मारने दौड़ा था।

निर्मला ने गम्भीर चिन्ता में पड़कर कहा—यह लड़का तो बड़ा शैतान निकला। उससे यह किसने कहा कि उसके भाई को उन्होंने जहर दे दिया है !

सुधा—वह तुम्हीं से ठीक होगा।

निर्मला को यह नई चिन्ता पैदा हुई। अगर जिया का यही रंग है—अपने बाप से लड़ने पर तैयार रहता है, तो मुझसे क्यों दबने लगा ? वह रात को बड़ी देर तक इसी फिक्र में डूबी रही। मंसाराम की आज उसे बहुत याद आयी। उसके साथ जिन्दगी आराम से कट जाती। इस लड़के का जब अपने पिता के सामने ही यह हाल है, तो उनके पीछे उसके साथ कैसे निर्वाह होगा ! घर हाथ से निकल ही गया। कुछ-न-कुछ कर्ज अभी सिर पर होगा ही। आमदनी का यह हाल ! ईश्वर ही बेड़ा पार लगाएंगे। आज पहली बार निर्मला को बच्ची की फिक्र पैदा हुई। इस बेचारी का न जाने क्या हाल होगा। ईश्वर ने यह विपत्ति सिर पर डाल दी। मुझे तो इसकी जरूरत ही न थी। जन्म लेना ही था, तो किसी भाग्यवान के घर जन्म लेती। बच्ची उसकी छाती से लिपटी हुई सो रही

थी। माता ने उसको और भी चिपटा लिया, मानो कोई उसके हाथ से उसे छीने लिये जाता है।

निर्मला के पास ही सुधा की चारपाई थी। निर्मला तो चिन्ता-सागर में गोता खा रही थी और सुधा मीठी नींद का आनन्द उठा रही थी। क्या उसे अपने बालक की फिक्र सताती है? मृत्यु तो बूढ़े और जवान का भेद नहीं रखती, फिर सुधा को कोई चिन्ता क्यों नहीं सताती? उसे कभी तो भविष्य की चिन्ता से उदास नहीं देखा।

सहसा सुधा की नींद खुल गई। उसने निर्मला को अभी तक जागते देखा, तो बोली—अरे, अभी तक सोयी नहीं?

निर्मला—नींद ही नहीं आती।

सुधा—आंखें बन्द कर लो; आप ही नींद आ जायगी। मैं तो चारपाई पर आते ही मर-सी जाती हूं। वह जागते भी हैं, तो खबर नहीं होती। न जाने मुझे क्यों इतनी नींद आती है। शायद कोई रोग है।

निर्मला—हां, बड़ा भारी रोग है। इसे राज-रोग कहते हैं। डॉक्टर साहब से कहो, दवा शुरू कर दें।

सुधा—तो आखिर जागकर क्या सोचूं? कभी-कभी मैके की याद आ जाती है, तो उस दिन जरा देर में आंख लगती है।

निर्मला—डॉक्टर साहब की याद नहीं आती?

सुधा—कभी नहीं, उनकी याद क्यों आए? जानती हूं कि टेनिस खेलकर आये होंगे, खाना खाया होगा और आराम से लेटे होंगे।

निर्मला—लो, सोहन भी जाग गया! जब तुम जाग गयीं, तो भला वह क्यों सोने लगा?

सुधा—हां बहन, इसकी अजीब आदत है। मेरे साथ सोता और मेरे ही साथ जागता है। उस जन्म का कोई तपस्वी है। देखो, इसके माथे पर तिलक का कैसा निशान है। बांहों पर ऐसे ही निशान हैं। जरूर कोई तपस्वी है।

निर्मला—तपस्वी लोग तो चन्दन-तिलक नहीं लगाते? उस जन्म का कोई धूर्त पुजारी होगा। क्यों रे, तू कहां का पुजारी था? बता?

सुधा—इसका ब्याह मैं बच्ची से करूंगी।

निर्मला—चलो बहन, गाली देती हो। बहन से भी भाई का ब्याह होता

है ।

सुधा—मैं तो करूंगी, चाहे कोई कुछ कहे । ऐसी सुन्दर बहू और कहां पाऊंगी ? जरा देख तो बहन, इसकी देह कुछ गर्म है या मुझे ही मालूम होती है ।

निर्मला ने सोहन का माथा छूकर कहा—नहीं, नहीं, देह गर्म है ! यह ज्वर कब आ गया ? दूध तो पी रहा है न ?

सुधा—अभी सोया था, तब तो देह ठंडी थी । शायद सर्दी लग गई । उढ़ाकर सुलाए देती हूं । सवेरे तक ठीक हो जायगा ।

सवेरा हुआ तो सोहन की हालत और भी खराब हो गई । उसकी नाक बहने लगी और बुखार भी तेज हो गया । आंखें चढ़ गयीं और सिर झुक गया । न वह हाथ-पैर हिलाता था, न हंसता-बोलता था, बस चुपचाप पड़ा था । ऐसा मालूम होता था कि उसे इस वक्त किसी का बोलना अच्छा नहीं लगता । कुछ खांसी भी आने लगी । अब तो सुधा घबरायी । निर्मला की भी राय हुई कि डॉक्टर साहब को बुलाया जाए, लेकिन उसकी बूढ़ी माता ने कहा—डॉक्टर-हकीम का यहां कुछ काम नहीं । साफ तो देख रही हूं कि बच्चे को नजर लग गई है । भला, डॉक्टर क्या करेगा ?

सुधा—अम्माजी, भला यह नजर कौन लगा देगा ? अभी तक तो बाहर कहीं गया भी नहीं ।

माता—नजर कोई लगाता नहीं बेटी, किसी-किसी आदमी की दीठ बुरी होती है, आप-ही-आप लग जाती है । कभी-कभी मां-बाप तक की नजर लग जाती है । मैं तो इसे हुमकते देखकर डरी थी कि कुछ-न-कुछ अनिष्ट होनेवाला है । आंखें नहीं देखती हो, कितनी बढ़ गई हैं, यही नजर की सबसे बड़ी पहचान है ।

बुढ़िया महरी और पड़ोस की पंडिताइन ने इस कथन का अनुमोदन कर दिया । बस महंगू ने आकर बच्चे का मुंह देखा और हंसकर बोला—मालकिन, यह दीठ है, और कुछ नहीं । जरा पतली-पतली तीलियां तो मंगवा दीजिए । भगवान ने चाहा, तो संझा तक बच्चा हंसने लगेगा ।

सरकण्डे के पांच टुकड़े लाये गए । महंगू ने उन्हें बराबर करके एक डोरे से बांध दिया और कुछ बुदबुदाकर उसी पीले हाथों से पांच बार सोहन का सिर

सहलाया। अब जो देखा, तो पांचों तीलियां छोटी-बड़ी हो गई थीं। सब स्त्रियां कौतुक देखकर दंग रह गयीं। अब नजर में किसे सन्देह हो सकता था? महंगू ने फिर बच्चे को तीलियों से सहलाना शुरू किया। अबकी तीलियां बराबर हो गयीं। केवल थोड़ा-सा अन्तर रह गया। यह सब इस बात का प्रमाण था कि नजर का असर अब थोड़ा-सा रह गया है। महंगू सबको दिलासा देकर शाम को फिर आने का वायदा करके चला गया।

बालक की दशा दिन को और भी खराब हो गई। खांसी का जोर हो गया। शाम के समय महंगू ने आकर फिर तीलियों का तमाशा किया। इस वक्त पांचों तीलियां बराबर निकलीं। स्त्रियां निश्चिन्त हो गयीं। लेकिन सोहन को सारी रात खांसते गुजरी। यहां तक कि कई बार उसकी आंखें उलट गयीं। सुधा और निर्मला दोनों ने बैठकर सबेरा किया। खैर, रात कुशल से कट गई। अब वृद्धा माताजी नया रंग लायीं। महंगू नजर न उतार सका, इसलिए अब किसी मौलवी से फूंक डलवाना जरूरी हो गया। सुधा फिर भी अपने पति को सूचना न दे सकी। महरी सोहन को एक चादर से लपेटकर मस्जिद में ले गई और फूंक डलवा लायी। शाम को भी फूंक छोड़ी गई, पर सोहन ने सिर न उठाया। रात आ गई। सुधा ने मन में निश्चय किया कि रात कुशल से बीतेगी, तो प्रातःकाल ही पति को तार दूंगी।

लेकिन रात कुशल से न बीतने पायी। आधी रात जाते-जाते बच्चा हाथ से निकल गया। सुधा की जीवन-सम्पत्ति देखते-देखते उसके हाथों से छिन गई।

वही जिसके विवाह का दो दिन पहले विनोद हो रहा था, आज सारे घर को रुला रहा है। जिसकी भोली-भाली सूरत देखकर माता की छाती फूल उठती थी, उसी को देखकर आज माता की छाती फटी जाती है। सारा घर सुधा को समझाता था, पर उसके आंसू न थमते थे, सब्र न होता था। सबसे बड़ा दुःख इस बात का था कि पति को कौन मुंह दिखलाऊंगी। उन्हें खबर तक न थी।

रात को ही तार दिया गया और दूसरे दिन डॉक्टर सिन्हा नौ बजते-बजते मोटर पर आ पहुंचे। सुधा ने उनके आने की खबर पायी, तो और भी

फूट-फूटकर रोने लगी। बालक की जल-क्रिया हुई! डॉक्टर साहब कई बार अन्दर आये, पर सुधा उनके पास न गयी। उनके सामने कैसे जाए? कौन मुंह दिखाए? उसने अपनी नादानी से उनके जीवन का रत्न छीनकर दरिया में डाल दिया। अब उनके पास जाते उसकी छाती के टुकड़े-टुकड़े हुए जाते थे। बालक को उसकी गोद में देखकर पति की आंखें चमक उठती थीं। बालक ठुमककर पिता की गोद में चला जाता था। माता फिर बुलाती, तो पिता की छाती से चिपट जाता था, और लाख चुमकारने-दुलारने पर भी बाप की गोद न छोड़ता था। तब मां कहती थी, बड़ा मतलबी है! आज वह किसे गोद में लेकर पति के पास जाएगी? उसकी सूनी गोद देखकर कहीं वह चिल्लाकर रो न पड़ें। पति के सम्मुख जाने की अपेक्षा उसे मर जाना कहीं आसान जान पड़ता था। वह एक क्षण के लिए भी निर्मला को न छोड़ती थी कि कहीं पति से सामना न हो जाए।

निर्मला ने कहा—बहन, अब तो जो होना था हो चुका; अब उनसे कब तक भागती फिरोगी? रात ही को चले जायेंगे, अम्मा कहती थीं।

सुधा ने सजल नेत्रों से ताकते हुए कहा—कौन मुंह लेकर उनके पास जाऊं? मुझे डर लग रहा है कि उनके सामने जाते ही मेरे पैर न थर्राने लगें और मैं गिर न पडूं।

निर्मला—चलो, मैं तुम्हारे साथ चलती हूं। तुम्हें संभाले रहूंगी।

सुधा—मुझे छोड़कर भाग तो न जाओगी?

निर्मला—नहीं-नहीं, भागूंगी नहीं।

सुधा—मेरा कलेजा तो अभी से उमड़ा आता है। मैं इतना घोर वज्रपात होने पर भी बैठी हूं, मुझे यही आश्चर्य हो रहा है। सोहन को वह बहुत प्यार करते थे, बहन! न जाने उनके चित्त की क्या दशा होगी। मैं उन्हें ढाढ़स क्या दूंगी, आप ही रोती रहूंगी। क्या रात ही को चले जायेंगे?

निर्मला—हां, अम्माजी तो कहती थीं, छुट्टी नहीं ली है।

दोनों सहेलियां मर्दाने की ओर चलीं; लेकिन कमरे के द्वार पर पहुंचकर सुधा ने निर्मला को विदा कर दिया। अकेली कमरे में दाखिल हुई।

डॉक्टर साहब घबरा रहे थे कि न जाने सुधा की क्या दशा हो रही है। भांति-भांति की शंकाएं मन में आ रही थीं। जाने को तैयार तो बैठे थे, लेकिन

जी न चाहता था। जीवन शून्य-सा मालूम होता था। मन-ही-मन कुढ़ रहे थे। अगर ईश्वर को इतनी जल्दी यह पदार्थ देकर छीन लेना था, तो दिया ही क्यों था ? उन्होंने तो कभी सन्तान के लिए ईश्वर से प्रार्थना भी न की थी। वह आजन्म निःसन्तान रह सकते थे, पर सन्तान पाकर उससे वंचित हो जाना उन्हें असह्य जान पड़ता था। क्या सचमुच मनुष्य ईश्वर का खिलौना है ? यही मानव जीवन का महत्व है। वह केवल बालकों का घरौंदा है, जिसके बनाने का न कोई हेतु है, न बिगाड़ने का। फिर बालकों को भी अपने घरौंदे से—अपनी कागज की नावों से—अपने लकड़ी के घोड़ों से ममता होती है। अच्छे खिलौनों को वह जान के पीछे छिपाकर रखते हैं। अगर ईश्वर बालक ही है, तो वह विचित्र बालक है।

किन्तु बुद्धि तो ईश्वर का यह रूप स्वीकार नहीं करती। अनंत सृष्टि का कर्त्ता उद्दण्ड बालक नहीं हो सकता। हम उसे उन सारे गुणों से विभूषित करते हैं, जो हमारी बुद्धि की पहुंच से बाहर हैं। खिलाड़ीपन तो उन महान् गुणों में नहीं ? क्या हंसते-खेलते बालकों का प्राण हर लेना कोई खेल है ? क्या ईश्वर ऐसा पैशाचिक खेल खेलता है ?

सहसा सुधा दबे पांव कमरे में दाखिल हुई। डॉक्टर साहब उठ खड़े हुए और उसके समीप आकर बोले—तुम कहां थीं, सुधा ? मैं तुम्हारी राह देख रहा था।

सुधा की आंखों में कमरा तैरता जान पड़ा। पति की गर्दन में हाथ डालकर उसने छाती पर सिर रख दिया और रोने लगी, लेकिन उस अश्रुप्रवाह में उसे असीम धैर्य और सान्त्वना का अनुभव हो रहा था। पति के वक्षःस्थल से लिपटी हुई वह अपने हृदय में एक विचित्र स्फूर्ति और बल का संचार होता हुआ पाती थी, मानो पवन से थरथराता हुआ दीपक अंचल की आड़ में आ गया हो।

डॉक्टर साहब ने पत्नी के अश्रुसिंचित कपोलों को दोनों हाथों में लेकर कहा—सुधा, तुम इतना छोटा दिल क्यों करती हो ? सोहन अपने जीवन में जो कुछ करने आया था, कर चुका था, फिर वह क्यों बैठा रहता ? जैसे कोई वृक्ष जल और प्रकाश से बढ़ता है, लेकिन पवन के प्रबल झोंकों ही से सुदृढ़ होता है, उसी भांति प्रणय भी दुःख के आघातों ही से विकास पाता है। खुशी

में साथ हंसनेवाले बहुतेरे मिल जाते हैं, रंज में जो साथ रोए; वही हमारा सच्चा मित्र है। जिन प्रेमियों को साथ रोना नहीं नसीब हुआ, वे मुहब्बत के मजे क्या जानें ? सोहन की मृत्यु ने आज हमारे द्वैत को बिलकुल मिटा दिया। आज ही हमने एक-दूसरे का सच्चा स्वरूप देखा है।

सुधा ने सिसकते हुए कहा—मैं नजर के धोखे में थी। हाय ! तुम उसका मुंह भी न देख पाए। न जाने इन दिनों उसे इतनी समझ कहां से आ गई थी। जब मुझे रोते देखता, तो अपने कष्ट भूलकर मुस्करा देता। तीसरे ही दिन मेरे लाड़ले की आंखें बन्द हो गयीं। कुछ दवा-दर्पन भी न करने पायी।

यह कहते-कहते सुधा के आंसू फिर उमड़ आए। डॉक्टर सिन्हा ने उसे सीने से लगाकर करुणा से कांपती हुई आवाज से कहा—प्रिय, आज तक कोई ऐसा बालक या वृद्ध न मरा होगा, जिसके घरवालों की उसके दवा-दर्पन की लालसा पूरी हो गई होगी।

सुधा—निर्मला ने मेरी मदद की। मैं तो एकाध झपकी भी लेती थी; उसकी आंखें नहीं झपकीं। रात-रात लिये बैठी या टहलती रहती थी। उसके एहसान कभी न भूलूंगी। क्या तुम आज ही जा रहे हो ?

डॉक्टर—हां, छुट्टी लेने का मौका न था। सिविल सर्जन शिकार खेलने गया हुआ था !

सुधा—यह सब हमेशा शिकार ही खेला करते हैं ?

डॉक्टर—राजाओं का और काम ही क्या है ?

सुधा—मैं तो आज न जाने दूंगी।

डॉक्टर—जी तो मेरा भी नहीं चाहता।

सुधा—तो मत जाओ , तार दे दो। मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी। निर्मला को भी लेती चलूंगी।

सुधा वहां से लौटी, तो उसके हृदय का बोझा हल्का हो गया था। पति की प्रेमपूर्ण कोमल वाणी ने उसके सारे शोक और संताप का हरण कर लिया था। प्रेम में असीम विश्वास है, असीम धैर्य है, असीम बल है।

अठारह

जब हमारे ऊपर कोई विपत्ति आ पड़ती है, तो उससे हमें केवल दुःख ही नहीं होता—हमें दूसरों के ताने भी सहने पड़ते हैं। जनता को हमारे ऊपर टिप्पणियां कसने का वह सुअवसर मिल जाता है, जिसके लिए वह हमेशा बेचैन रहती है। मंसाराम क्या मरा, मानो समाज को उन पर आवाजें कसने का बहाना मिल गया। भीतर की बातें कौन जाने, प्रत्यक्ष बात यही थी कि यह सब सौतेली मां की करतूत है। चारों तरफ यही चर्चा थी, ईश्वर न करे, लड़कों को सौतेली मां से पाला पड़े। जिसे अपना बना-बनाया घर उजाड़ना हो—अपने प्यारे बच्चों की गर्दन पर छुरी फेरवानी हो, वह बच्चों के रहते हुए अपना दूसरा ब्याह करे। ऐसा कभी नहीं देखा कि सौत के आने पर घर तबाह न हो गया हो। वही जो बच्चों पर जान देता था, सौत आते ही उन्हीं बच्चों का दुश्मन हो जाता है—उसकी मति ही बदल जाती है। ऐसी देवी ने जन्म ही नहीं लिया, जिसने सौत के बच्चों को अपना समझा हो।

मुश्किल यह थी कि लोग इन टिप्पणियों पर संतुष्ट न होते थे। कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिन्हें अब जियाराम और सियाराम से विशेष स्नेह हो गया था। वे दोनों बालकों से बड़ी सहानुभूति प्रकट करते; यहां तक कि दो-एक महिलाएं तो उनकी माता के शील और स्वभाव को याद कर आंसू बहाने लगती थीं। हाय-हाय ! बेचारी क्या जानती थी कि उसके मरते ही उसके लाड़लों की यह दुर्दशा होगी। अब दूध-मक्खन काहे को मिलता होगा।

जियाराम कहता—मिलता क्यों नहीं ?

महिला कहती—मिलता है ! अरे बेटा, मिलना भी कई तरह का होता है। पानीवाला दूध टके सेर मंगाकर रख दिया, पियो या न पियो—कौन पूछता है ? नहीं तो बेचारी नौकर से दूध दुहवाकर मंगवाती थी; वह तो चेहरा ही कह देता है। दूध की सूरत छिपी नहीं रहती—वह सूरत नहीं रही।

जियाराम को अपनी अम्मा के समय के दूध का स्वाद तो याद था नहीं, जो इस आक्षेप का उत्तर देता और न उस समय की अपनी सूरत ही याद

थी—चुप रह जाता। इन शुभाकांक्षाओं का असर भी पड़ना स्वाभाविक था। जियाराम को अपने घरवालों से चिढ़ होती जाती थी! मुंशीजी मकान नीलाम हो जाने के बाद दूसरे घर में उठ आये, तो किराये की फिक्र हुई। निर्मला ने मक्खन बन्द कर दिया। वह आमदनी ही न रही, तो खर्च कैसे रहता? दोनों कहार अलग कर दिए गए। जियाराम को यह कतर-ब्योंत बुरी लगती थी। अब, निर्मला मैके चली गयी, तो मुंशीजी ने दूध भी बन्द कर दिया। नवजात कन्या की चिन्ता अभी से उनके सिर पर सवार हो गई थी।

जियाराम ने बिगड़कर कहा—दूध बन्द करने से आपका महल बन रहा होगा, भोजन भी बन्द कर दीजिए!

मुंशीजी—दूध पीने का शौक है तो जाकर दुहा क्यों नहीं लाते? पानी के पैसे तो मुझसे न दिए जाएंगे।

जियाराम—मैं दूध दुहाने जाऊं, कोई स्कूल का लड़का देख ले तब?

मुंशीजी—तब कुछ नहीं। कह देना, अपने लिए दूध लिये जाता हूं। दूध लाना कोई चोरी नहीं है।

जियाराम—चोरी नहीं है! आप ही को कोई दूध लाते देख ले, तो आपको शर्म न आएगी?

मुंशीजी—बिलकुल नहीं। मैंने तो इन्हीं हाथों से पानी खींचा है, अनाज की गठरियां लाया हूं। मेरे बाप लखपती नहीं थे।

जियाराम—मेरे बाप तो गरीब नहीं हैं, मैं दूध दुहाने क्यों जाऊं? आखिर आपने कहारों को क्यों जवाब दे दिया?

मुंशीजी—क्या तुम्हें इतना भी नहीं सूझता कि मेरी आमदनी अब पहली-सी नहीं रही! इतने तो नादान नहीं हो?

जियाराम—आखिर आपकी आमदनी क्यों कम हो गई?

मुंशीजी—जब तुम्हें अकल नहीं है, तो क्या समझाऊं? यहां जिन्दगी से तंग आ गया हूं, मुकदमे कौन ले, और ले तो तैयार कौन करे? वह दिल ही नहीं रहा। अब तो जिन्दगी के दिन पूरे कर रहा हूं। सारे अरमान लल्लू के साथ चले गए।

जियाराम—अपने ही हाथों न?

मुंशीजी ने चीखकर कहा—अरे अहमक! यह ईश्वर की मर्जी थी।

अपने हाथों कोई अपना गला काटता है ?

जियाराम—ईश्वर तो आपका विवाह करने न आया था ।

मुंशीजी अब जब्त न कर सके, लाल-लाल आंखें निकालकर बोले—क्या तुम आज लड़ने के लिए कमर बांधकर आए हो ? आखिर किस बिरते पर ? मेरी रोटियां तो नहीं चलाते ? जब इस लायक हो जाना, तो मुझे उपदेश देना । तब मैं सुन लूंगा । अभी तुमको मुझे उपदेश देने का अधिकार नहीं । कुछ दिनों अदब और तमीज सीखो । तुम मेरे सलाहकार नहीं हो कि मैं जो काम करूं, उसमें तुमसे सलाह लूं । मेरी पैदा की हुई दौलत है, उसे जैसे चाहूं, खर्च कर सकता हूं । तुमको जबान खोलने का हक नहीं है । अगर फिर तुमने मुझसे ऐसी बेअदबी की, तो नतीजा बुरा होगा । जब मंसाराम-ऐसा रत्न खोकर मेरे प्राण न निकले, तो तुम्हारे बगैर मैं मर न जाऊंगा, समझ गए ?

यह कड़ी फटकार पाकर भी जियाराम वहां से न टला । निःशंक भाव से बोला—तो क्या आप चाहते हैं कि हमें चाहे कितनी ही तकलीफ हो, मुंह न खोलें ? मुझसे तो यह न होगा । भाई साहब को अदब और तमीज का जो इनाम मिला, उसकी मुझे भूख नहीं । मुझमें जहर खाकर प्राण देने की हिम्मत नहीं ! ऐसे अदब को दूर से दण्डवत् ।

मुंशीजी—तुम्हें ऐसी बातें करते शर्म नहीं आती ?

जियाराम—लड़के अपने बुजुर्गों ही की नकल करते हैं ।

मुंशीजी का क्रोध शांत हो गया । जियाराम पर उसका भी असर न होगा, इसका उन्हें यकीन हो गया । उठकर टहलने चले गए । आज उन्हें सूचना मिल गई कि इस घर का शीघ्र ही सर्वनाश होनेवाला है ।

उस दिन से पिता और पुत्र में किसी-न-किसी बात पर रोज ही एक झड़प हो जाती । मुंशीजी ज्यों-ज्यों तरह देते थे, जियाराम और भी शेर हुआ जाता था । एक दिन जियाराम ने रुक्मिणी से यहां तक कह डाला—बाप है, यह समझकर छोड़ देता हूं, नहीं तो मेरे ऐसे-ऐसे साथी हैं कि चाहूं तो भरे बाजार में पिटवा दूं । रुक्मिणी ने मुंशीजी से कह दिया । मुंशीजी ने प्रकट रूप से तो बेपरवाही दिखायी, पर उनके मन में शंका समा गई । शाम को सैर करना छोड़ दिया । नई चिन्ता सवार हो गई । इसी भय से निर्मला को भी न लाते थे कि

शैतान उसके साथ यही बर्ताव करेगा । जियाराम एक बार दबी जबान कह चुका था—देखूं अब की कैसे इस घर में आती हैं । दूर ही से न दुत्कार दूं, तो जियाराम नाम नहीं । बुड्ढे मियां कर ही क्या लेंगे ? मुंशीजी भी खूब समझ गए थे कि मैं इसका कुछ भी नहीं कर सकता । कोई बाहर का आदमी होता, तो उसे पुलिस और कानून के शिकंजे में कसते । अपने लड़कों को क्या करें ? सच कहा है, आदमी हारता है तो अपने लड़कों से ।

एक दिन डॉक्टर सिन्हा ने जियाराम को बुलाकर समझाना शुरू किया । जियाराम उनका अदब करता था । चुपचाप बैठा सुनता रहा । जब डॉक्टर साहब ने पूछा—आखिर तुम चाहते क्या हो तो वह बोला—साफ-साफ कह दूं न ? बुरा तो न मानिएगा ।

सिन्हा—नहीं, जो तुम्हारे दिल में हो, साफ-साफ कह दो ।

जियाराम—तो सुनिए, जब से भैया मरे हैं, मुझे पिताजी की सूरत देखकर क्रोध आता है । मुझे ऐसा मालूम होता है कि इन्हीं ने भैया की हत्या की है और एक दिन मौका पाकर हम दोनों भाइयों की हत्या करेंगे । अगर इनकी यह इच्छा न होती, तो ब्याह ही क्यों करते ?

डॉक्टर साहब ने बड़ी मुश्किल से हंसी रोककर कहा—तुम्हारी हत्या करने के लिए उन्हें ब्याह करने की जरूरत थी, यह बात मेरी समझ में नहीं आई । बिना विवाह किए भी हत्या कर सकते थे ।

जियाराम—कभी नहीं ! उस वक्त तो उनका दिल ही कुछ और था—हम लोगों पर जान देते थे । अब मुंह नहीं देखना चाहते । उनकी यही इच्छा है कि उन दोनों प्राणियों के सिवा घर में और कोई न रहे । अब जो लड़के होंगे, उनके रास्ते से हम लोगों को हटा देना चाहते हैं, यही उन दोनों आदमियों की दिली मंशा है । हमें तरह-तरह की तकलीफें देकर भगा देना चाहते हैं । इसीलिए आजकल मुकदमे नहीं लेते । हम दोनों भाई आज भाग जाएं, तो फिर देखिए, कैसी बहार होती है ।

डॉक्टर—अगर तुम्हें भगाना होता, तो कोई इल्जाम लगाकर घर से निकाल देते ।

जियाराम—इसके लिए पहले ही से तैयार बैठा हूं ।

डॉक्टर—सुनूं, क्या तैयारी की है ।

जियाराम—जब मौका आएगा, देख लीजिएगा।

यह कहकर जियाराम चलता हुआ। डॉक्टर सिन्हा ने बहुत पुकारा, पर उसने फिरकर देखा भी नहीं।

कई दिन के बाद डॉक्टर साहब की जियाराम से फिर मुलाकात हो गई। डॉक्टर साहब सिनेमा के प्रेमी थे और जियाराम की तो जान ही सिनेमा में बसती थी। डॉक्टर साहब ने सिनेमा पर आलोचना करके जियाराम को बातों में लगा लिया और अपने घर लाए। भोजन का समय आ गया था, दोनों आदमी साथ ही भोजन करने बैठे। जियाराम को वहां भोजन स्वादिष्ट लगा, बोला—मेरे यहां तो जब से महाराज अलग हुआ, खाने का मजा ही जाता रहा ! बुआजी पक्का वैष्णवी भोजन बनाती हैं, जबरदस्ती खा लेता हूं, पर खाने की तरफ ताकने का जी नहीं चाहता।

डॉक्टर—मेरे यहां तो जब घर में खाना पकता है, तो इससे कहीं स्वादिष्ट होता है। तुम्हारी बुआजी प्याज-लहसुन न छूती होंगी।

जियाराम—हां, साहब, उबालकर रख देती हैं। लालाजी को इसकी परवाह ही नहीं कि कोई खाता है या नहीं ! इसीलिए तो महाराज को अलग किया है। अगर रुपये नहीं हैं, तो रोज गहने कहां से बनते हैं ?

डॉक्टर—यह बात नहीं है जियाराम, उनकी आमदनी सचमुच बहुत कम हो गई है। तुम उन्हें बहुत दिक करते हो।

जियाराम—(हंसकर) मैं उन्हें दिक करता हूं ? मुझसे कसम ले लीजिए, जो कभी उनसे बोलता भी हूं। मुझे बदनाम करने का उन्होंने बीड़ा उठा लिया है। बेसबब पीछे पड़े रहते हैं। यहां तक कि मेरे दोस्तों से भी चिढ़ है। आप सोचिए, दोस्तों के बगैर कोई जिन्दा रह सकता है ? मैं कोई लुच्चा नहीं हूं कि लुच्चों की सोहबत रखूं, मगर आप दोस्तों ही के पीछे मुझे रोज सताया करते हैं। कल तो मैंने साफ कह दिया—मेरे दोस्त घर आयेंगे, किसी को अच्छा लगे या बुरा। जनाब, कोई हो, हर वक्त की धौंस नहीं सह सकता।

डॉक्टर—मुझे तो भाई, उन पर बड़ी दया आती है। यह जमाना उनके आराम करने का था। एक तो बुढ़ापा, उस पर जवान बेटे का शोक, स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं। ऐसा आदमी क्या कर सकता है ? वह जो कुछ थोड़ा-बहुत करते हैं, वही बहुत है। तुम अभी और कुछ नहीं कर सकते, तो कम-से-कम

अपने आचरण से तो उन्हें प्रसन्न रख सकते हो। बुड्ढों को प्रसन्न करना बहुत कठिन काम नहीं! यकीन मानो, तुम्हारा हंसकर बोलना ही उन्हें खुश करने को काफी है। इतना पूछने में तुम्हारा क्या खर्च होता है—बाबूजी, आपकी तबीयत कैसी है? वह तुम्हारी यह उद्दण्डता देखकर मन-ही-मन कुढ़ते रहते हैं। मैं तुमसे सच कहता हूं, कई बार रो चुके हैं। उन्होंने मान लो शादी करने में गलती की। इसे वह स्वीकार करते हैं, लेकिन तुम अपने कर्त्तव्य से क्यों मुंह मोड़ते हो? वह तुम्हारे पिता हैं, तुम्हें उनकी सेवा करनी चाहिए। एक बात भी मुंह से ऐसी न निकालनी चाहिए जिससे उनका दिल दुखे! उन्हें यह खयाल करने का मौका क्यों दो कि सब मेरी कमाई खानेवाले हैं, बात पूछनेवाला कोई नहीं। मेरी उम्र तुमसे कहीं ज्यादा है जियाराम, पर आज तक मैंने अपने पिताजी को किसी बात का जवाब नहीं दिया। वह आज भी मुझे डांटते हैं, सिर झुकाकर सुन लेता हूं। जानता हूं, वह जो कुछ कहते हैं, मेरे भले ही को कहते हैं। माता-पिता से बढ़कर हमारा हितैषी और कौन हो सकता है? उनके ऋण से कौन मुक्त हो सकता है?

जियाराम बैठा रोता रहा। अभी उसके सद्भावों का सम्पूर्णतः लोप न हुआ था। अपनी दुर्जनता उसे साफ नजर आ रही थी। इतनी ग्लानि उसे बहुत दिनों से न आई थी। रोकर डॉक्टर साहब से कहा—बहुत ही लज्जित हूं। दूसरों के बहकाने में आ गया था। अब आप मेरी जरा भी शिकायत न सुनेंगे। आप पिताजी से मेरा अपराध क्षमा करा दीजिए। मैं सचमुच बड़ा अभागा हूं। उन्हें मैंने बहुत सताया। उनसे कहिए, मेरे अपराध क्षमा कर दें, नहीं मैं मुंह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊंगा—डूब मरूंगा!

डॉक्टर साहब अपनी उपदेश-कुशलता पर फूले न समाए। जियाराम को गले लगाकर विदा किया।

जियाराम घर पहुंचा, तो ग्यारह बज गए। मुंशीजी भोजन करके अभी बाहर आये थे। उसे देखते ही बोले—जानते हो, कै बजे हैं? बारह का वक्त है।

जियाराम ने बड़ी नम्रता से कहा—डॉक्टर सिन्हा मिल गये। उनके साथ उनके घर तक चला गया। उन्होंने खाने के लिए जिद की, मजबूरन खाना पड़ा। इसी से देर हो गई।

मुंशीजी—डॉक्टर सिन्हा से दुखड़े रोने गये होगे या और कोई काम था ?

जियाराम की नम्रता का चौथा भाग उड़ गया, बोला—दुखड़ा रोने की मेरी आदत नहीं है।

मुंशीजी—जरा भी नहीं, तुम्हारे मुंह में तो जबान ही नहीं। मुझसे जो लोग तुम्हारी बातें करते हैं, वह गढ़ा करते होंगे।

जियाराम—और दिनों की मैं नहीं कहता, लेकिन आज डॉक्टर सिन्हा के यहां मैंने कोई ऐसी बात नहीं की, जो इस वक्त आपके सामने न कर सकूं।

मुंशीजी—बड़ी खुशी की बात है। बेहद खुशी हुई ! आज से गुरुदीक्षा ले ली है क्या ?

जियाराम की नम्रता का एक चतुर्थांश और गायब हो गया। सिर उठाकर बोला—आदमी बिना गुरुदीक्षा लिए हुए भी अपनी बुराइयों पर लज्जित हो सकता है। अपना सुधार करने के लिए गुरुमन्त्र कोई जरूरी चीज नहीं।

मुंशीजी—अब तो लुच्चे जमा न होंगे ?

जियाराम—आप किसी को लुच्चा क्यों कहते हैं, जब तक ऐसा कहने के लिए आपके पास कोई प्रमाण नहीं।

मुंशीजी—तुम्हारे दोस्त सब लुच्चे-लफंगे हैं। एक भी भला आदमी नहीं। मैं तुमसे कई बार कह चुका हूं कि उन्हें मत जमा किया करो, तुमने सुना नहीं। आज मैं आखिरी बार कहे देता हूं कि अगर तुमने उन शोहदों को जमा किया, तो मुझे पुलिस की सहायता लेनी पड़ेगी।

जियाराम की नम्रता का एक चतुर्थांश और गायब हो गया। फड़ककर बोला—अच्छी बात है, पुलिस की सहायता लीजिए। देखें पुलिस क्या करती है ? मेरे दोस्तों में आधे से ज्यादा पुलिस के अफसरों ही के बेटे हैं। जब आप ही मेरा सुधार करने पर तुले हुए हैं, तो मैं व्यर्थ क्यों कष्ट उठाऊं।

यह कहता हुआ जियाराम अपने कमरे में चला गया और एक क्षण के बाद हारमोनियम के मीठे स्वरों की आवाज आने लगी।

सहृदयता का जलाया हुआ दीपक निर्दय व्यंग्य के एक झोंके से बुझ गया। अड़ा हुआ घोड़ा चुमकारने से जोर मारने लगा था, पर हण्टर पड़ते ही फिर अड़ गया और गाड़ी पीछे ढकेलने लगा।

उन्नीस

अबकी सुधा के साथ निर्मला को आना पड़ा। वह तो मैके में कुछ दिन और रहना चाहती थी, लेकिन शोकातुर सुधा अकेले कैसे रहती ? उसी की खातिर आना ही पड़ा। रुक्मिणी ने भूंगी से कहा—देखती है, बहू मायके से कैसा निखरकर आयी है।

भूंगी ने कहा—दीदी, मां के हाथ की रोटियां लड़कियों को बहुत अच्छी लगती हैं।

रुक्मिणी—ठीक कहती है भूंगी, खिलाना तो कुछ मां ही जानती है।

निर्मला को ऐसा मालूम हुआ कि घर का कोई आदमी उसके आने से खुश नहीं। मुंशीजी ने खुशी तो बहुत दिखाई पर हृदयगत चिन्ता को न छिपा सके। बच्ची का नाम सुधा ने आशा रख दिया था। वह आशा की मूर्ति-सी थी भी। देखकर सारी चिन्ता भाग जाती थी। मुंशीजी ने उसे गोद में लेना चाहा, तो रोने लगी; दौड़कर मां से लिपट गई, मानो पिता को पहचानती ही नहीं। मुंशीजी ने मिठाइयों से उसे परचाना चाहा। घर में कोई नौकर तो था नहीं, जाकर सियाराम से दो आने की मिठाइयां लाने को कहा। जियाराम भी बैठा हुआ था। बोल उठा—हम लोगों के लिए तो कभी मिठाइयां नहीं आतीं।

मुंशीजी ने झुंझलाकर कहा—तुम लोग बच्चे नहीं हो।

जियाराम—और क्या बूढ़े हैं ? मिठाइयां मंगवाकर रख दीजिए, तो मालूम हो कि बच्चे हैं या बूढ़े हैं ! निकालिए चार आने और ! आशा की बदौलत हमारे नसीब भी जागें।

मुंशीजी—मेरे पास इस वक्त पैसे नहीं। जाओ सिया, जल्द आना।

जियाराम—सिया नहीं जाएगा ! किसी का गुलाम नहीं है। आशा अपने बाप की बेटी है, तो वह भी अपने बाप का बेटा है।

मुंशीजी—क्या फिजूल की बातें करते हो। नन्ही-सी बच्ची की बराबरी करते तुम्हें शर्म नहीं आती। जाओ सियाराम, ये पैसे लो।

जियाराम—मत जाना सिया ! तुम किसी के नौकर नहीं हो।

सियाराम बड़ी दुविधा में पड़ गया। किसका कहना माने ? अन्त में उसने जियाराम का कहना मानने का निश्चय किया। बाप ज्यादा-से-ज्यादा घुड़क देंगे, जिया तो मारेगा, फिर वह किसके पास फरियाद लेकर जायेगा। बोला—मैं न जाऊंगा।

मुंशीजी ने धमकाकर कहा—अच्छा, तो मेरे पास फिर कोई चीज मांगने मत आना।

मुंशीजी खुद बाहर चले गये और एक रुपये की मिठाई लेकर लौटे। दो आने की मिठाई मांगते उन्हें शर्म आयी। हलवाई उन्हें पहचानता था। दिल में क्या कहेगा ?

मिठाई लिये मुंशीजी अन्दर चले गये। सियाराम ने मिठाई का बड़ा-सा दोना देखा, तो बाप का कहना न मानने का उसे दुःख हुआ। अब वह किस मुंह से मिठाई लेने अन्दर जायेगा ? बड़ी भूल हुई। वह मन-ही-मन जियाराम के चांटों की चोट और मिठाई की मिठास में तुलना करने लगा।

सहसा भूंगी ने दो तश्तरियां दोनों के सामने लाकर रख दीं। जियाराम ने बिगड़कर कहा—इसे उठा ले जा !

भूंगी—काहे को बिगड़ते हो बाबू, क्या मिठाई अच्छी नहीं लगती ?

जियाराम—मिठाई आशा के लिए आई है, हमारे लिए नहीं। ले जा, नहीं तो मैं सड़क पर फेंक दूंगा। हम तो पैसे-पैसे के लिए रटते रहते हैं और यहां रुपये की मिठाई आती है।

भूंगी—तुम ले लो सिया बाबू, यह न लेंगे न सही।

सियाराम ने डरते-डरते हाथ बढ़ाया था कि जियाराम ने डांटकर कहा—मत छूना मिठाई, नहीं तो हाथ तोड़कर रख दूंगा। लालची कहीं का !

सियाराम यह घुड़की सुनकर सहम उठा; मिठाई खाने की हिम्मत न पड़ी। निर्मला ने यह कथा सुनी, तो दोनों लड़कों को मनाने चली। मुंशीजी ने कड़ी कसम रखा दी।

निर्मला—आप समझते नहीं, यह सारा गुस्सा मुझ पर है।

मुंशीजी—गुस्ताख हो गया है। इस खयाल से कोई सख्ती नहीं करता कि लोग कहेंगे, बिना मां के बच्चों को सताते हैं, नहीं तो सारी शरारत घड़ी-भर में निकाल दूं।

निर्मला—इसी बदनामी का तो मुझे भी डर है ।

मुंशीजी—अब न डरूंगा, जिसके जी में जो आये, कहे ।

निर्मला—पहले तो यह ऐसे न थे ।

मुंशीजी—अजी कहता है कि आपके लड़के मौजूद थे, आपने शादी क्यों की । यह कहते भी इसे संकोच नहीं होता कि आप लोगों ने मंसाराम को विष दे दिया ! लड़का नहीं है, शत्रु है ।

जियाराम द्वार पर छिपकर खड़ा था । स्त्री-पुरुष में मिठाई के विषय में क्या बातें होती हैं, यही सुनने वह आया था । मुंशीजी का वह अंतिम वाक्य सुनकर उससे रहा न गया । बोल उठा—शत्रु न होता, तो आप उसके पीछे क्यों पड़ते ? आप जो इस वक्त कह रहे हैं, वह मैं बहुत पहले से समझे बैठा हूं ? भैया न समझे थे, धोखा खा गये । हमारे साथ आपकी दाल न गलेगी; सारा जमाना कह रहा है कि भाई साहब को जहर दिया गया है । मैं कहता हूं, तो आपको क्यों गुस्सा आता है ?

निर्मला तो सन्नाटे में आ गई । मालूम हुआ, किसी ने उसकी देह पर अंगारे डाल दिए । मुंशीजी ने डांटकर जियाराम को चुप कराना चाहा; पर जियाराम निःशंक खड़ा ईंटों का जवाब पत्थर से देता रहा । यहां तक कि निर्मला को भी उस पर क्रोध आ गया । यह कल का छोकरा, किसी काम का न काज का, यों खड़ा टर्रा रहा है, जैसे घर-भर का पालन-पोषण यही करता हो । त्योरियां चढ़ाकर बोली—बस बहुत हुआ, जियाराम ! मालूम हो गया, तुम बड़े लायक हो; बाहर जाकर बैठो ।

मुंशीजी अब तक कुंछ दब-दबकर बोलते रहे, निर्मला की शह पायी तो दिल बढ़ गया । दांत पीसकर लपके और इसके पहले कि निर्मला उनके हाथ पकड़ सके, एक थप्पड़ चला ही दिया । थप्पड़ निर्मला के मुंह पर पड़ा । वही सामने पड़ी । माथा चकरा गया । मुंशीजी के सूखे हुए हाथों में भी इतनी शक्ति है, इसका वह अनुमान न कर सकती थी । सिर पकड़कर बैठ गई । मुंशीजी का क्रोध और भी भड़क उठा, फिर घूंसा चलाया; पर अबकी जियाराम ने उनका हाथ पकड़ लिया और पीछे ढकेलकर बोला—दूर से बात कीजिए, क्यों नाहक अपनी बेइज्जती करवाते हैं ? अम्माजी का लिहाज कर रहा हूं नहीं तो दिखा देता ।

यह कहता हुआ वह बाहर चला गया। मुंशीजी संज्ञाशून्य-से खड़े रहे। इस वक्त अगर जियाराम पर दैवी वज्र गिर पड़ता, तो शायद उन्हें हार्दिक आनन्द होता। जिस पुत्र को कभी गोद में लेकर निहाल हो जाते थे, उसी के प्रति आज भांति-भांति की दुष्कल्पनाएं मन में आ रही थीं।

रुक्मिणी अब तक तो अपनी कोठरी में थीं, अब आकर बोलीं—बेटा जब अपने बराबर हो गया, तो उस पर हाथ न छोड़ना चाहिए।

मुंशीजी ने ओंठ चबाकर कहा—मैं इसे घर से निकालकर छोड़ूंगा, भीख मांगे या चोरी करे, मुझसे कोई मतलब नहीं।

रुक्मिणी—नाक किसकी कटेगी?

मुंशीजी—इसकी चिन्ता नहीं।

निर्मला—मैं जानती कि मेरे आने से यह तूफान खड़ा हो जाएगा, तो भूलकर भी न आती। अब भी भला है मुझे भेज दीजिए। इस घर में मुझसे न रहा जाएगा!

रुक्मिणी—तुम्हारी बहुत लिहाज करता है, बहू! नहीं तो आज अनर्थ ही हो जाता।

निर्मला—अब और क्या अनर्थ होगा, दीदीजी! मैं तो फूंक-फूंककर पांव रखती हूं, फिर भी अपयश लग ही जाता है। अभी घर में पांव रखते देर न हुई, यह हाल हो गया। ईश्वर ही कुशल करे।

रात को भोजन करने कोई न उठा। अकेले मुंशीजी ने खाया। निर्मला को आज नई चिंता हो गई—जीवन कैसे पार लगेगा! अपना ही पेट होता तो विशेष चिन्ता न थी। अब तो एक नई विपत्ति गले पड़ गई थी। वह सोच रही थी—बच्ची के भाग्य में क्या लिखा है, राम!

बीस

चिन्ता में नींद कब आती है? निर्मला चारपाई पर पड़ी करवटें बदल रही

कितना चाहती थी कि नींद आ जाय, पर नींद ने न आने की कसम ...ली थी। चिराग बुझा दिया था, खिड़की के दरवाजे खोल दिये थे, टिक-टिक करनेवाली घड़ी भी दूसरे कमरे में रख आयी थी, पर नींद का नाम न था। जितनी बातें सोचनी थीं, सब सोच चुकी—चिन्ताओं का भी अन्त हो गया, पर पलकें न झपकीं। तब उसने फिर लैम्प जलाया और एक पुस्तक पढ़ने लगी। दो-ही-चार पृष्ठ पढ़े होंगे कि झपकी आ गई। किताब खुली रह गई।

सहसा जियाराम ने कमरे में कदम रखा। उसके पांव थर-थर कांप रहे थे। उसने कमरे में ऊपर-नीचे देखा। निर्मला सोयी हुई थी, उसके सिरहाने ताक पर एक छोटा-सा पीतल का संदूक रखा हुआ था। जियाराम दबे पांव गया, धीरे से संदूक उतारा और बड़ी तेजी से कमरे के बाहर निकला। उसी वक्त निर्मला की आंखें खुल गयीं। चौंककर उठ खड़ी हुई। द्वार पर आकर देखा। कलेजा धक-से हो गया। क्या वह जियाराम है? मेरे कमरे में क्या करने आया था? कहीं मुझे धोखा तो नहीं हुआ? शायद दीदीजी के कमरे में आया हो? यहां उसका काम ही क्या था? शायद मुझसे कुछ कहने आया हो; लेकिन इस वक्त क्या कहने आया होगा? इसकी नीयत क्या है? उसका दिल कांप उठा।

मुंशीजी ऊपर छत पर सो रहे थे। मुंडेर न होने के कारण निर्मला ऊपर न सो सकती थी। उसने सोचा, चलकर उन्हें जगाऊं; पर जाने की हिम्मत न पड़ी। शक्की आदमी हैं, न जाने क्या समझ बैठें और क्या करने पर तैयार हो जायं। कौन जाने मुझे धोखा ही हुआ हो। नींद में कभी धोखा हो जाता है, लेकिन सबेरे पूछने का निश्चय करने पर भी उसे नींद नहीं आई।

सबेरे वह जलपान लेकर स्वयं जियाराम के पास गयी, तो वह उसे देखकर चौंक पड़ा। रोज तो भूंगी आती थी, आज यह क्यों आ रही है। निर्मला की ओर ताकने की हिम्मत न पड़ी।

निर्मला ने उसकी ओर विश्वासपूर्ण नेत्रों से देखकर पूछा—रात को तुम हमारे कमरे में गये थे?

जियाराम ने विस्मय दिखाकर कहा—मैं! भला रात को क्या करने जाता?

क्या कोई गया था ?

निर्मला ने इस भाव से कहा, मानो उसे उसकी बात का पूरा विश्वास हो गया—हां, मुझे ऐसा मालूम हुआ था कि कोई मेरे कमरे से निकला। मैंने उसका मुंह तो न देखा, पर उसकी पीठ देखकर अनुमान किया कि शायद तुम किसी काम से आये हो। इसका पता कैसे चले, कौन था ? कोई था जरूर, इसमें कोई सन्देह नहीं।

जियाराम अपने को निरपराध सिद्ध करने की चेष्टा कर कहने लगा—मैं रात को थियेटर देखने चला गया। वहां से लौटा तो एक मित्र के घर लेट रहा। थोड़ी देर हुई; लौटा हूं। मेरे साथ और भी कई मित्र थे। जिससे जी चाहे पूछ लें। हां भाई, मैं बहुत डरता हूं। ऐसा न हो, कोई चीज गायब हो गई तो मेरा नाम लगे। चोर को तो कोई पकड़ नहीं सकता, मेरे मत्थे जायगी। बाबूजी को आप जानती हैं, मुझे मारने दौड़ेंगे।

निर्मला—तुम्हारा नाम क्यों लगेगा ! अगर तुम्हीं होते तो भी तुम्हें कोई चोरी नहीं लगा सकता। चोरी दूसरे की चीज की की जाती है, अपनी चीज की चोरी कोई नहीं करता।

अभी तक निर्मला की निगाह अपने सन्दूकचे पर न पड़ी थी। भोजन बनाने लगी। जब वकील साहब कचहरी चले गये, तो वह सुधा से मिलने चली। इधर कई दिनों से मुलाकात न हुई थी, फिर रातवाली घटना पर विचार-विमर्श करना था। भूंगी से कहा—कमरे में से गहनों का बक्स उठा ला।

भूंगी ने लौटकर कहा—वहां तो कहीं सन्दूक नहीं है। कहां रखा था ?

निर्मला ने चिढ़कर कहा—एक बार में तो तेरा काम ही कभी नहीं होता। वहां छोड़कर और जायगा कहां ? अलमारी में देखा था ?

भूंगी—नहीं ! बहूजी, अलमारी में तो नहीं देखा, झूठ क्यों बोलूं।

निर्मला मुस्करा पड़ी। बोली—जा देख, जल्दी आ।

एक क्षण में भूंगी फिर खाली हाथ लौट आयी—अलमारी में भी तो नहीं है। अब जहां बताओ, वहां देखूं।

निर्मला झुंझलाकर यह कहती हुई उठ खड़ी हुई—तुझे ईश्वर ने आंखें ही न जाने किसलिए दीं। देख, कमरे में से लाती हूं कि नहीं।

भूंगी भी पीछे-पीछे कमरे में गयी। निर्मला ने ताक पर निगाह डाली, अलमारी खोलकर देखी। चारपाई के नीचे झांककर देखा, फिर कपड़ों का बड़ा सन्दूक खोलकर देखा। बक्स का कहीं पता नहीं। आश्चर्य हुआ, आखिर बक्स गया कहां ?

सहसा रातवाली घटना बिजली की भांति उसकी आंखों के सामने चमक गई। कलेजा उछल पड़ा। अब तक निश्चिन्त होकर खोज रही थी। अब ताप-सा चढ़ आया। बड़ी उतावली से चारों ओर खोजने लगी ! कहीं पता नहीं ! जहां नहीं खोजना चाहिए था, वहां भी खोजा। इतना बड़ा सन्दूकचा बिछावन के नीचे कैसे छिप जाता; पर बिछावन भी खोलकर देखा। क्षण-क्षण मुख की कांति मलिन होती जाती थी। प्राण नहों में समा जाते थे। अन्त को निराश होकर उसने छाती पर एक घूंसा मारा और रोने लगी।

गहने ही स्त्री की सम्पत्ति होते हैं। पति की और किसी सम्पत्ति पर उसका अधिकार नहीं होता है। इन्हीं का उसे बल और गौरव होता है। निर्मला के पास पांच-छः हजार के गहने थे। जब उन्हें पहनकर निकलती थी, तो उतनी देर के लिए उल्लास में उसका हृदय खिला रहता था। एक-एक गहना मानो विपत्ति और वाद्य से बचाने के लिए एक-एक रक्षास्त्र था। अभी रात ही उसने सोचा था, जियाराम की लौंडी बनकर वह न रहेगी। ईश्वर न करे वह किसी के सामने हाथ फैलाए। इसी खेवे से अपनी नाव को भी पार लगा देगी और अपनी बच्ची को भी किसी न किसी घाट पहुंचा देगी। उसे किस बात की चिन्ता है। इन्हें तो कोई उससे छीन न लेगा। आज ये मेरे सिंगार हैं, कल को मेरे आधार हो जाएंगे। इस विचार से उसके हृदय को कितनी सांत्वना मिली थी। वही सम्पत्ति आज उसके हाथ से निकल गई।

अब वह निराधार थी। संसार में उसे कोई अवलम्ब, कोई सहारा न था ! उसकी आशाओं का आधार जड़ से कट गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। ईश्वर ! तुमसे भी न देखा गया ! मुझ दुखिया को तुमने यों ही अपंग बना दिया, अब आंखें भी फोड़ दीं ! अब वह किसके सामने हाथ फैलाएगी, किसके द्वार पर भीख मांगेगी ? पसीने से उसकी देह भीग गई। रोते-रोते आंखें सूज गयीं। निर्मला सिर नीचा किए रो रही थी ! रुक्मिणी उसे धीरज दिला रही थी, लेकिन उसके आंसू न रुकते थे। शोक-ज्वाला

कम न होती थी।

तीन बजे जियाराम स्कूल से लौटा। निर्मला उसके आने की खबर पाकर विक्षिप्त की भांति उठी और उसके कमरे के द्वार पर आकर बोली—भैया, दिल्लगी की हो तो दे दो। दुखिया को सताकर क्या पाओगे ?

जियाराम एक क्षण के लिए कातर हो उठा। चोर-कला में उसका यह पहला ही प्रयास था। वह कठोरता, जिससे हिंसा में मनोरंजन होता है, अब तक उसे प्राप्त न हुई थी। यदि उसके पास सन्दूकचा होता और फिर इतना मौका मिलता कि उसे ताक पर रख आये, तो कदाचित् वह उस मौके को न छोड़ता, लेकिन सन्दूकचा उसके हाथ से निकल चुका था। यारों ने उसे सर्राफे में पहुंचा दिया था और औने-पौने में बेच भी डाला गया। चोरों की झूठ के सिवा और कौन रक्षा कर सकता है ? बोला—भला अम्माजी, मैं आपसे ऐसी दिल्लगी करूंगा ? आप अभी तक मुझ पर शंका करती जा रही हैं। मैं कह चुका हूं कि मैं रात को घर पर न था; लेकिन आपको यकीन ही नहीं आता। बड़े दुख की बात है कि मुझे आप इतना नीच समझती हैं।

निर्मला ने आंसू पोंछते हुए कहा—मैं तुम्हारे ऊपर शक नहीं करती, भैया! तुम्हें चोरी नहीं लगाती। मैंने समझा शायद दिल्लगी की हो।

जियाराम पर यह चोरी का सन्देह कैसे कर सकती थी ? दुनिया यही तो कहेगी कि लड़के की मां मर गई है, तो उस पर चोरी का इल्जाम लगाया जा रहा है। मेरे मुंह में ही तो कालिख लगेगी !

जियाराम ने आश्वासन देते हुए कहा—चलिए मैं देखूं, आखिर ले कौन गया ? चोर आया किस रास्ते से ?

भूंगी—भैया, तुम चोरों को आने की कहते हो। चूहे के बिल से तो निकल आते हैं, यहां तो चारों ओर ही खिड़कियां हैं !

निर्मला—सारा घर तो छान मारा; अब कहां खोजने को कहते हो ?

जियाराम—आप लोग सो भी तो जाती हैं मुर्दों से बाजी लगाकर।

चार बजे मुंशीजी घर में आये, तो निर्मला की दशा देखकर पूछा—कैसी तबीयत है ? कहीं दर्द तो नहीं है ? यह कहकर उन्होंने आशा को गोद में उठा लिया।

निर्मला कोई जवाब न दे सकी। फिर रोने लगी।

भूंगी ने कहा—ऐसा कभी नहीं हुआ था। मेरी सारी उम्र इसी घर में कट गई। आज तक पैसे की चोरी नहीं हुई। दुनिया यही कहेगी कि भूंगी का काम है। अब तो भगवान् ही पत-पानी रखें।

मुंशीजी अचकन के बटन खोल रहे थे। फिर बटन बन्द करते हुए बोले—क्या हुआ ? क्या कोई चीज चोरी हो गई !

भूंगी—बहूजी के सारे गहने उठ गए।

मुंशीजी—रखे कहां थे ?

निर्मला ने सिसकियां लेते हुए रात की सारी घटना बयान कर दी; पर जियाराम की सूरत के आदमी के अपने कमरे से निकलने की बात न कही। मुंशीजी ने ठण्डी सांस भरकर कहा—ईश्वर भी बड़ा अन्यायी है। जो मरे हैं, उन्हीं को मारता है। मालूम होता है, अदिन आ गए हैं। अगर चोर आया तो आया किधर से ? कहीं सेंध नहीं पड़ी और किसी तरफ से आने का रास्ता नहीं। मैंने तो कोई ऐसा पाप नहीं किया, जिसकी मुझे यह सजा मिल रही है। बार-बार कहता रहा, गहने का सन्दूकचा ताक़ पर मत रखो, लेकिन कौन सुनता है ?

निर्मला—मैं क्या जानती थी कि यह गजब टूट पड़ेगा ?

मुंशीजी—इतना तो जानती थीं कि सब दिन बराबर नहीं जाते। आज बनवाने जाऊं तो दस हजार से कम नहीं लगेंगे। आजकल अपनी जो दशा है, तुमसे छिपी नहीं; खर्च-भर को मुश्किल से मिलता है, गहने कहां से बनेंगे ? जाता हूं, पुलिस में इत्तिला कर आता हूं, पर मिलने की कोई उम्मीद न समझो।

निर्मला ने आपत्ति के भाव से कहा—जब जानते हैं कि पुलिस में इत्तिला करने से कुछ न होगा, तो क्यों जा रहे हैं ?

मुंशीजी—दिल नहीं मानता, और क्या ? इतना बड़ा नुकसान उठाकर चुपचाप तो नहीं बैठा जाता।

निर्मला—मिलनेवाले होते तो जाते ही क्यों ? तकदीर में न थे, तो कैसे रहते ?

मुंशीजी—तकदीर में होंगे, तो मिल जाएंगे, नहीं तो गए हैं ही।

मुंशीजी कमरे से निकले। निर्मला ने उनका हाथ पकड़कर कहा—मैं

कहती हूं, मत जाओ। कहीं ऐसा न हो, लेने के देने पड़ जाएं।

मुंशीजी ने हाथ छुड़ाकर कहा—तुम भी कैसी बच्चों की-सी जिद कर रही हो! दस हजार का नुकसान ऐसा नहीं है जिसे मैं यों ही उठा लूं। मैं रो नहीं रहा हूं; पर मेरे हृदय पर जो बीत रही है, वह मैं ही जानता हूं।

वह तेजी से कमरे से निकल आये और थाने पर जा पहुंचे। थानेदार उनका बहुत लिहाज करता था। उसे एक बार रिश्वत के मुकदमे से बरी करा चुके थे। उनके साथ ही तफतीश करने आ पहुंचा। नाम था अलायार खां।

शाम हो गई थी। थानेदार ने मकान के अगवाड़े-पिछवाड़े घूम-घूमकर देखा। अन्दर जाकर निर्मला के कमरे को गौर से देखा। ऊपर की मुंडेर की जांच की। मुहल्ले के दो-चार आदमियों से चुपके-चुपके कुछ बातें कीं, और तब मुंशीजी से बोले—जनाब, खुदा की कसम, यह किसी बाहर के आदमी का काम नहीं। खुदा की कसम, अगर कोई बाहर का आदमी निकले, तो आज से थानेदारी करना छोड़ दूं। आपके घर में कोई मुलाजिम तो ऐसा नहीं है, जिस पर आपको शुबहा हो?

मुंशीजी—घर में तो आजकल सिर्फ एक महरी है।

थानेदार—अजी, वह पगली है। यह किसी बड़े शातिर का काम है, खुदा की कसम!

मुंशीजी—तो घर में और कौन है? मेरे दोनों लड़के हैं, स्त्री और बहिन हैं! उनमें से किस पर शक करूं?

थानेदार—खुदा की कसम, घर ही के किसी आदमी का काम है, चाहे वह कोई हो। इंशाअल्लाह, दो-चार दिन में मैं आपको इसकी खबर दूंगा। यह तो नहीं कह सकता कि माल भी सब मिल जाएगा; पर खुदा की कसम, चोर को जरूर पकड़ दिखाऊंगा। थानेदार चला गया, तो मुंशीजी ने आकर निर्मला से उसकी बातें कहीं। निर्मला सहम उठी—आप थानेदार से यह कह दीजिए, तफतीश न करें, आपके पैरों पड़ती हूं।

मुंशीजी—आखिर क्यों?

निर्मला—अब क्या बताऊं! वह कह रहा है कि घर ही के किसी आदमी का काम है।

मुंशीजी—उसे बकने दो।

जियाराम अपने कमरे में बैठा हुआ भगवान को याद कर रहा था। उसके मुंह पर हवाइयां उड़ रही थीं। सुन चुका था पुलिसवाले चेहरे से भांप जाते हैं। बाहर निकलने की हिम्मत न पड़ती थी। दोनों आदमियों में क्या बातें हो रही हैं, यह जानने के लिए छटपटा रहा था। ज्योंही थानेदार चला गया और भूंगी किसी काम से बाहर निकली, जियाराम ने पूछा—थानेदार क्या कह रहा था, भूंगी ?

भूंगी ने पास आकर कहा— डाढ़ीजार कहता था; घर ही के किसी आदमी का काम है; बाहर का कोई नहीं है।

जियाराम—बाबूजी ने कुछ नहीं कहा ?

भूंगी—कुछ तो नहीं कहा; खड़े 'हूं-हूं' करते रहे। घर पर भूंगी ही गैर है न, और तो सब अपने ही हैं।

जियाराम—मैं भी तो गैर हूं, तू ही क्यों ?

भूंगी—तुम गैर काहे हो, भैया !

जियाराम—बाबूजी ने थानेदार से कहा नहीं, घर में किसी पर उनका शुबहा तो नहीं है।

भूंगी—कुछ तो कहते नहीं सुना। बेचारे थानेदार ने भले ही कहा—भूंगी तो पगली है, वह क्या चोरी करेगी; बाबूजी तो मुझे फंसाए ही देते थे।

जियाराम—तब तो तू भी निकल गयी। अकेला मैं ही रह गया। तू ही बता, तूने मुझे उस दिन घर में देखा था ?

भूंगी—नहीं भैया, तुम तो ठेठर देखने गये थे।

जियाराम—गवाही देगी न ?

भूंगी—यह क्या कहते हो, भैया ? बहूजी तफतीश बन्द करा देंगी।

जियाराम—सच ?

भूंगी—हां भैया, बार-बार कहती हैं कि तफतीश न कराओ। गहने गये, जाने दो, पर बाबूजी मानते नहीं।

पांच-छह दिन तक जियाराम ने भोजन नहीं किया। कभी दो-चार कौर खा लेता, कभी कह देता, भूख नहीं है। उसके चेहरे का रंग उड़ा रहता था। रातें जागते कटतीं, प्रतिक्षण थानेदार की शंका बनी रहती थी। यदि वह

जानता कि मामला इतना तूल खींचेगा, तो कभी ऐसा काम न करता। उसने तो समझा था, किसी चोर पर शुबहा होगा ! मेरी तरफ किसी का ध्यान भी न जाएगा; पर अब भण्डा फूटता हुआ मालूम होता था। अभागा थानेदार जिस ढंग से छानबीन कर रहा था, उससे जियाराम को बड़ी शंका हो रही थी।

सातवें दिन संध्या समय जियाराम घर लौटा, तो बहुत चिंतित था। आज तक उसे बचने की कुछ-न-कुछ आशा थी। माल अभी तक कहीं बरामद न हुआ था; पर आज उस माल के बरामद होने की खबर मिल गई थी। इसी दम थानेदार कांस्टेबल को लिये आता होगा। बचने का कोई उपाय नहीं। थानेदार रिश्वत देने से सम्भव है, मुकदमे को दबा दे। रुपये हाथ में थे। पर क्या बात छिपी रहेगी ? अभी माल बरामद नहीं हुआ, फिर भी सारे शहर में अफवाह थी कि बेटे ने माल उड़ाया है। माल मिल जाने पर तो गली-गली बात फैल जायेगी। वह फिर किसी को मुंह न दिखा सकेगा। मुंशीजी कचहरी से लौटे तो बहुत घबराए हुए थे। सिर थामकर चारपाई पर बैठ गये।

निर्मला ने कहा—कपड़े नहीं उतारते ? आज तो और दिनों से देर हो गयी है।

मुंशीजी—क्या कपड़े उतारूं ? तुमने कुछ सुना।

निर्मला—क्या बात है ? मैंने तो कुछ नहीं सुना।

मुंशीजी—माल बरामद हो गया। अब जिया का बचना मुश्किल है।

निर्मला को आश्चर्य नहीं हुआ। उसके चेहरे से ऐसा जान पड़ा, मानो उसे यह बात मालूम थी। बोली—मैं तो पहले ही कह रही थी कि थाने में इत्तिला मत कीजिए !

मुंशीजी—तुम्हें जिया पर शक था ?

निर्मला—शक क्यों नहीं था, मैंने उन्हें अपने कमरे से निकलते देखा था।

मुंशीजी—फिर तुमने मुझसे क्यों न कह दिया ?

निर्मला—यह बात मेरे कहने की न थी, आपके दिल में जरूर खयाल आता कि यह ईर्ष्यावश आक्षेप लगा रही है। कहिए, यह खयाल होता या नहीं ? झूठ न बोलिएगा।

मुंशीजी—सम्भव है, मैं इनकार नहीं कर सकता। फिर भी उस दशा

में तुम्हें मुझसे कह देना चाहिए था। रिपोर्ट की नौबत न आती। तुमने अपनी नेकनामी की तो फिक्र की, पर यह न सोचा कि परिणाम क्या होगा। मैं अभी थाने से चला आता हूं। अलायार खां आता ही होगा।

निर्मला ने हताश होकर पूछा—फिर अब ?

मुंशीजी ने आकाश की ओर ताकते हुए कहा—फिर जैसी भगवान् की इच्छा ! हजार-दो हजार रुपये रिश्वत देने के लिए होते, तो शायद मामला दब जाता; पर मेरी हालत तो तुम जानती हो। तकदीर खोटी है, और कुछ नहीं। पाप तो मैंने किए हैं दण्ड कौन भोगेगा ? एक लड़का था, उसकी वह दशा हुई, दूसरे की यह दशा हो रही है। नालायक था, गुस्ताख था, कामचोर था, पर था तो अपना ही लड़का, कभी-न-कभी चेत ही जाता। यह चोट अब न सही जायेगी।

निर्मला—अगर कुछ दे-दिलाकर जान बच सके, तो मैं रुपये का प्रबन्ध कर दूं।

मुंशीजी—कर सकती हो ? कितने रुपये दे सकती हो ?

निर्मला—कितना दरकार होगा ?

मुंशीजी—एक हजार से कम में तो शायद बातचीत न हो सके। मैंने एक मुकदमे में उससे एक हजार रुपये लिए थे ! वह कसर आज निकालेगा।

निर्मला—हो जायगा। अभी थाने जाइये।

मुंशीजी को थाने में बड़ी देर लगी। एकान्त में बातचीत करने का बहुत देर में मौका मिला। अलायार खां पुराना घाघ था। बड़ी मुश्किल से अण्टी पर चढ़ा। पांच सौ रुपये लेकर भी एहसान का बोझ सिर पर लाद ही दिया। काम हो गया। लौटकर निर्मला से बोले—लो भाई, बाजी मार ली। रुपये तुमने दिये, पर काम मेरी जबान ही ने दिया—बड़ी-बड़ी मुश्किलों से राजी हो गया। यह भी याद रहेगी। जियाराम भोजन कर चुका है ?

निर्मला —कहां, वह तो अभी घूमकर लौटे ही नहीं।

मुंशीजी—बारह तो बज रहे होंगे।

निर्मला—कई दफे जा-जाकर देख आयी। कमरे में अंधेरा पड़ा हुआ है।

मुंशीजी—और सियाराम ?

निर्मला—वह तो खा-पीकर सोए हैं।

मुंशीजी—उससे पूछा नहीं, जिया कहां गया ?

निर्मला—वह तो कहते हैं, मुझसे कुछ कहकर नहीं गये।

मुंशीजी को कुछ शंका हुई। सियाराम को जगाकर पूछा—तुमसे जियाराम ने कुछ कहा नहीं, कब तक लौटेगा। गया कहां है ?

सियाराम ने सिर खुजलाते हुए और आंखें मलते हुए कहा—मुझसे कुछ नहीं कहा।

मुंशीजी—कपड़े सब पहनकर गया है ?

सियाराम—जी नहीं, कुर्त्ता और धोती।

मुंशीजी—जाते वक्त खुश था ?

सियाराम—खुश तो नहीं मालूम होते थे। कई बार अन्दर आने का इरादा किया, पर देहरी ही से लौट गए। कई मिनट तक सायबान में खड़े रहे। चलने लगे, तो आंखें पोंछ रहे थे। इधर कई दिनों से अक्सर रोया करते थे।

मुंशीजी ने ऐसी ठण्डी सांस ली, मानो जीवन में अब कुछ नहीं रहा और निर्मला से बोले—तुमने किया तो अपनी समझ में भले ही के लिए, पर शत्रु भी मुझ पर इससे कठोर आघात न कर सकता था। जियाराम की माता होती, तो क्या यह संकोच करती ? कदापि नहीं।

निर्मला—जरा डॉक्टर साहब के यहां क्यों नहीं चले जाते ? शायद वहां बैठे हों। कई लड़के रोज आते हैं, उनसे पूछिए; शायद कुछ पता चल जाए। फूंक-फूंककर चलने पर भी अपयश लग ही गया।

मुंशीजी ने मानो खुली हुई खिड़की से कहा—हां, जाता हूं, और क्या करूँगा।

मुंशीजी बाहर आये तो देखा, डॉक्टर सिन्हा खड़े हैं। चौंककर पूछा—क्या आप देर से खड़े हैं ?

डॉक्टर—जी नहीं, अभी आया हूं। आप इस वक्त कहां जा रहे हैं ? साढ़े बारह हो गए हैं।

मुंशीजी—आप ही की तरफ आ रहा था। जियाराम अभी तक घूमकर

नहीं आया। आपकी तरफ तो नहीं गया था ?

डॉक्टर सिन्हा ने मुंशीजी के दोनों हाथ पकड़ लिये और इतना कह पाए थे, "भाई साहब, अब धैर्य से काम ··· " कि मुंशीजी गोली खाए हुए मनुष्य की भांति जमीन पर गिर पड़े।

इक्कीस

रुक्मिणी ने निर्मला से त्यौरियां बदलकर कहा—क्या नंगे पांव मदरसे जायेगा ?

निर्मला ने बच्ची के बाल गूंथते हुए कहा—मैं क्या करूं ? मेरे पास रुपये नहीं हैं।

रुक्मिणी—गहने बनवाने को रुपये जुड़ते हैं, लड़के के जूतों के लिए रुपयों में आग लग जाती है ! दो तो चले ही गये, क्या तीसरे को भी रुला-रुलाकर मार डालने का इरादा है ?

निर्मला ने सांस खींचकर कहा—जिसको जीना है, जियेगा, जिसको मरना है, मरेगा; मैं किसी को मारने-जिलाने नहीं जाती।

आजकल एक-न-एक बात पर निर्मला और रुक्मिणी में रोज ही झड़प हो जाती थी। जब से गहने चोरी गये हैं, निर्मला का स्वभाव बिलकुल बदल गया है। वह एक-एक कौड़ी दांत से पकड़ने लगी है। सियाराम रोते-रोते चाहे जान दे दे, मगर उसे मिठाई के लिए पैसे नहीं मिलते; और यह बर्ताव कुछ सियाराम ही के साथ नहीं है, निर्मला स्वयं अपनी जरूरतों को टालती रहती है। धोती जब तक फटकर तार-तार न हो जाय, नई धोती नहीं आती। महीनों सिर का तेल नहीं मंगाया जाता। पान खाने का शौक था, कई-कई दिन तक पानदान खाली पड़ा रहता है, यहां तक कि बच्ची के लिए दूध भी नहीं आता। नन्हे-से शिशु का भविष्य विराट रूप धारण करके उसके विचार-क्षेत्र पर मंडराता है।

मुंशीजी ने अपने को सम्पूर्णतः निर्मला के हाथों में सौंप दिया है। उसके किसी काम में दखल नहीं देते। न जाने क्यों उससे कुछ दबे रहते हैं। वह अब बिना नागा कचहरी जाते हैं। इतनी मेहनत उन्होंने जवानी में भी न की थी। आंखें खराब हो गई हैं। डॉक्टर सिन्हा ने रात को लिखने-पढ़ने की मुमानियत कर दी है। पाचन-शक्ति पहले ही दुर्बल थी, अब और भी खराब हो गई है। दमे की शिकायत भी पैदा हो चली पर बेचारे सबेरे से आधी रात तक काम करते हैं। काम करने को जी चाहे या न चाहे, तबीयत अच्छी हो या न हो, काम करना ही पड़ता है। निर्मला को उन पर जरा भी दया नहीं आती। यही भविष्य की भीषण चिन्ता उसके आन्तरिक सद्भावों का सर्वनाश कर रही है। किसी भिक्षुक की आवाज सुनकर झल्ला पड़ती है। वह एक कौड़ी भी खर्च करना नहीं चाहती।

एक दिन निर्मला ने सियाराम को घी लाने के लिए भेजा। भूंगी पर उसका विश्वास न था, उससे अब कोई सौदा न मंगाती थी। सियाराम में काट-कपट की आदत न थी। औने-पौने करना न जानता था। प्रायः बाजार का सारा काम उसी को करना पड़ता। निर्मला एक-एक चीज तौलती, जरा भी कोई चीज तौल में कम पड़ती उसे लौटा देती। सियाराम का बहुत-सा समय इसी लौटा-फेरी में बीत जाता था। बाजारवाले उसे जल्दी कोई सौदा न देते। आज भी वही नौबत आयी। सियाराम अपने विचार से तो बहुत अच्छा घी, कई दुकानों से देखकर लाया, पर निर्मला ने उसे सूंघते ही कहा—घी खराब है, लौटा आओ।

सियाराम ने झुंझलाकर कहा—इससे अच्छा घी बाजार में नहीं, मैं सारी दुकानें देखकर लाया हूं।

निर्मला—तो मैं झूठ कहती हूं?

सियाराम—यह मैं नहीं कहता, लेकिन बनिया अब घी वापस न लेगा। उसने मुझसे कहा था, जिस तरह देखना चाहो देखो, माल तुम्हारे सामने है, बोहनी-बट्टे के वक्त सौदा वापस न लूंगा। मैंने सूंघकर, चखकर लिया। अब किस मुंह से लौटाने जाऊं।

निर्मला ने दांत पीसकर कहा—घी में साफ चरबी मिली हुई है और तुम कहते हो, घी अच्छा है! मैं इसे रसोई में न ले जाऊंगी; तुम्हारा जी चाहे

लौटा दो, चाहे खा जाओ।

घी की हांडी वहीं छोड़कर निर्मला घर में चली गई। सियाराम क्रोध और क्षोभ में कातर हो उठा। वह कौन मुंह लेकर लौटाने जाय ? बनिया साफ कह देगा, मैं नहीं लौटाता। तब वह क्या करेगा ? आस-पास के दस-पांच बनिये और सड़क पर चलनेवाले आदमी खड़े हो जायंगे। उन सबों के सामने उसे लज्जित होना पड़ेगा। बाजार में यों ही कोई बनिया उसे जल्दी सौदा नहीं देता। वह किसी दुकान पर खड़ा नहीं होने पाता। चारों ओर से उसी पर लताड़ पड़ेगी। उसने मन-ही-मन झुंझलाकर कहा—पड़ा रहे घी, मैं लौटाने न जाऊंगा।

मातृहीन बालक के समान दुःखी-दीन प्राणी संसार में दूसरा नहीं होता। और सारे दुःख भूल जाते हैं। बालक को माता याद आई। अम्मा होतीं तो क्या आज मुझे यह सब सहना पड़ता ? भैया चले गये; मैं ही अकेला यह विपत्ति सहने के लिए क्यों बच रहा ? सियाराम की आंखों से आंसू की झड़ी लग गई। उसके शोक-कातर कण्ठ से एक गहरे निःश्वास के साथ मिले हुए शब्द निकल आए—अम्मा ! मुझे क्यों भूल गयीं, मुझे क्यों नहीं बुला लेतीं ?

सहसा निर्मला फिर कमरे की तरफ से आयी। उसने समझा था, सियाराम चला गया होगा। उसे बैठे देखा, तो गुस्से से बोली—तुम अभी तक बैठे ही हो ? आखिर खाना कब बनेगा ?

सियाराम ने आंखें पोंछ डालीं। बोला—मुझे स्कूल जाने में देर हो जायगी।

निर्मला—एक दिन देर हो जायगी तो कौन हरज है ? यह भी तो घर का काम है।

सियाराम—रोज तो यही धन्धा लगा रहता है। कभी वक्त पर नहीं पहुंचता। घर पर भी पढ़ने का वक्त नहीं मिलता। कोई सौदा दो-चार बार लौटाए बिना नहीं लिया जाता। डांट तो मुझ पर पड़ती है, शर्मिंदा तो मुझे होना पड़ता है, आपको क्या ?

निर्मला—हां, मुझे क्या ? मैं तो तुम्हारी दुश्मन ठहरी, अपना होता तब तो उसे दुःख होता। मैं तो ईश्वर से मनाया करती हूं कि तुम पढ़-लिख न सको। मुझमें सारी बुराइयां ही बुराइया हैं। तुम्हारा कसूर

नहीं। विमाता का नाम ही बुरा होता है। अपनी मां विष भी खिलाए तो अमृत है; मैं अमृत भी खिलाऊं तो विष हो जायगा। तुम लोगों के कारण मैं मिट्टी में मिल गई! रोते-रोते उम्र कटी जाती है, मालूम ही न हुआ कि भगवान् ने किसलिए जन्म दिया था; और तुम्हारी समझ में मैं विहार कर रही हूं। तुम्हें सताने में मुझे मजा आता है! भगवान् भी नहीं पूछते कि सारी विपत्ति का अन्त हो जाता।

यह कहते-कहते निर्मला की आंखें भर आयीं। अन्दर चली गई। सियाराम उसको रोते देखकर सहम उठा। उसे ग्लानि तो नहीं हुई; हां, शंका हुई कि न जाने कौन-सा दण्ड मिले। चुपके से हांडी उठा ली और घी लौटाने चला, इस तरह जैसे कोई कुत्ता किसी नए गांव में जाता है। उसी कुत्ते की भांति उसकी मनोगत वेदना उसके एक-एक भाव से प्रकट हो रही है। उसे देखकर साधारण बुद्धि का मनुष्य भी अनुमान कर सकता है कि अनाथ है।

सियाराम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, आनेवाले संग्राम के भय से उसकी हृदय-गति बढ़ती जाती थी। उसने निश्चय किया—बनिए ने घी न लौटाया तो वह घी वहीं छोड़कर चला आएगा। झख मारकर बनिया आप ही बुलायेगा। बनिए को डांटने के लिए भी उसने शब्द सोच लिये! वह कहेगा, क्यों साहजी, आंखों में धूल झोंकते हो। दिखाते हो चोखा माल और देते हो रद्दी! पर यह निश्चय करने पर भी उसके पैर आगे बहुत धीरे-धीरे उठते थे। वह न चाहता था कि बनिया उसे आता हुआ देखे। वह अकस्मात् ही उसके सामने पहुंच जाना चाहता था। इसीलिए वह चक्कर काटकर दूसरी गली से बनिये की दुकान पर गया।

बनिये ने उसे देखते ही कहा—हमने कह दिया था कि सौदा वापस न लेंगे। बोलो, कहा था कि नहीं?

सियाराम ने बिगड़कर कहा—तुमने वह घी कहां दिया, जो दिखाया था! दिखाया था एक माल, दिया दूसरा माल; लौटाओगे कैसे नहीं? क्या कुछ राहजनी है?

साह—इससे चोखा माल बाजार में निकल आये, तो जुरमाना दूं। उठा लो हांडी और दो-चार दुकानें देख आओ।

सियाराम—हमें इतनी फुर्सत नहीं है। अपना घी लौटा लो।

साह—घी न लौटेगा !

बनिये की दुकान पर एक जटाधारी साधु बैठा हुआ तमाशा देख रहा था। उठकर सियाराम के पास आया और हांडी का घी सूंघकर बोला—बच्चा, घी तो बहुत अच्छा मालूम होता है।

साह ने शह पाकर कहा—बाबाजी, हम लोग तो आप ही इनको घटिया सौदा नहीं देते ! खराब माल क्या जाने-सुने ग्राहकों को दिया जाता है।

साधु—घी ले जाव बच्चा, बहुत अच्छा है।

सियाराम रो पड़ा। घी को बुरा सिद्ध करने के लिए उसके पास अब क्या प्रमाण था ? बोला—वही तो कहती हैं, घी अच्छा नहीं है। लौटा आओ। मैं तो कहता था, घी अच्छा है।

साह—इनकी अम्मा कहती होंगी। कोई सौदा मन में नहीं भाता। बेचारे लड़के को बार-बार दौड़ाया करती हैं। सौतेली मां हैं न ! अपनी मां हो तो कुछ खयाल भी करे।

साधु ने सियाराम को सदय नेत्रों से देखा, मानो उसे त्राण देने के लिए उनका हृदय व्याकुल हो रहा है। तब करुण स्वर में बोले—तुम्हारी मां का स्वर्गवास हुए कितने दिन हुए, बच्चा ?

सियाराम—छठा साल है।

साधु—तब तो तुम उस वक्त बहुत छोटे रहे होगे। भगवान्, तुम्हारी लीला कितनी विचित्र है ! इस दुधमुंहे बालक को मातृप्रेम से वंचित कर दिया। बड़ा अनर्थ करते हो, भगवान् ! छह साल का बालक और राक्षसी विमाता के पाले पड़े ! धन्य हो दयानिधि ! साहजी बालक पर दया करो—घी लौटा लो, नहीं तो इसकी माता इसे घर में न रहने देगी। भगवान् की इच्छा से तुम्हारा घी जल्द बिक जायगा। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा।

साहजी ने रुपये वापस न किए। आखिर लड़के को फिर घी लेने आना ही पड़ेगा। न जाने दिन में कितनी बार चक्कर लगाना पड़े और किस जालिये से पाला पड़े। उसकी दुकान में जो घी सबसे अच्छा था, वह सियाराम को दे दिया, सियाराम दिल में सोच रहा था, बाबाजी कितने दयालु हैं। उन्होंने

सिफारिश न की होती, तो साहजी क्या अच्छा घी देते।

सियाराम घी लेकर चला, तो बाबाजी भी उसके साथ हो लिए। रास्ते में मीठी बातें करने लगे—

'बच्चा, मेरी माता भी मुझे तीन साल का छोड़कर परलोक सिधारी थीं। तभी से मातृविहीन बालकों को देखता हूं, तो मेरा हृदय फटने लगता है।'

सियाराम ने पूछा—आपके पिता ने भी दूसरा विवाह कर लिया था ?

साधु—हां बच्चा, नहीं तो आज साधु क्यों होता। पहले पिताजी विवाह न करते थे। मुझे बहुत प्यार करते थे। फिर न जाने क्यों मन बदल गया—विवाह कर लिया। साधू हूं, कटु वचन मुंह से न निकालना चाहिए; पर मेरी विमाता जितनी सुन्दर थीं; उतनी कठोर भी। मुझे दिन-दिन-भर खाने को न देतीं, रोता तो मारतीं, पिताजी की आंखें भी फिर गयीं। उन्हें मेरी सूरत से घृणा होने लगी। मेरा रोना सुनकर मुझे पीटने लगते। अंत में एक दिन घर से निकल खड़ा हुआ।

सियाराम के मन में भी घर से निकल भागने का विचार कई बार हुआ था। इस समय भी उसके मन में यही विचार उठ रहा था। बड़ी उत्सुकता से बोला—घर से निकलकर आप कहां गये ?

बाबाजी ने हंसकर कहा—उसी दिन मेरे कष्टों का अन्त हो गया। जिस दिन घर के मोह-बन्धन से छूटा और भय मन से निकला, उसी दिन मानो मेरा उद्धार हो गया। दिन-भर तो मैं पुल के नीचे बैठा रहा। संध्या समय मुझे एक महात्मा मिल गये। उनका नाम स्वामी परमानन्दजी था। वे बाल-ब्रह्मचारी थे। मुझ पर उन्होंने दया की और अपने साथ रख लिया। उनके साथ मैं देश-देशान्तर में घूमने लगा। वह बड़े अच्छे योगी थे। मुझे भी उन्होंने योग-विद्या सिखायी। अब तो मुझे इतना अभ्यास हो गया है कि जब इच्छा होती है, माताजी का दर्शन कर लेता हूं। उनसे बात कर लेता हूं।

सियाराम ने विस्फारित नेत्रों से देखकर पूछा—आपकी माता का तो देहान्त हो चुका था ?

साधु—तो क्या हुआ बच्चा, योग-विद्या में वह शक्ति है कि जिस मृत आत्मा को चाहे, बुला ले।

सियाराम—मैं योग-विद्या सीख लूं, तो मुझे भी माताजी के दर्शन होंगे ?

साधु—अवश्य ! अभ्यास से सबकुछ हो सकता है । हां, योग्य गुरु चाहिए । योग से बड़ी-बड़ी सिद्धियां प्राप्त हो सकती हैं । जितना धन चाहो, पल-मात्र में मंगा सकते हो ? कैसी ही बीमारी हो, उसकी औषधि बता सकते हो ।

सियाराम—आपका स्थान कहां है ?

साधु—बच्चा, मेरा स्थान कहीं नहीं है । देश-देशान्तर में रमता फिरता हूं । अच्छा बच्चा, अब तुम जाओ, मैं जरा स्नान-ध्यान करने जाऊंगा ।

सियाराम—चलिए, मैं भी उसी तरफ चलता हूं । आपके दर्शन से जी नहीं भरा ।

साधु—नहीं बच्चा, तुम्हें पाठशाला जाने को देर हो रही है ।

सियाराम—फिर आपके दर्शन कब होंगे ?

साधु—कभी आ जाऊंगा बच्चा, तुम्हारा घर कहां है ?

सियाराम प्रसन्न होकर बोला—चलिएगा मेरे घर, बहुत नजदीक है । आपकी बड़ी कृपा होगी ।

सियाराम कदम बढ़ाकर आगे चलने लगा । इतना प्रसन्न था, मानो सोने की गठरी लिये जाता हो । घर के सामने पहुंचकर बोला—आइए, बैठिए कुछ देर ।

साधु—नहीं बच्चा, बैठूंगा नहीं । फिर कल-परसों किसी समय आ जाऊंगा । यही तुम्हारा घर है ?

सियाराम—कल किस वक्त आइएगा ?

साधु—निश्चय नहीं कह सकता । किसी समय आ जाऊंगा ।

साधु आगे बढ़े, तो थोड़ी ही दूर पर उन्हें एक दूसरा साधु मिला । उसका नाम था हरिहरानन्द ।

परमानन्द ने पूछा—कहां-कहां की सैर की ? कोई शिकार फंसा ?

हरिहरानन्द—इधर तो चारों तरफ घूम आया, कोई शिकार न मिला । एकाध मिला तो मेरी हंसी उड़ाने लगा ।

परमानन्द—मुझे तो एक मिलता हुआ जान पड़ता है । फंस जाय तो जानूं ।

हरिहरानन्द—तुम यों ही कहा करते हो । जो आता है, दो-चार दिन

के बाद निकल भागता है।

परमानन्द—अबकी न भागेगा; देख लेना। इसकी मां मर गई है। बाप ने दूसरा विवाह कर लिया है। मां भी सताया करती है। घर से ऊबा हुआ है।

हरिहरानन्द—हां, यह मामला है, तो अवश्य फंसेगा। लासा लगा दिया है न?

परमानन्द—खूब अच्छी तरहं। यह तरकीब सबसे अच्छी है। पहले इसका पता लगा लेना चाहिए कि मुहल्ले में किन-किन घरों मे विमाताएं हैं। उन्हीं घरों में फन्दा डालना चाहिए।

बाईस

निर्मला ने बिगड़कर पूछा—इतनी देर कहां लगायी?

सियाराम ने ढिठाई से कहा—रास्ते में एक जगह सो गया था।

निर्मला—यह तो मैं नहीं कहती, पर जानते हो, कै बज गए हैं? दस कभी के बज गए। बाजार कुछ दूर भी तो नहीं है।

सियाराम—कुछ दूर नहीं, दरवाजे पर ही तो है।

निर्मला—सीधे से क्यों नहीं बोलते? ऐसा बिगड़ रहे हो, जैसे मेरा ही कोई काम करने गये हो।

सियाराम—तो आप व्यर्थ की बकवाद क्यों करती हैं? लिया सौदा लौटाना क्या आसान है? बनिये से घण्टों हुज्जत करनी पड़ी। यह तो कहो, एक बाबाजी ने कह-सुनकर फेरवा दिया, नहीं तो किसी तरह न फेरता। रास्ते में कहीं एक मिनट भी नहीं रुका; सीधा चला आता हूं।

निर्मला—घी के लिए गये, तो तुम ग्यारह बजे लौटे हो; लकड़ी के लिए जाओगे तो सांझ ही कर दोगे? तुम्हारे बाबूजी बिना खाए ही चले गए। तुम्हें इतनी देर लगानी थी, तो पहले ही क्यों न कह दिया? जाते हो लकड़ी

के लिए ?

सियाराम अब अपने को न संभाल सका। झल्लाकर बोला—लकड़ी किसी और से मंगाइए। मुझे स्कूल जाने को देर हो रही है।

निर्मला—खाना न खाओगे ?

सियाराम—न खाऊंगा।

निर्मला—मैं खाना बनाने को तैयार हूं। हां, लकड़ी लाने नहीं जा सकती।

सियाराम—भूंगी को क्यों नहीं भेजतीं।

निर्मला—भूंगी का लाया सौदा तुमने कभी देखा नहीं ?

सियाराम—तो मैं इस वक्त न जाऊंगा।

निर्मला—मुझे दोष न देना।

सियाराम कई दिनों से स्कूल नहीं गया था। बाजार-हाट के मारे उसे किताबें देखने का समय भी न मिलता था। स्कूल जाकर झिड़कियां खाने, बेंच पर खड़े होने या ऊंची टोपी देने के सिवा और क्या मिलता ? वह घर से किताबें लेकर चलता; पर शहर जाकर किसी वृक्ष की छांह में बैठा रहता या पलटनों की कवायद देखता। तीन बजे घर लौट आता। आज भी वह घर से चला; लेकिन उसे रोटियों के भी लाले पड़ गए। दस बजे क्या खाना न बन सकता था ? माना कि बाबूजी चले गए थे। क्या मेरे लिए घर में दो-चार पैसे भी न थे ? अम्मा होतीं, तो इस तरह बिना कुछ खाये-पिये आने नहीं देतीं ? मेरा अब कोई नहीं रहा।

सियाराम का मन बाबाजी के दर्शन के लिए व्याकुल हो उठा। उसने सोचा, इस वक्त वह कहां मिलेंगे ? कहां चलकर देखूं ? उनकी मनोहर वाणी, उनकी उत्साहप्रद सान्त्वना, उसके मन को खींचने लगी। उसने आतुर होकर कहा—मैं उनके साथ ही क्यों न चला गया ? घर पर मेरे लिए क्या रखा था ?

वह आज यहां से चला, तो घर न जाकर सीधा घीवाले साहजी की दुकान पर गया। शायद बाबाजी से वहां मुलाकात हो जाए। पर वहां बाबाजी न थे। बड़ी देर तक खड़ा-खड़ा लौट आया।

घर आकर बैठा ही था कि निर्मला ने आकर कहा—आज देर कहां

लगायी ? सबेरे खाना नहीं बना, क्या इस वक्त भी उपवास होगा ? जाकर बाजार से कोई तरकारी लाओ ।

सियाराम ने झल्लाकर कहा—दिन-भर का भूखा चला आता हूं । कुछ पानी पीने तक को लायी नहीं, ऊपर से बाजार जाने का हुक्म दे दिया । मैं नहीं जाता बाजार ! किसी का नौकर नहीं हूं । आखिर रोटियां ही तो खिलाती हो या और कुछ ? ऐसी रोटियां जहां मेहनत करूंगा, वहीं मिल जायेंगी । जब मजूरी ही करनी है, तो आपकी न करूंगा । जाइए, मेरे लिए खाना मत बनाइएगा ।

निर्मला अवाक् रह गयी । लड़के को आज यह क्या हो गया ? और दिन तो चुपके से जाकर काम कर लाता था, आज क्यों त्योरियां बदल रहा है ? तब भी उसको यह न सूझी कि सियाराम को दो-चार पैसे कुछ खाने को दे दे । उसका स्वभाव इतना कृपण हो गया था, बोली—घर का काम करना तो मजूरी नहीं कहलाती । इसी तरह मैं भी कह दूं कि खाना नहीं पकाती; तुम्हारे पिताजी कह दें मैं कचहरी नहीं जाता, तो क्या हो, बताओ ! नहीं जाना चाहते हो, मत जाओ, भूंगी से मंगा लूंगी । क्या मैं जानती थी कि तुम्हें बाजार जाना बुरा लगता है, नहीं तो बला से, धेले की चीज पैसे में आती तुम्हें न भेजती । लो आज से कान पकड़ती हूं ।

सियाराम दिल में कुछ लज्जित तो हुआ, पर बाजार न गया । उसका ध्यान बाबाजी की ओर लगा हुआ था । आज सारे दुःखों का अन्त और जीवन की सारी आशाएं उसे अब बाबाजी के आशीर्वाद में मालूम होती थीं । उन्हीं की शरण जाकर उसका यह आधारित जीवन सार्थक होगा । सूर्यास्त के समय वह अधीर हो गया । सारा बाजार छान मारा; लेकिन बाबाजी का कहीं पता न मिला । दिन-भर का भूखा-प्यासा, वह अबोध बालक दुखते हुए दिल को हाथों से दबाए, आशा और भय की मूर्ति बना हुआ मकानों, गलियों और मंदिरों में उस आश्रय को खोजता फिरता था, जिसके बिना उसे अपना जीवन दुस्सह हो रहा था । एक बार एक मंदिर के सामने उसे कोई खड़ा दिखाई दिया । उसने समझा वही है । हर्षोल्लास से वह फूल उठा । दौड़ा और जाकर साधु के पास खड़ा हो गया; पर वह कोई और ही महात्मा थे । निराश होकर आगे बढ़ गया ।

धीरे-धीरे सड़कों पर सन्नाटा छा गया। घरों के द्वार बन्द होने लगे। सड़क की पटरियों पर और गलियों में बंसखटे या बोरे बिछा-बिछाकर भारत की प्रजा सुख-निद्रा में मग्न होने लगी। लेकिन सियाराम घर न लौटा। उस घर से उसका दिल फट गया था। किसी को उससे प्रेम न था, वहां तो वह किसी पराश्रित की भांति पड़ा हुआ था—केवल इसलिए कि उसे और कहीं शरण न थी। इस वक्त भी उसके घर न जाने की किसे चिन्ता होगी? बाबूजी भोजन करके लेटे होंगे, अम्माजी भी आराम करने जा रही होंगी। किसी ने मेरे कमरे की ओर झांककर देखा भी न होगा। हां, बुआजी घबरा रही होंगी। वही अभी तक मेरी राह देख रही होंगी। जब तक मैं न जाऊंगा, भोजन न करेंगी।

रुक्मिणी की याद आते ही सियाराम घर की ओर चला। वह अगर और कुछ न कर सकती थीं, तो कम-से-कम उसे गोद में चिपटाकर रोती तो थीं। उसके बाहर से आने पर हाथ-मुंह धोने के लिए पानी तो रख देती थीं। संसार में सभी बालक दूध की कुल्लियां नहीं करते, सभी सोने के कौर नहीं खाते। कितनों को पेट-भर भोजन नहीं मिलता, पर घर से विरक्त वही होते हैं, जो मातृस्नेह से वंचित हैं।

सियाराम घर की ओर चला ही था कि सहसा बाबा परमानन्द एक गली से आते दिखाई दिए।

सियाराम ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया। परमानन्द ने चौंककर पूछा—बच्चा, तुम यहां कहां?

सियाराम ने बात बनाकर कहा—एक दोस्त से मिलने आया था। आपका स्थान यहां से कितनी दूर है?

परमानन्द—हम लोग तो यहां से जा रहे हैं, बच्चा! हरिद्वार की यात्रा है।

सियाराम ने हतोत्साह होकर कहा—क्या आज ही जाइएगा?

परमानन्द—हां बच्चा, अब लौटकर आऊंगा तो दर्शन दूंगा!

सियाराम ने कातर कंठ से कहा—लौटकर!

परमानन्द—जल्द ही आऊंगा, बच्चा!

सियाराम ने दीन भाव से कहा—मैं भी आपके साथ चलूंगा।

परमानन्द—मेरे साथ ! तुम्हारे घर के लोग जाने देंगे ?

सियाराम—घर के लोगों को मेरी क्या परवाह है ! इससे आगे सियाराम और कुछ न कह सका। उसके अश्रुपूरित नेत्रों ने उसकी करुण गाथा उससे कहीं विस्तार के साथ सुना दी, जितनी उसकी वाणी कह सकती थी।

परमानन्द ने बालक को कंठ से लगाकर कहा—अच्छा बच्चा, तेरी इच्छा हो तो चल। साधू-संतों की संगति का भी आनन्द उठा। भगवान् की इच्छा होगी, तो तेरी इच्छा पूरी होगी।

दाने पर मंडराता हुआ पक्षी अंत में दाने पर गिर पड़ा। उसके जीवन का अन्त पिंजरे में होगा या व्याध की छुरी के तले—यह कौन जानता है ?

तेईस

मुंशीजी पांच बजे कचहरी से लौटे और अन्दर आकर चारपाई पर गिर पड़े। बुढ़ापे की देह, उस पर आज सारे दिन भोजन न मिला। मुंह सूख गया था। निर्मला समझ गई, आज दिन खाली गया।

निर्मला ने पूछा—आज कुछ नहीं मिला ?

मुंशीजी—सारा दिन दौड़ते गुजरा, पर हाथ कुछ न लगा।

निर्मला—फौजदारीवाले मामले में क्या हुआ ?

मुंशीजी—मेरे मुवक्किल को सजा हो गई।

निर्मला—पंडितवाले मुकदमे में ?

मुंशीजी—पंडित पर डिक्री हो गई।

निर्मला—आप तो कहते थे कि दावा खारिज हो जायेगा।

मुंशीजी—कहता तो था; और अब भी कहता हूं कि दावा खारिज हो जाना चाहिए था; मगर उतना सिर मगजन कौन करे ?

निर्मला—और सीरवाले दावे में ?

मुंशीजी—उसमें भी हार हो गई ।

निर्मला—तो आज आप किसी अभागे का मुंह देखकर उठे थे ।

मुंशीजी से अब काम बिलकुल न हो सकता था । एक तो उनके पास मुकदमे आते ही न थे, और जो आते भी थे, वह बिगड़ जाते थे । मगर अपनी असफलताओं को वह निर्मला से छिपाते रहते थे । जिस दिन कुछ हाथ न लगता, उस दिन किसी से दो-चार रुपये उधार लाकर निर्मला को दे देते । प्रायः सभी मित्रों से कुछ-न-कुछ ले चुके थे । आज वह डौल भी न लगा ।

निर्मला ने चिन्तापूर्ण स्वर में कहा—आमदनी का यह हाल है, तो ईश्वर ही मालिक है; उस पर बेटे का यह हाल है कि बाजार जाना मुश्किल । भूंगी ही से सब काम कराने को जी चाहता है । घी लेकर ग्यारह बजे लौटा । कितना कहकर हार गई कि लकड़ी लेते आओ पर सुना नहीं ।

मुंशीजी—तो खाना नहीं पकाया ?

निर्मला—ऐसी ही बातों से तो आप मुकदमे हारते हैं । ईंधन के बिना किसी ने खाना बनाया है कि मैं ही बना लेती ?

मुंशीजी—तो बिना कुछ खाए ही चला गया ?

निर्मला—घर में और क्या रखा था, जो खिला देती ?

मुंशीजी ने डरते-डरते कहा—कुछ पैसे-वैसे न दे दिये ?

निर्मला ने भौंहें सिकोड़कर कहा—घर में पैसे फलते हैं न ?

मुंशीजी ने कुछ जवाब न दिया ! जरा देर तो प्रतीक्षा करते रहे कि शायद जलपान के लिए कुछ मिलेगा; लेकिन जब निर्मला ने पानी मंगवाया, तो बेचारे निराश होकर बाहर चले गये । सियाराम के कष्ट का अनुमान करके उनका चित्त चंचल हो उठा । सारा दिन गुजर गया, बेचारे ने अभी तक कुछ न खाया । कमरे में पड़ा होगा । एक बार भूंगी ही से लकड़ी मंगा ली जाती, तो ऐसा क्या नुकसान हो जाता ? ऐसी किफायत भी किस काम की कि घर के आदमी भूखे रह जायं । अपना संदूकचा खोलकर टटोलने लगे कि शायद दो-चार आने पैसे मिल जायं । उसके अन्दर के सारे कागजात निकाल डाले, एक-एक खाना देखा, पर कुछ न मिला । अगर निर्मला के सन्दूक में पैसे न फलते थे, तो इस संदूकचे में शायद इसके फूल भी न लगते हों । लेकिन संयोग

ही कहिए कि कागजों को झाड़ते हुए चवन्नी गिर पड़ी। मारे हर्ष के मुंशीजी उछल पड़े। बड़ी-बड़ी रकमें इसके पहले कमा चुके थे; पर यह चवन्नी पाकर इस समय उन्हें जितना आह्लाद हुआ, उतना पहले कभी न हुआ था। चवन्नी हाथ में लिये हुए सियाराम के कमरे के सामने आकर पुकारा। कोई जवाब न मिला। तब कमरे में जाकर देखा। सियाराम का कहीं पता नहीं। क्या अभी स्कूल से नहीं लौटा? मन में यह प्रश्न उठते ही मुंशीजी ने अन्दर आकर भूंगी से पूछा। मालूम हुआ, स्कूल से लौट आये।

मुंशीजी ने पूछा—कुछ पानी पिया है?

भूंगी ने कुछ जवाब न दिया। नाक सिकोड़कर मुंह फेरते हुए चली गई।

मुंशीजी आहिस्ता-आहिस्ता आकर अपने कमरे में बैठ गये। आज पहली बार उन्हें निर्मला पर क्रोध आया, लेकिन एक क्षण में क्रोध का आघात अपने ऊपर होने लगा। उस अंधेरे कमरे में फर्श पर लेटे हुए वह अपने को पुत्र की ओर से इतना उदासीन हो जाने पर धिक्कारने लगे। दिन-भर के थके थे, थोड़ी ही देर में उन्हें नींद आ गई!

भूंगी ने आकर पुकारा—बाबूजी, रसोई तैयार है।

मुंशीजी चौंककर उठ बैठे। कमरे में लैंप जल रहा था।

मुंशीजी—कै बज गया, भूंगी? मुझे नींद आ गई थी।

भूंगी—कोतवाली के घंटे में तो नौ बज गये हैं, और हम नाहीं जानित।

मुंशीजी—सिया बाबू आये?

भूंगी—आये होंगे तो घर ही में न होंगे?

मुंशीजी ने झुंझलाकर पूछा—मैं पूछता हूं, आये कि नहीं, और तू न जाने क्या जवाब देती है। आये कि नहीं?

भूंगी—मैंने तो नहीं देखा, झूठ कैसे कह दूं।

मुंशीजी फिर लेट गये, बोले—उनको आ जाने दे, तब चलता हूं।

आधा घंटे तक घर की ओर आंख लगाए लेटे रहे! तब वह उठकर बाहर आये और दाहिने हाथ कोई दो फर्लांग तक चले। तब लौटकर द्वार पर आये और पूछा—सिया बाबू आ गये?

अन्दर से आवाज आई—अभी नहीं।

मुंशीजी फिर बायीं ओर चले और गली के नुक्कड़ तक गये। सियाराम

कहीं दिखाई न दिया। वहां से फिर घर आये और द्वार पर खड़े होकर पूछा—सिया बाबू आ गए ?

अन्दर से आवाज मिली—नहीं।

कोतवाली के घंटे में दस बजने लगे।

मुंशीजी बड़े वेग से कम्पनी बाग की तरफ चले। सोचने लगे, शायद वहां घूमने गया हो और घास पर लेटे-लेटे नींद आ गई हो। बाग में पहुंचकर उन्होंने हर एक बेंच को देखा, चारों तरफ घूमे। बहुत-से आदमी घास पर पड़े हुए थे, पर सियाराम का निशान न था। उन्होंने सियाराम का नाम लेकर जोर से पुकारा, पर कहीं से आवाज न आई।

खयाल आया, शायद स्कूल में कोई तमाशा हो रहा हो। स्कूल एक मील से कुछ ज्यादा ही था। स्कूल की तरफ चले, पर आधे रास्ते से ही लौट पड़े। बाजार बन्द हो गया था। स्कूल में इतनी रात तमाशा नहीं हो सकता। अबकी उन्हें आशा हो रही थी कि सियाराम लौट आया होगा। द्वार पर आकर उन्होंने पुकारा—सिया बाबू आये ? किवाड़ बन्द थे। कोई आवाज न आई। फिर जोर से पुकारा। भूंगी किवाड़ खोलकर बोली—अभी तो नहीं आये।

मुंशीजी ने धीरे से भूंगी को अपने पास बुलाया और करुण स्वर में बोले—तू तो घर की सब बातें जानती है, बता आज क्या हुआ था ?

भूंगी—बाबूजी, झूठ न बोलूंगी; मालकिन छुड़ा देंगी और क्या ? दूसरे का लड़का इस तरह नहीं रखा जाता। जहां कोई काम हुआ, बस बाजार भेज दिया ! दिन-भर बाजार दौड़ते बीतता था। आज लकड़ी लाने न गये, तो चूल्हा ही नहीं जला। कहो तो मुंह फुलावें। जब आप ही नहीं देखते, तो दूसरा कौन देखेगा ? चलिए, भोजन कर लीजिए, बहूजी कब से बैठी हैं।

मुंशीजी—कह दे, इस वक्त नहीं खाएंगे।

मुंशीजी फिर अपने कमरे में चले गये और एक लम्बी सांस ली। वेदना से भरे हुए ये शब्द उनके मुंह से निकल पड़े—ईश्वर, क्या अभी दंड पूरा नहीं हुआ ? क्या इस अंधे की लकड़ी को हाथ से छीन लोगे ?

निर्मला ने आकर कहा—आज सियाराम अभी तक नहीं आये। कहती रही कि खाना बनाए देती हूं, खा लो, मगर न जाने कब उठकर चल दिये ! जाने कहां घूम रहे हैं ! बात तो सुनते ही नहीं। अब कब तक इनकी राह

देखा करूं ! आप चलकर खा लीजिए, उनके लिए खाना उठाकर रख दूंगी ।

मुंशीजी ने निर्मला की ओर कठोर नेत्रों से देखकर कहा—अभी कै बजे होंगे ?

निर्मला—क्या जाने, दस बजे होंगे ।

मुंशीजी—जी नहीं, बारह बजे हैं ।

निर्मला—बारह बज गये ! इतनी देर तो कभी नहीं करते थे, तो अब कब तक उनकी राह देखोगे ? दोपहर को भी कुछ नहीं खाया था । ऐसा सैलानी लड़का मैंने नहीं देखा ।

मुंशीजी—जी, तुम्हें बहुत दिक करता है, क्यों ?

निर्मला—देखिए न, इतनी रात गई और घर की सुध ही नहीं ।

मुंशीजी—शायद यह आखिरी शरारत हो ।

निर्मला—कैसी बातें मुंह से निकालते हैं । जाएंगे कहां ? किसी यार-दोस्त के यहां पड़ रहे होंगे !

मुंशीजी—शायद ऐसा ही हो । ईश्वर करे, ऐसा ही हो ।

निर्मला—सबेरे आयें, तो जरा तम्बीह कीजिएगा ।

मुंशीजी—खूब अच्छी तरह करूंगा ।

निर्मला—चलिए, खा लीजिए, देर बहुत हुई ।

मुंशीजी—सबेरे उसकी तम्बीह करके खाऊंगा । कहीं न आया, तो तुम्हें ऐसा ईमानदार नौकर कहां मिलेगा ?

निर्मला ने ऐंठकर कहा—तो क्या मैंने भगा दिया ?

मुंशीजी—नहीं, यह कौन कहता है ! तुम उसे क्यों भगाने लगीं ! तुम्हारा तो काम करता था । शामत आ गई होगी !

निर्मला ने और कुछ नहीं कहा । बात बढ़ जाने का भय था । भीतर चली आई । सोने को भी न कहा । जरा देर में भूंगी ने अन्दर से किवाड़ भी बन्द कर दिए ।

क्या मुंशीजी को नींद आ सकती थी ? तीनों लड़कों में केवल एक बच रहा था । वह भी हाथ से निकल गया, तो फिर जीवन में अंधकार के सिवाय और क्या है ? कोई नाम लेनेवाला भी न रहेगा । हा ! कैसे-कैसे रत्न हाथ से निकल गए । मुंशीजी की आंखों से अश्रुधारा बह रही थी तो कोई आश्चर्य

है ? उस व्यापक पश्चात्ताप, उस सघन ग्लानि-तिमिर में आशा की एक हल्की-सी रेखा उन्हें संभाले हुए थी। जिस क्षण यह रेखा लुप्त हो जायेगी, कौन कह सकता है, उन पर क्या बीतेगी ? उनकी उस वेदना की कल्पना कौन कर सकता है ?

कई बार मुंशीजी की आंखें झपकीं, लेकिन हर बार सियाराम की आहट के धोखे में चौंक पड़ते।

सबेरा होते ही मुंशीजी फिर सियाराम को खोजने निकले। किसी से पूछते शर्म आती थी। किस मुंह से पूछें ? उन्हें किसी से सहानुभूति की आशा न थी। प्रकट न कहकर मन में सब यही कहेंगे—जैसा किया, वैसा भोगो। सारे दिन वह स्कूल के मैदानों, बाजारों और बगीचों का चक्कर लगाते रहे। दो दिन निराहार रहने पर भी उन्हें इतनी शक्ति कैसे हुई, यह वही जानें।

रात के बारह बजे मुंशीजी घर लौटे। दरवाजे पर लालटेन जल रही थी, निर्मला द्वार पर खड़ी थी। देखते ही बोली—कहा भी नहीं, न जाने कब चल दिए ! कुछ पता चला ?

मुंशीजी ने आग्नेय नेत्रों से ताकते हुए कहा—हट जाओ सामने से, नहीं तो बुरा होगा। मैं आपे में नहीं हूं। यह तुम्हारी करनी है। तुम्हारे ही कारण आज मेरी यह दशा हो रही है। छह साल पहले क्या इस घर की यही दशा थी ? तुमने मेरा बना-बनाया घर बिगाड़ दिया, तुमने लहलहाते बाग को उजाड़ डाला। केवल एक ठूंठ रह गया है। उसका निशान मिटाकर तभी तुम्हें संतोष होगा। मैं अपना सर्वनाश करने के लिए तुम्हें अपने घर नहीं लाया था। सुखी जीवन को और भी सुखमय बनाना चाहता था। यह उसी का प्रायश्चित्त है। जो लड़के पान की तरह फेरे जाते थे, उन्हें मेरे जीते-जी तुमने चाकर समझ लिया और मैं आंखों से सबकुछ देखते हुए भी अन्धा बना बैठा रहा। जाओ, मेरे लिए थोड़ा-सा संखिया भेज दो। बस, यही कसर रह गई, वह भी पूरी हो जाये !

निर्मला ने रोते हुए कहा—मैं तो अभागिन हूं ही, आप कहेंगे तब जानूंगी। न जाने ईश्वर ने मुझे जन्म क्यों दिया था ? मगर यह आपने कैसे समझ लिया कि सियाराम आयेंगे ही नहीं ?

मुंशीजी ने अपने कमरे की ओर जाते हुए कहा—जलाओ मत, जाकर खुशियां मनाओ। तुम्हारी मनोकामना पूरी हो गई।

चौबीस

निर्मला सारी रात रोती रही, इतना कलंक! उसने जियाराम को गहने ले जाते देखने पर भी मुंह खोलने का साहस नहीं किया। इसीलिए तो कि लोग समझेंगे कि वह मिथ्या दोषारोपण करके लड़के से बैर साध रही है। आज उसके मौन रहने पर उसे अपराधिन ठहराया जा रहा है। यदि वह जियाराम को उसी क्षण रोक देती और जियाराम लज्जावश कहीं भाग जाता, तो क्या उसके सिर अपराध न मढ़ा जाता?

सियाराम ही के साथ उसने कौन-सा दुर्व्यवहार किया था! वह कुछ बचत करने ही के विचार से तो सियाराम से सौदा मंगवाया करती थी। क्या वह बचत करके अपने लिए गहने गढ़वाना चाहती थी? जब आमदनी का यह हाल हो रहा था, तो पैसे-पैसे पर निगाह रखने के सिवाय कुछ जमा करने का उसके पास और साधन ही क्या था? जवानों की जिन्दगी का तो कोई भरोसा नहीं; बूढ़ों की जिन्दगी का क्या ठिकाना? बच्ची के विवाह के लिए वह किसके सामने हाथ फैलाती? बच्ची का भार कुछ उसी पर तो नहीं था। वह केवल पति की सुविधा ही के लिए कुछ बटोरने का प्रयत्न कर रही थी। पति ही की क्यों? सियाराम ही तो पिता के बाद घर का स्वामी होता। बहन के विवाह करने का भार क्या उसके सिर पर न पड़ता? निर्मला सारी कतर-ब्योंत पति और पुत्र का संकट-मोचन करने ही के लिए कर रही थी। बच्ची का विवाह इस परिस्थिति में संकट के सिवाय और क्या था? पर इसके लिए भी उसके भाग्य में अपयश ही बदा था।

दोपहर हो गया, पर आज भी चूल्हा नहीं जला। खाना भी जीवन का काम है—इसकी किसी को सुध ही न थी। मुंशीजी बाहर बेजान पड़े थे

और निर्मला भीतर। बच्ची कभी भीतर जाती, कभी बाहर। कोई उससे बोलनेवाला न था। बार-बार सियाराम के कमरे के द्वार पर जाकर खड़ी होती और 'बैया बैया' पुकारती; 'बैया' जवाब न देता था।

सन्ध्या समय मुंशीजी आकर निर्मला से बोले—तुम्हारे पास कुछ रुपये हैं ?

निर्मला ने चौंककर पूछा—क्या कीजिएगा ?

मुंशीजी—मैं पूछता हूं, उसका जवाब दो।

निर्मला—क्या आपको नहीं मालूम है ? देनेवाले तो आप ही हैं।

मुंशीजी—तुम्हारे पास कुछ रुपये हैं या नहीं। अगर हों तो मुझे दे दो, न हों तो साफ जवाब दो।

निर्मला ने अब भी साफ जवाब नहीं दिया। बोली—होंगे तो घर ही में न होंगे ? और कहीं मैंने भेज दिये ?

मुंशीजी बाहर चले गए। वह जानते थे कि निर्मला के पास रुपये हैं, वास्तव में थे भी। निर्मला ने यह भी नहीं कहा कि नहीं हैं या मैं न दूंगी; पर उसकी बातों से प्रकट हो गया कि वह देना नहीं चाहती।

नौ बजे रात को मुंशीजी ने आकर रुक्मिणी से कहा—बहन, मैं जरा बाहर जा रहा हूं। मेरा बिस्तर भूंगी से बंधवा देना और ट्रंक में कुछ कपड़े रखवाकर बन्द कर देना।

रुक्मिणी भोजन बना रही थीं, बोलीं—बहू तो कमरे में है, कह क्यों नहीं देते ? कहां जाने का इरादा है ?

मुंशीजी—मैं तुमसे कहता हूं; बहू से कहना होता, तो तुमसे क्यों कहता ? आज तुम क्यों खाना पका रही हो ?

रुक्मिणी—कौन पकाए ? बहू के सिर में दर्द हो रहा है। आखिर इस वक्त कहां जा रहे हो ? सबेरे न चले जाना।

मुंशीजी—इस तरह टालते-टालते तो आज तीन दिन हो गए। इधर-उधर घूम-घूमकर देखूं, शायद कहीं सियाराम का पता मिल जाये। कुछ लोग कहते हैं कि एक साधु के साथ बातें कर रहा था। शायद वही कहीं बहका ले गया हो।

रुक्मिणी—तो लौटोगे कब तक ?

मुंशीजी—कह नहीं सकता। हफ्ता-भर लग जाये; महीना-भर लग जाये; क्या ठिकाना है ?

रुक्मिणी—आज कौन दिन है ? किसी पण्डित से पूछ लिया है, यात्रा है कि नहीं ?

मुंशीजी भोजन करने बैठे। निर्मला को इस वक्त उन पर बड़ी दया आयी। उसका सारा क्रोध शांत हो गया। खुद तो न बोली, बच्ची को जगाकर चुमकारती हुई बोली—देख, तेरे बाबूजी कहां जा रहे हैं ? पूछ तो ?

बच्ची ने द्वार पर झांककर पूछा—बाबू दी तहां दाते हो ?

मुंशीजी—दूर जाता हूं बेटी, तुम्हारे भैया को खोजने जाता हूं।

बच्ची ने वहीं से खड़े-खड़े कहा—अम बी तलेंगे।

मुंशीजी—बड़ी दूर जाते हैं ! तुम्हारे वास्ते चीजें लायेंगे। यहां क्यों नहीं आती ?

बच्ची मुसकराकर छिप गई और एक क्षण में किवाड़ से सिर निकालकर बोली—अम बी तलेंगे।

मुंशीजी ने उसी स्वर में कहा—तुमको नई ले तलेंगे।

बच्ची—अमको त्यों नई ले तलोगे ?

मुंशीजी—तुम तो हमारे पास आती नहीं हो।

लड़की ठुमकती हुई आकर पिता की गोद में बैठ गई। थोड़ी देर के लिए मुंशीजी उसकी बाल-क्रीड़ा में अपनी अंतर्वेदना भूल गए।

भोजन करके मुंशीजी बाहर चले गए। निर्मला खड़ी ताकती रही। कहना चाहती थी—व्यर्थ जा रहे हो, पर कह न सकती थी। कुछ रुपये निकालकर देने का विचार करती थी, पर दे न सकती थी।

अन्त को न रहा गया, रुक्मिणी से बोली—दीदीजी, जरा समझा दीजिए, कहां जा रहे हैं। मेरी जबान पकड़ी जायेगी, पर बिना बोले रहा नहीं जाता। बिना ठिकाने कहां खोजेंगे ? व्यर्थ हैरानी होगी।

रुक्मिणी ने करुणासूचक नेत्रों से देखा और अपने कमरे में चली गयीं।

निर्मला बच्ची को गोद में लिये सोच रही थी कि शायद जाने के पहले बच्ची को देखने या मुझसे मिलने के लिए आयें, पर उसकी आशा विफल

हो गई। मुंशीजी ने बिस्तर उठाया और तांगे पर जा बैठे।

उसी वक्त निर्मला का कलेजा मसोसने लगा। उसे ऐसा जान पड़ा कि अब इनसे भेंट न होगी। वह अधीर होकर द्वार पर आयी कि मुंशीजी को रोक ले, पर तांगा जा चुका था।

पच्चीस

दिन गुजरने लगे। एक महीना पूरा निकल गया, लेकिन मुंशीजी न लौटे। कोई खत भी न भेजा। निर्मला को अब नित्य यही चिन्ता बनी रहती कि वह लौटकर न आये, तो क्या होगा ? उसे इसकी चिन्ता न होती थी कि उन पर क्या बीत रही होगी, कहां-कहां मारे-मारे फिरते होंगे, स्वास्थ्य कैसा होगा ? उसे केवल अपनी और उससे भी बढ़कर बच्ची की चिन्ता थी। गृहस्थी का निर्वाह कैसे होगा ? ईश्वर कैसे बेड़ा पार लगाएंगे ? बच्ची का क्या हाल होगा ? उसने कतर-ब्योंत करके जो रुपये जमा कर रखे थे, उसमें कुछ-न-कुछ रोज कमी होती थी, मानो कोई उसकी देह से रक्त निकाल रहा हो। झुंझलाकर मुंशीजी को कोसती। लड़की किसी चीज के लिए रोती, तो 'अभागिनी', 'कलमुंही' कहकर झल्लाती। यही नहीं, रुक्मिणी का घर में रहना उसे कष्टकर जान पड़ता था, मानो वह उसकी गर्दन पर सवार है।

जब हृदय जलता है तो वाणी भी अग्निमय हो जाती है। निर्मला बड़ी मधुरभाषिणी स्त्री थी; पर अब उसकी गणना कर्कशाओं में की जा सकती थी। दिन-भर उसके मुख से जली-कटी बातें ही निकला करती थीं। उसके शब्दों की कोमलता न जाने क्या हो गई ? भावों में माधुर्य का कहीं नाम नहीं। भूंगी बहुत दिनों से इस घर में नौकर थी। स्वभाव की सहनशील थी। पर यह आठों पहर की बकबक उससे भी न सही गई। एक दिन उसने भी घर की राह ली। यहां तक कि जिस बच्ची को वह प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, उसकी सूरत से घृणा हो गई। बात-बात पर घुड़क पड़ती, कभी-कभी मार बैठती।

रुक्मिणी रोती हुई बालिका को गोद में बैठा लेतीं और चुमकार-दुलारकर चुप करातीं। उस अनाथ के लिए अब यही एक आश्रय रह गया।

निर्मला को अब अगर कुछ अच्छा लगता था, तो वह सुधा से बात करना था। वह वहां जाने का अवसर खोजा करती थी। बच्ची को अब वह अपने साथ न ले जाना चाहती थी। पहले जब बच्ची को अपने घर सभी चीजें खाने को मिलती थीं, तो वहां जाकर हंसती-खेलती थी। अब वहां जाकर उसे भूख लगती थी। निर्मला उसे घूर-घूरकर देखती, मुट्ठियां बांधकर धमकाती, पर भूख की रट लगाना न छोड़ती थी। इसलिए निर्मला उसे साथ न ले जाती थी। सुधा के पास बैठकर उसे मालूम होता था कि मैं आदमी हूं। उतनी देर के लिए वह चिन्ताओं से मुक्त हो जाती थी। जैसे शराबी को शराब के नशे में सारी चिन्ताएं भूल जाती हैं, उसी तरह निर्मला सुधा के घर जाकर सारी बातें भूल जाती थी। जिसने उसे उसके घर पर देखा हो, वह उसे यहां देखकर चकित रह जाता है। वही कर्कशा, कटु-भाषिणी स्त्री यहां आकर हास्य, विनोद और माधुर्य की पुतली बन जाती थी। यौवनकाल की स्वाभाविक वृत्तियां अपने घर पर रास्ता बन्द पाकर यहां किलोलें करने लगती थीं। यहां आते वक्त वह मांग-चोटी, कपड़े-लत्ते से लैस होकर आती और यथासाध्य अपनी विपत्ति कथा को अपने मन में ही रखती थी। यहां रोने के लिए नहीं, हंसने के लिए आती थी!

पर कदाचित् उसके भाग्य में यह सुख न बदा था। निर्मला मामूली तौर से दोपहर या तीसरे पहर सुधा के घर जाया करती थी। एक दिन उसका जी इतना ऊबा कि सबेरे ही जा पहुंची। सुधा नदी-स्नान करने गयी थी, डॉक्टर साहब अस्पताल जाने के लिए कपड़े पहन रहे थे। महरी अपने काम-धन्धे में लगी हुई थी। निर्मला अपनी सहेली के कमरे में जाकर निश्चिंत बैठ गई। उसने समझा, सुधा कोई काम कर रही होगी, अभी आती होगी। जब बैठे-बैठे दो-तीन मिनट गुजर गए, तो उसने आलमारी से तस्वीरों की एक किताब उतार ली और केश खोल, पलंग पर लेटकर चित्र देखने लगी। इस बीच में डॉक्टर साहब को किसी जरूरत से सुधा के कमरे में आना पड़ा। शायद अपनी ऐनक ढूंढ़ते फिरते थे। बेधड़क अन्दर चले आये। निर्मला द्वार की ओर केश खोले लेटी हुई थी। डॉक्टर साहब को देखते ही चौंककर उठ बैठी और सिर

ढांकती हुई चारपाई से उतरकर खड़ी हो गई। डॉक्टर ने लौटते हुए चिक के पास खड़े होकर कहा—क्षमा करना निर्मला, मुझे मालूम न था कि तुम यहां हो। मेरी ऐनक मेरे कमरे में नहीं मिल रही है। जाने कहां उतारकर रख दी थी। मैंने समझा, शायद यहां हो।

निर्मला ने चारपाई के सिरहानेवाले आले पर निगाह डाली, तो ऐनक की डिबिया दिखाई दी। उसने आगे बढ़कर डिबिया उतार ली और सिर झुकाए, देह समेट, संकोच से डॉक्टर साहब की ओर हाथ बढ़ाया। डॉक्टर साहब ने निर्मला को दो-एक बार पहले भी देखा था, पर इस समय के-से भाव कभी उनके मन में न आए थे। जिस ज्वाला को वह बरसों से हृदय में दबाए हुए थे, वह आज पवन का झोंका पाकर दहक उठी। उन्होंने ऐनक के लिए हाथ बढ़ाया, तो हाथ कांप रहा था। ऐनक लेकर भी वह बाहर न गये, वहीं खोए हुए-से खड़े रहे। निर्मला ने इस एकान्त से भयभीत होकर पूछा—सुधा कहीं गयी हैं क्या?

डॉक्टर साहब ने सिर झुकाए हुए जवाब दिया—हां, जरा स्नान करने चली गयीं।

फिर भी डॉक्टर साहब बाहर न गये। वहीं खड़े रहे। निर्मला ने फिर पूछा—कब तक आएंगी?

डॉक्टर साहब ने सिर झुकाए हुए कहा—आती होंगी।

फिर भी वह बाहर नहीं गये। उनके मन में घोर द्वन्द्व मचा हुआ था। औचित्य का धन नहीं, भीरुता का कच्चा तागा उनकी जबान को रोके हुए था।

निर्मला ने फिर कहा—कहीं घूमने-घामने लगी होंगी। मैं भी इस वक्त जाती हूं।

भीरुता का कच्चा तागा टूट गया। नदी के कगार पर पहुंचकर भागती हुई सेना में अद्भुत शक्ति आ जाती है। डॉक्टर साहब ने सिर उठाकर निर्मला को देखा और अनुराग के स्वर में बोले—नहीं निर्मला, अब आती ही होंगी। अब न जाओ। रोज सुधा की खातिर बैठती हो, आज मेरी खातिर बैठो। बताओ, कब तक इस आग में जला करूं? सत्य कहता हूं निर्मला ···

निर्मला ने कुछ और नहीं सुना। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो सारी पृथ्वी

चक्कर खा रही है, मानो उसके प्राणों पर वज्रों का आघात हो रहा है। उसने जल्दी से अलगनी पर लटकती हुई चादर उतार ली और बिना मुंह से एक शब्द निकाले कमरे से निकल गई। डॉक्टर साहब खिसियाए हुए-से रोना मुंह बनाए खड़े रहे। उसको रोकने या कुछ कहने की उनकी हिम्मत न पड़ी।

निर्मला ज्योंही द्वार पर पहुंची, उसने सुधा को तांगे से उतरते देखा। सुधा उसे देखते ही जल्दी से उतरकर उसकी ओर लपकी और कुछ पूछना चाहती थी, मगर निर्मला ने उसे अवसर न दिया, तीर की तरह झपटकर चली गई। सुधा एक क्षण तक विस्मय की दशा में खड़ी रही। बात क्या है, उसकी समझ में कुछ न आ सका। व्यग्र हो उठी। जल्दी अन्दर गयी। महरी से पूछा कि क्या बात हुई ? उसे मालूम हुआ कि कहीं हमारी महरी व नौकर ने उसे कोई अपमानसूचक बात कह दी है। वह अपराधी का पता लगाएगी और उसे खड़े-खड़े निकाल देगी। लपकी हुई वह अपने कमरे में आ गई। अन्दर कदम रखते ही डॉक्टर साहब को मुंह लटकाए चारपाई पर बैठे देखा। पूछा—निर्मला यहां आयी थीं ?

डॉक्टर साहब ने सिर खुजलाते हुए कहा—हां, आयी तो थीं।

सुधा—किसी महरी-अहरी ने उन्हें कुछ कहा तो नहीं ? मुझसे बोलीं तक नहीं, झपटकर निकल गयीं !

डॉक्टर साहब की मुख-कान्ति मलिन हो गई, कहा—यहां तो उन्हें किसी ने भी कुछ नहीं कहा।

सुधा—किसी ने कुछ नहीं कहा ! देखो, मैं पूछती हूं। ईश्वर जानता है, पता पा जाऊंगी तो खड़े-खड़े निकाल दूंगी।

डॉक्टर साहब सिटपिटाते हुए बोले—मैंने तो किसी को कुछ कहते नहीं सुना। तुम्हें उन्होंने देखा न होगा।

सुधा—वाह, देखा ही न होगा ! उनके सामने तो मैं तांगे से उतरी हूं। उन्होंने मेरी ओर ताका भी, पर बोलीं कुछ नहीं। इस कमरे में आयी थीं ?

डॉक्टर साहब के प्राण सूखे जा रहे थे। हिचकिचाते हुए बोले—आयी क्यों नहीं थीं।

सुधा—तुम्हें यहां बैठे देखकर चली गई होंगी। बस किसी महरी ने कुछ

कह दिया होगा। नीच जात है न, किसी को बात करने की तमीज तो है नहीं। अरी ओ सुन्दरिया, जरा यहां तो आ!

डॉक्टर—उसे क्यों बुलाती हो? वह यहां से सीधे दरवाजे की तरफ गयीं। महरियों से बात तक नहीं हुई।

सुधा—तो फिर तुम्हीं ने कुछ कह दिया होगा?

डॉक्टर साहब का कलेजा धक्-धक् करने लगा—मैं भला क्या कह देता! क्या ऐसा गंवार हूं।

सुधा—तुमने उन्हें आते देखा, तब भी बैठे रह गए?

डाक्टर—मैं यहां था ही नहीं। बाहर बैठक में अपनी ऐनक ढूंढ़ता रहा। जब वहां न मिली, तो मैंने सोचा, शायद अन्दर हो। यहां आया तो उन्हें बैठे देखा। मैं बाहर जाना चाहता था कि उन्होंने खुद पूछा—किसी चीज की जरूरत है? मैंने कहा, जरा देखना, यहां मेरी ऐनक तो नहीं है। ऐनक इसी सिरहानेवाले ताक पर थी। उन्होंने उठाकर दे दी। बस, इतनी ही बात हुई।

सुधा—बस, तुम्हें ऐनक देते ही वह झल्लायी हुई बाहर चली गयीं, क्यों?

डॉक्टर—झल्लायी हुई तो नहीं चली गयीं। जाने लगीं तो मैंने कहा—बैठिए, वह आती ही होंगी। न बैठीं तो मैं क्या करता?

सुधा ने कुछ सोचकर कहा—बात कुछ समझ में नहीं आती, मैं जरा उनके पास जाती हूं। देखूं, बात क्या है!

डॉक्टर—तो चली जाना, ऐसी जल्दी क्या है? सारा दिन तो पड़ा हुआ है।

सुधा ने चादर ओढ़ते हुए कहा—मेरे पेट में खलबली मची हुई है, कहते हो जल्दी क्या है?

सुधा तेजी से कदम बढ़ाती हुई निर्मला के घर की ओर पांच मिनट में जा पहुंची। देखा तो निर्मला अपने कमरे में चारपाई पर पड़ी रो रही थी और बच्ची उसके पास खड़ी पूछ रही थी—अम्मा, क्यों लोती हो?

सुधा ने लड़की को गोद में लिया और निर्मला से बोली—बहन, सच बताओ क्या बात है! मेरे यहां किसी ने तुम्हें कुछ कहा? मैं सबसे पूछ चुकी, कोई नहीं बतलाता।

निर्मला आंसू पोंछती हुई बोली—किसी ने कुछ कहा नहीं बहन। भला, वहां मुझे कौन कुछ कहता ?

सुधा—तो फिर मुझसे बोली क्यों नहीं और आते-ही-आते रोने लगीं ?

निर्मला—अपने नसीबों को रो रही हूं और क्या !

सुधा—तुम यों न बतलाओगी, तो मैं कसम रखा दूंगी।

निर्मला—कसम-असम न रखाना भाई, मुझे किसी ने कुछ नहीं कहा। झूठ किसे लगा दूं ?

सुधा—खाओ मेरी कसम !

निर्मला—तुम तो नाहक जिद करती हो।

सुधा—अगर तुमने न बताया निर्मला, तो मैं समझूंगी, तुम्हें मुझसे जरा भी प्रेम नहीं है। बस जबानी जमा खर्च है। मैं तुमसे किसी बात का पर्दा नहीं रखती और तुम मुझे गैर समझती हो। मुझे तुम्हारे ऊपर बड़ा भरोसा था। अब जान गई कि कोई किसी का नहीं होता।

सुधा की आंखें सजल हो गयीं। उसने बच्ची को गोद से उतार दिया और द्वार की ओर चली। निर्मला ने उठकर उसका हाथ पकड़ लिया और रोती हुई बोली—सुधा, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मत पूछो ! तुम्हें दुःख होगा और शायद मैं अपना मुंह न दिखा सकूं। मैं अभागिनी न होती, तो यह दिन क्यों देखती ? अब तो ईश्वर से यही प्रार्थना है कि संसार से मुझे उठा ले। अभी यह दुर्गति हो रही है, तो आगे न जाने क्या होगा।

इन शब्दों में जो संकेत था, वह बुद्धिमती सुधा से छिपा न रह सका। वह समझ गई कि डॉक्टर साहब ने छेड़छाड़ की है। उनका हिचक-हिचककर बातें करना और उसके प्रश्नों को टालना, उनकी वह ग्लानिमय, कांतिहीन मुद्रा उसे याद आ गई। वह सिर से पांव तक कांप उठी; बिना कुछ कहे-सुने सिंहनी की भांति क्रोध से भरी हुई द्वार की ओर चली। निर्मला ने उसे रोकना चाहा, पर न पा सकी। देखते-देखते सड़क पर आ गई और घर की ओर चली ! तब निर्मला वहीं भूमि पर बैठ गई और फूट-फूटकर रोने लगी।

छब्बीस

निर्मला दिन-भर चारपाई पर पड़ी रही। मालूम होता है, उसकी देह में प्राण नहीं हैं। न स्नान किया, न भोजन करने उठी ! सन्ध्या समय उसे ज्वर हो गया। रात-भर देह तवे की भांति तपती रही। दूसरे दिन भी ज्वर न उतरा। हां, कुछ-कुछ कम हो गया था। वह चारपाई पर लेटी हुई निश्चल नेत्रों से द्वार की ओर ताक रही थी। चारों ओर शून्य था—अन्दर भी शून्य, बाहर भी शून्य। कोई चिन्ता न थी, न कोई स्मृति, न कोई दुःख। मस्तिष्क में स्पन्दन की शक्ति ही न रही थी।

सहसा रुक्मिणी बच्ची को गोद में लिये हुए आकर खड़ी हो गयीं। निर्मला ने पूछा—क्या यह बहुत रोती थी ?

रुक्मिणी—नहीं, यह तो सिसकी तक नहीं। रात-भर चुपचाप पड़ी रही। सुधा ने थोड़ा-सा दूध भेज दिया था, वही पिला दिया।

निर्मला—अहीरिन दूध न दे गई थी ?

रुक्मिणी—कहती थी, पिछले पैसे दे दो, तो दूं। तुम्हारा जी अब कैसा है ?

निर्मला—मुझे कुछ नहीं हुआ है। कल जरा देह गरम हो गई थी।

रुक्मिणी—डॉक्टर साहब का तो बुरा हाल हो गया।

निर्मला ने घबराकर कहा—क्या हुआ ? कुशल है न ?

रुक्मिणी—कुशल से हैं कि लाश उठाने की तैयारी हो रही है ? कोई कहता है, जहर खा लिया था, कोई कहता है कि दिल का चलना बन्द हो गया था। भगवान् जानें क्या हुआ।

निर्मला ने ठंडी सांस ली और रुंधे हुए स्वर में बोली—हाय भगवान् ! सुधा की क्या गति होगी ? वह कैसे जियेगी ?

यह कहते-कहते वह रो पड़ी और बड़ी देर तक सिसकती रही ! तब चारपाई से उतरकर सुधा के पास जाने को तैयार हुई। पांव थर-थर कांप रहे थे, दीवार थामे खड़ी थी, पर जी न मानता था। न जाने सुधा ने यहां से जाकर पति से क्या कहा ! मैंने तो उससे कुछ कहा भी नहीं। न जाने मेरी बातों का

क्या मतलब समझी ? हाय ! ऐसे रूपवान्, ऐसे दयालु, ऐसे सुशील प्राणी का यह अन्त ! अगर निर्मला को मालूम होता कि उसके क्रोध का यह भीषण परिणाम होगा, तो जहर का घूंट पीकर भी उस बात को हंसी में उड़ा देती ।

यह सोचकर कि मेरी निष्ठुरता के कारण डॉक्टर साहब का यह हाल हुआ, निर्मला के हृदय के टुकड़े-टुकड़े होने लगे । ऐसी वेदना होने लगी, मानो हृदय में शूल उठ रहा हो । डॉक्टर साहब के घर चली ।

लाश उठ चुकी थी । बाहर सन्नाटा छाया हुआ था । घर में स्त्रियां जमा थीं । सुधा जमीन पर बैठी रो रही थी । निर्मला को देखते ही वह जोर से चिल्लाकर रो पड़ी और आकर उसकी छाती से लिपट गई । दोनों देर तक रोती रहीं ।

जब औरतों की भीड़ कम हुई और एकान्त हो गया, तो निर्मला ने पूछा—यह क्या हो गया बहन ! तुमने कह क्या दिया ?

सुधा अपने मन को इसी प्रश्न का उत्तर आज कितनी बार दे चुकी थी । उसका मन जिस उत्तर से शान्त हो गया था, वही उसने निर्मला को दिया । बोली—चुप भी तो न रह सकती थी बहन ! क्रोध की बात पर क्रोध आता ही है ।

निर्मला—मैंने तो तुमसे कोई ऐसी बात न कही थी ।

सुधा—तुम कैसे कहतीं; कह ही नहीं सकती थीं, लेकिन उन्होंने जो बात हुई थी, वह कह दी थी । उस पर मैंने जो मुंह में आया, कहा । जब एक बात दिल में आ गई, तो उसे हुआ ही समझना चाहिए । अवसर और घात मिले, तो वह अवश्य ही पूरी हो । यह कहकर कोई नहीं निकल सकता कि मैंने तो हंसी की थी । एकान्त में ऐसा शब्द जबान पर लाना ही कह देता है कि नीयत बुरी थी । मैंने तुमसे कभी कहा नहीं बहन, लेकिन मैंने उन्हें कई बार तुम्हारी ओर झांकते देखा । उस वक्त मैंने भी यह समझा कि शायद मुझे धोखा हो रहा हो । अब मालूम हुआ कि ताक-झांक का क्या मतलब था ! अगर मैंने दुनिया ज्यादा देखी होती तो तुम्हें अपने घर न आने देती । कम-से-कम तुम पर उनकी निगाह कभी न पड़ने देती, लेकिन यह क्या जानती थी कि पुरुषों के मुंह में कुछ और मन में कुछ और होता है । ईश्वर को जो मंजूर था, वह हुआ । ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा

नहीं समझती । दरिद्र प्राणी उस धनी से कहीं सुखी है, जिसे उसका धन सांप बनकर काटने दौड़े । उपवास कर लेना आसान है, विषैला भोजन करना उससे कहीं मुश्किल !

इसी वक्त डॉक्टर सिन्हा के छोटे भाई और कृष्णा ने घर में प्रवेश किया । घर में कोहराम मच गया ।

सत्ताईस

एक महीना और गुजर गया । सुधा अपने देवर के साथ तीसरे ही दिन चली गयी ! अब निर्मला अकेली थी । पहले हंस-बोलकर जी बहला लिया करती थी । अब रोना ही एक काम रह गया । उसका स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता गया । पुराने मकान का किराया अधिक था । दूसरा मकान थोड़े किराये का लिया । यह तंग गली में था । अन्दर एक कमरा था और छोटा-सा आंगन । न प्रकाश जाता, न वायु । दुर्गन्ध उड़ा करती थी । भोजन का यह हाल कि पैसे रहते हुए भी कभी-कभी उपवास करना पड़ता था । बाजार से लाये कौन ? फिर अपना कोई मर्द नहीं, कोई लड़का नहीं, तो रोज भोजन बनाने का कष्ट कौन उठाए ? औरतों के लिए रोज भोजन करने की आवश्यकता ही क्या ? अगर एक वक्त खा लिया, तो दो दिन के लिए छुट्टी हो गयी । बच्ची के लिए ताजा हलुआ या रोटियां बन जाती थीं । ऐसी दशा में स्वास्थ्य क्यों न बिगड़ता ! चिन्ता, शोक, दुरवस्था—एक हो तो कोई कहे । यहां तो त्रयताप का धावा था । उस पर निर्मला ने दवा खाने की कसम खा ली थी । करती ही क्या ? उन थोड़े से रुपयों में दवा की गुंजाइश कहां थी ? जहां भोजन का ठिकाना न था, वहां दवा का जिक्र ही क्या ? दिन-दिन सूखती चली जाती थी ।

एक दिन रुक्मिणी ने कहा—बहू, इस तरह कब तक घुला करोगी ! जी ही से जहान है । चलो, किसी वैद्य को दिखा लाऊं ।

निर्मला ने विरक्त भाव से कहा—जिसे रोने ही के लिए जीना हो, उसका मर जाना ही अच्छा ।

रुक्मिणी—बुलाने से तो मौत नहीं आती ।

निर्मला—मौत तो बिना बुलाए आती है, बुलाने पर क्यों न आयेगी ? उसके आने में बहुत दिन न लगेंगे, बहन ! जै दिन चलती हूं, उतने साल समझ लीजिए !

रुक्मिणी—दिल छोटा मत करो, बहू ! अभी संसार का सुख ही क्या देखा ?

निर्मला—अगर संसार का यही सुख है, जो इतने दिनों से देख रही हूं, तो उससे जी भर गया । सच कहती हूं बहन, इस बच्ची का मोह मुझे बांधे हुए है, नहीं तो अब तक कभी की चली गयी होती, न जाने इस बेचारी के भाग्य में क्या लिखा है ।

दोनों महिलाएं रोने लगीं । इधर जब से निर्मला ने चारपाई पकड़ ली है, रुक्मिणी के हृदय में दया का सोता-सा खुल गया है । द्वेष का लेश भी नहीं रहा । कोई काम करती हों; निर्मला की आवाज सुनते ही दौड़ती हैं । घण्टों उसके पास बैठी कथा-पुराण सुनाया करती हैं । कोई ऐसी चीज पकाना चाहती हैं, जिसे निर्मला रुचि से खाए । निर्मला को कभी हंसते देख लेती हैं, तो निहाल हो जाती हैं, और बच्ची को तो अपने गले का हार बनाए रहती हैं । उसी की नींद सोती हैं, उसी की नींद जागती हैं । वही बालिका अब उनके जीवन का आधार है ।

रुक्मिणी ने जरा देर बाद कहा—बहू, तुम इतनी निराश क्यों होती हो ? भगवान् चाहेंगे तो तुम दो-चार दिन में अच्छी हो जाओगी—मेरे साथ आज वैद्यजी के पास चलो । बड़े सज्जन हैं ।

निर्मला—दीदीजी, अब मुझे किसी वैद्य की दवा फायदा न करेगी । आप मेरी चिन्ता न करें । बच्ची को आपकी गोद में छोड़े जाती हूं । अगर जीती-जागती रहे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजियेगा । मैं तो इसके लिए अपने जीवन में कुछ न कर सकी, केवल जन्म देने-भर की अपराधिनी हूं । चाहे क्वांरी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालियेगा, पर कुपात्र के गले न मढ़ियेगा, इतनी ही आपसे विनय है । मैंने आपकी कुछ सेवा न की, इसका

बड़ा दुःख हो रहा है। मुझ अभागिन से किसी को सुख नहीं मिला। जिस पर मेरी छाया भी पड़ गई, उसका सर्वनाश हो गया। अगर स्वामीजी कभी घर आएं, तो उनसे कहियेगा कि इस करम-जली के अपराध को क्षमा कर दें।

रुक्मिणी रोती हुई बोलीं—बहू, तुम्हारा कोई अपराध नहीं। ईश्वर से कहती हूं, तुम्हारी ओर से मेरे मन में जरा भी मैल नहीं है। हां, मैंने सदैव तुम्हारे साथ कपट किया। इसका मुझे मरते दम तक दुःख रहेगा।

निर्मला ने कातर नेत्रों से देखते हुए कहा—दीदीजी, कहने की बात पर बिना कहे रहा नहीं जाता। स्वामीजी ने हमेशा मुझे अविश्वास की दृष्टि से देखा, लेकिन मैंने कभी मन में भी उनकी उपेक्षा नहीं की। जो होना था, वह हो चुका था। अधर्म करके अपना परलोक क्यों बिगाड़ती ? पूर्व जन्म में न जाने कौन-से पाप किये थे, जिसका यह प्रायश्चित्त करना पड़ा। इस जन्म में कांटे बोती, तो कौन गति होती ?

निर्मला की सांस बड़े वेग से चलने लगी। फिर खाट पर लेट गई और बच्ची की ओर ऐसी दृष्टि से देखा, जो उसके जीवन की सम्पूर्ण विपत्ति-कथा की बृहद आलोचना थी, वाणी में इतनी सामर्थ्य कहां !

तीन दिनों तक निर्मला की आंखों से आसुओं की धारा बहती रही। वह न किसी से बोलती थी, न किसी की ओर देखती थी और न किसी की कुछ सुनती थी। बस, रोए चली जाती थी, उस वेदना का कौन अनुमान कर सकता है ?

चौथे दिन सन्ध्या समय वह विपत्ति-कथा समाप्त हो गई। उसी समय जब पशु-पक्षी अपने बसेरे को लौट रहे थे, निर्मला का प्राण-पक्षी भी दिन-भर शिकारियों के निशानों, शिकारी चिड़ियों के पंजों और वायु के प्रचंड झोंकों से आहत और व्यथित अपने बसेरे की ओर उड़ गया।

मुहल्ले के लोग जमा हो गए। लाश बाहर निकाली गई। कौन दाह करेगा, यह प्रश्न उठा। लोग चिन्ता में थे कि सहसा एक बूढ़ा पथिक एक बकुचा लटकाए आकर खड़ा हो गया। यह मुंशी तोताराम थे।

•••

राजकमल पेपरबैक्स

प्रेमचंद

निर्मला



निर्मला अनमेल विवाह की त्रासदी पर आधारित उपन्यास है। निर्मला अपने पिता की उम्रवाले पति तोताराम का आदर तो कर सकती है, किंतु उससे प्यार करने में वह अपने को असमर्थ पाती है। दूसरी ओर तोताराम की पहली पत्नी के बेटे मंसाराम से, जो उसका समवयस्क था, हँसने-बोलने में निर्मला की विलासिनी कल्पना उत्तेजित होती थी और तृप्त भी। फलतः तोताराम को पुत्र के प्रति ईर्ष्या-ग्रंथि निरंतर अशांत रखने लगी और वह योजना बनाकर मंसाराम को, निर्मला से दूर रखने के लिए, छात्रावास भेज देता है। वहाँ मंसाराम की मृत्यु हो जाती है और उपन्यास के अंत में निर्मला भी बीमार होकर मर जाती है।

निर्मला में एक तरफ माँ होने की मर्यादा का एहसास है तो दूसरी ओर अतृप्त युवा स्वभाव की सतृष्ण कामना भी है। उसके इस अंतर्द्वंद्व को प्रेमचंद ने मार्मिक अभिव्यक्ति दी है और इसीलिए इसे हिंदी का पहला मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहा गया है। साथ ही प्रेमचंद का यह पहला दुखांत उपन्यास है और यथार्थवाद की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयोग, क्योंकि **सेवासदन** या **प्रेमाश्रम** जैसा आदर्शमूलक अंत या समाधान इसमें नहीं दिखाया गया है।

राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली पटना

22/-

ISBN : 81-7178-310-4